आधुनिक राज्य
एवं
राजनीति

आधुनिक राज्य
एवं
राजनीति

लेखक :
फ़्योदोर बर्लात्स्की

अनुवादक :
मोहन श्रोत्रिय

राजस्थान पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस
जयपुर

प्रकाशक की ओर से

यह हमारा पहला प्रकाशन है। भविष्य में होने वाले श्रेष्ठ पुस्तको के प्रकाशन की पहली कडी।

प्रस्तुत पुस्तक, जो कि आधुनिक राजनीतिक सिद्धात सबंधी लोकप्रिय सोवियत पुस्तक माडर्न स्टेट एंड पालिटिक्स का अनुवाद है, विज्ञान एव कला के रूप मे राजनीति की लेनिनवादी अवधारणा की विवेचना तो करती ही है, राजनीतिक सबधों के समाजशास्त्र को भी विकसित करती है। इसमे राजनीति के स्वरूप ; सोवियत समाज, संघटन तथा प्रशासन और राजनीतिक प्रक्रिया पर विभिन्न सामाजिक शक्तियों द्वारा डाले जाने वाले प्रभावो से सबधित प्रश्नो को उभारा गया है। इसमे प्रतिक्रियावादी राजनीतिक विज्ञान तथा छद्म जनतत्र की गंभीर आलोचना भी की गयी है।

पुस्तक की अतर्वस्तु, डिजाइन, छपाई तथा अनुवाद के बारे मे आपकी प्रतिक्रियाओ का हम स्वागत करेंगे।

अनुक्रम

पूर्व-कथन

प्रस्तुत पुस्तक विकसित पूंजीवादी एवं समाजवादी राज्यों की राजनीतिक व्यवस्थाओं के विकास एवं क्रियाशीलता की सैद्धांतिक समस्याओं से संबंधित है। यह उनके संबंधों के नियमों का विश्लेषण भी करती है। साथ ही, यह पुस्तक समकालीन राज्यों की राजनीतिक संरचना एवं राजनीति के अध्ययन से जुड़े हुए पद्धतिमूलक प्रश्नों की परीक्षा एवं पड़ताल भी करती है। प्रस्तुत पुस्तक में, मार्क्सवादी-लेनिनवादी व्याख्या एवं तुलनात्मक विश्लेषण की दृष्टि से द्वंद्वात्मक एवं ऐतिहासिक भौतिकवाद तथा पद्धति विश्लेषण का उपयोग किया गया है।

तदनुसार, लेखक ने आधुनिक मनुष्य के राजनीतिक जीवन के विविध पक्षों में से मात्र वे ही मुद्दे चुने हैं जोकि राजनीति एवं अंतरराष्ट्रीय संबंधों की समाज-शास्त्रीय समस्याओं की हमारी समझ को बढ़ाने में सहायता करती हैं। इस कृति में जो सर्वाधिक मुखरता प्राप्त करते हैं वे राजनीतिक व्यवस्था से संबंधित प्रश्न तथा संचार सूत्र हैं: पूंजीवादी एवं समाजवादी राज्यों की राजनीतिक सत्ताएं तथा उनके रूप हैं। साथ ही, प्रशासनिक प्रक्रियाओं पर वैज्ञानिक एवं तकनीकी क्रांति के प्रभावों तथा भिन्न सामाजिक संरचनाओं वाली सरकारों के अंतरराष्ट्रीय संबंधों व अंतरराष्ट्रीय राजनीति का भी प्रमुख रूप से विश्लेषण किया गया है।

यह पुस्तक लेखक, जिसने राजनीतिक संरचनाओं के समाज-शास्त्रीय अध्ययन के निहित दायित्वों के सामान्य सूत्रों से परे जाकर एक ठोस, विशिष्टीकृत एवं व्यवस्थित विश्लेषण प्रस्तुत किया है, की पहले की कृतियों को तार्किक निरंतरता प्रदान करती है। यह आशा की जाती है कि प्रस्तुत पुस्तक अंतरराष्ट्रीय संबंधों के भौतिकवादी सिद्धांत के सविस्तार प्रतिपादन में अपना महत्वपूर्ण योगदान देगी।

यह पुस्तक अपनी मुखर पद्धतिमूलक प्रकृति तथा खोज के क्षेत्र की विशिष्टता के अतिरिक्त, विरोधी संरचनाओं वाले देशों की सामाजिक एवं राजनीतिक प्रक्रियाओं, वर्तमान में तथा निकट भविष्य में जिनका महत्व असंदिग्ध है, पर अपना ध्यान केंद्रित करती है। सामाजिक संरचना एवं राजनीतिक व्यवस्था पर वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक क्रांति का प्रभाव, इन देशों में प्रशासन के तरीके

अध्याय : 1

राजनीति का भौतिकवादी सिद्ध

मानवता के भौतिक एवं सांस्कृतिक जीवन में राजनीति की अत्यंत बढ़ी हुई भूमिका समकालीन सामाजिक जीवन की एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण एवं अद्भुत घटना है। राजनीति अर्थव्यवस्था, भौतिक वस्तुओं के वितरण के परिमाण एवं उसके रूपों, विचारधारा, संस्कृति, नीतिशास्त्र, परिवार, जीवन शैली—यानी सामाजिक जीवन के समस्त पक्षों—को प्रभावित करती है। राजनीति की प्रकृति के अध्ययन के बिना सामाजिक जीवन, राज्य की क्रिया पद्धति संबंधी चित्र अधूरा ही रहता है।

आधुनिक सामाजिक क्रांतियों, समाजवादी व्यवस्था के निर्माण, उपनिवेशी साम्राज्यों के विघटन एवं नये राष्ट्रीय राज्यों के उदय, वर्गीय एवं राष्ट्रीय संघर्षों की गंभीरता, संचार एवं फ़ौजी तकनीक के क्षेत्रों में हुए परिवर्तनों के कारण—अन्य कारणों से भी—घरेलू एवं अंतरराष्ट्रीय राजनीति, विविधताओं के साथ, सामाजिक शक्तियों के केन्द्र में आ गयी है। और इसीलिए विद्वानों के ध्यान-केंद्र में भी।

इसका एक प्रारंभिक परिणाम तो यह हुआ है कि राजनीति एवं राजनीतिक संबंधों के अध्ययनों की विपुलता अविश्वसनीय रूप से बढ़ी है। पुस्तकों, प्रचार-पुस्तिकाओं एवं लेखों की वार्षिक प्रस्तुति की संख्या हज़ारों तथा प्रतियों की संख्या करोड़ों तक पहुंच गयी है। राजनीतिक नेतृत्वों की गतिविधियों एवं क्रिया-कलाप पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा है। इसका दूसरा परिणाम यह हुआ है कि राजनीति को विज्ञान से निकटता से जोड़ने तथा राजनीतिक जीवन के तथ्यों के आधार पर साधारणीकरण करने तथा उनके अध्ययन के लिए एक पद्धतिमूलक तंत्र विकसित करने के प्रयास होने लगे हैं।

सोवियत अध्येताओं ने सदैव ही राजनीति का अध्ययन मनोयोग से किया है। राजनीतिक प्रक्रियाओं, घटना क्रियाओं एवं घटनाओं के अध्ययन का उनका आधार द्वंद्वात्मक एवं ऐतिहासिक भौतिकवाद है जोकि एक परिष्कृत एवं विज्ञान पर आधारित पद्धतिशास्त्र है। बूर्ज्वा विद्वानों के ये आरोप कि मार्क्सवाद-लेनिन-

वाद के पास राजनीतिक समस्याओं के वैज्ञानिक विश्लेषण की ठोस परंपराओं का अभाव है, वस्तुतः निराधार है।[1]

राजनीतिक विश्लेषण विभिन्न अनुशासनों (विद्याओं) में किया जाता है। फिर भी, राजनीतिक जीवन के विस्तृत अध्ययन के लिए *अनिवार्य मानी जाने वाली* अध्ययन की कतिपय सामान्य पद्धतियों, बुनियादी अवधारणाओं एवं वैचारिक श्रेणियों का अपना महत्त्व है। विशिष्ट राजनीतिक घटनाक्रियाओं के विश्लेषण के लिए सिद्धांत संबंधी इन समस्याओं का विश्लेषण एक अनिवार्य शर्त है क्योंकि इसके अभाव में घटनाक्रियाओं का विश्लेषण तथ्यों का वर्गीकरण एवं वर्णन मात्र रह जाता है।

राजनीतिक प्रक्रियाओं के समाजशास्त्रीय दृष्टि से अध्ययन के सिद्धांतों का सारतत्त्व मार्क्सवाद-लेनिनवाद के श्रेष्ठ ग्रंथों में पाया जा सकता है। मार्क्स एवं एंगेल्स ने 'फ्रांस में वर्ग संघर्ष', 'लुई बोनापार्ट की अठारहवीं ब्रूमेर', 'फ्रांस का गृह युद्ध', 'आवासन समस्या', 'जर्मनी में क्रांति एवं प्रतिक्रांति' आदि में राज-*नीतिक विश्लेषण के प्रतिभा संपन्न उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। मार्क्स एवं एंगेल्स ने वर्ग-संबंधों एवं राजनीति पर उनके प्रभाव से परे जाकर अपना विश्लेषण* प्रस्तुत किया क्योंकि उन्होंने एक ही वर्ग के भीतर के विभिन्न स्तरों, व्यक्ति-समूहों के संघर्षों तथा अंत में, व्यक्तियों, नेताओं एवं विचारधारात्मक सिद्धांत-शास्त्रियों की भूमिकाओं की भी परीक्षा की। अपने काल की ज्वलंत समस्याओं से संबंधित मार्क्स एवं एंगेल्स की कृतियों की विशिष्टता गहन सैद्धांतिक विश्लेषण एवं अनुभव-संपदा के विस्तृत अध्ययन में प्रतिबिंबित होती है।

लेनिन ने सत्ता एवं राजनीति की समस्याओं को केंद्रीय महत्त्व दिया। सोवियत समाजवादी राज्य के अगुआ के रूप में उन्होंने अपने प्रचुर अनुभवों *तथा* आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीति की प्रक्रियाओं *की दिशा निरूपित करते हुए साधारणीकरण किये।*

लेनिन की कृतियों में राजनीतिक सिद्धांत की विशद व्याख्या के रत्न उपलब्ध हैं। यहां 'राज्य एवं क्रांति' जैसी उनकी मौलिक महत्त्व की कृति का स्मरण करना ही काफ़ी होगा जिसमें राज्य की समस्याओं, कमेरे वर्ग की तानाशाही स्थापित करने के सर्वहारा के प्रयासों, समाजवादी राज्य के अस्तित्व तथा उसकी गतिविधियों के विशिष्ट रूपों के गहन समाजशास्त्रीय विश्लेषण की मार्क्सवादी परंपरा का जीवंत विकास परिलक्षित होता है। लेनिन ही थे जिन्होंने समाजवाद एवं साम्यवाद के निर्माण के दौरान राजनीतिक सत्ता के चरित्र एवं लक्ष्यों को

---

1. देखें, पी० एन फ़ेदोसयेव 'द डायलेक्टिक्स आफ़ कंटेंपरेरी डिवेलपमेंट, मास्को, 1965, तथा फ़ण्डामेंटल्स आफ़ मार्क्सिस्ट फ़िलासफ़ी, मास्को, 1964 (राजनीतिक मामलों के अध्ययन में ऐतिहासिक भौतिकवाद के नियमों के लागू किये जाने से संबंधित)।

परिभाषित किया। साथ ही, उन्होंने समाज में पार्टी नेतृत्व की भूमिका, राज्य-तंत्र के कार्यों, आर्थिक नीतियों की दिशाओं, भिन्न सामाजिक व्यवस्थाओं वाले देशों के बीच संबंधों को निर्धारित करने वाले सिद्धांतों का निरूपण किया। मार्क्स-एंगेल्स एवं लेनिन के विचार राजनीति के सोवियत सिद्धांत का आधार प्रस्तुत करते हैं।

मार्क्स-एंगेल्स ने राजनीति के स्वभाव, राजनीतिक सत्ता, राजनीतिक क्रिया-कलापों के स्वभाव के अध्ययन की ओर विशेष ध्यान देकर सर्वहारा राजनीति तथा उसके बरक्स शोषक वर्गों की राजनीति का अध्ययन करके सर्वहारा राजनीति की अपेक्षाओं एवं आवश्यकताओं का निरूपण किया। उन्होंने न केवल राजनीति विज्ञान के सैद्धांतिक-पद्धतिमूलक आधारों की विस्तृत विवेचना प्रस्तुत की अपितु राजनीतिक प्रक्रिया, राज्य के क्रिया-कलाप, राजनीतिक दलों एवं नेताओं के क्रिया-कलाप के ठोस विश्लेषण के श्रेष्ठ प्रतिमान भी प्रस्तुत किये।

राजनीति के विज्ञान के विकास को लेनिन अत्यंत महत्वपूर्ण सैद्धांतिक कार्य मानते थे। उनके कृतित्व में हमें वे सभी बुनियादी विचार मिलते हैं जो राजनीतिक घटनाक्रियाओं की द्वन्द्वात्मक पद्धति एवं समाजशास्त्रीय विश्लेषण से संबंधित हैं। अपने काल की राजनीतिक घटनाक्रियाओं का विश्लेषण करते हुए लेनिन ने राजनीतिक प्रक्रिया के समस्त पक्षों पर सजगता से ध्यान केंद्रित किया। उन्होंने सत्ता एवं प्रशासन की संस्थाओं की प्रकृति, दलों एवं श्रमिक संघों की संरचना एवं क्रिया-कलाप, राजनीतिक रणस्थली में वर्गों एवं समूहों के संघर्षों, जनता, उसके अपने एवं अन्य राजनीतिक नेताओं के राजनीतिक व्यवहार तथा सामाजिक मनोविज्ञान का विशद एवं सतर्कतापूर्वक परीक्षण किया। लेनिन ने प्रशासन विज्ञान, जो राजनीति विज्ञान का समवेत तत्व है, की नींव रखी।

ये परंपराएं आज साम्यवादी एवं श्रमिक दलों के क्रियाकलापों में मूर्तिमान हैं जो अपने सम्मेलनों एवं पूर्ण अधिवेशनों में न केवल व्यावहारिक नीति निर्धारित करते हैं तथा विशिष्ट राजनीतिक कर्तव्यों से संबंधित निर्णय लेते हैं, अपितु राजनीतिक सिद्धांत को भी समृद्ध बनाते हैं। जैसाकि दुनिया भर में स्वीकार किया जाता है, सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के बीसवें-चौबीसवें सम्मेलनों तथा सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम ने इस दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है। साम्यवादी एवं श्रमिक दलों के 1957, 1960 तथा 1969 में संपन्न हुए सम्मेलन मार्क्सवादी राजनीतिक सिद्धांत की विकास यात्रा में युगांतरकारी घटनाएं हैं। यूरोपीय समाजवादी देशों के साम्यवादी एवं श्रमिक दलों ने भी विज्ञान के रूप में राजनीति के विकास में महत्वपूर्ण योगदान किया है। गैर-समाजवादी देशों के साम्यवादी एवं श्रमिक दलों ने पूंजीवादी दुनिया के राजनीतिक जीवन में नये परिवर्तनों का विश्लेषण करके तथा क्रांति के सिद्धांत

को और अधिक विकसित करके इस दिशा में बड़ी सेवा की है। मार्क्स-एंगल्स एवं लेनिन की समृद्ध विचारधारात्मक विरासत, राजनीति की सैद्धांतिक समस्याओं के क्रम में साम्यवादी एवं श्रमिक दलों के सम्मेलनों एवं अधिवेशनों में लिये गये निर्णय तथा अंतरराष्ट्रीय साम्यवादी मंचों पर लिये गये निर्णय—ये सब मिलकर मार्क्सवादी-लेनिनवादी राजनीति विज्ञान का पद्धतिमूलक आधार निर्मित करते हैं।

राजनीति : विज्ञान के रूप में

वर्गों, राष्ट्रों, समूहों एवं व्यक्तियों के सामाजिक हित राजनीतिक संबंधों के क्षेत्र में अत्यंत सुचित्रित रूप में प्रतिबिंबित होते हैं। राजनीति एक ऐसी रणस्थली है जहां इन हितों का संघर्ष होता है तो सामाजिक शक्तियों के वास्तविक परस्पर संबंधों के आधार पर ये संघटित भी होते हैं। राजनीति सामाजिक अधिरचना का एक अत्यंत सुनम्य तत्त्व है जोकि न केवल सामाजिक आधार के कारकों (अर्थशास्त्र, वर्गों आदि) से प्रभावित होता है अपितु अन्य कारकों (समूहों एवं व्यक्तियों के हितों तथा विचारों, जनता के विचारों एवं संस्कृति आदि) से भी प्रभावित होता है। राजनीति, निर्णायक तौर से, सामाजिक संरचना का वह क्रियाशील क्षेत्र है जोकि उसे सीधे तथा निरंतर प्रभावित करता है।

राजनीति के अध्ययन की भौतिकवादी समझ के मायने हैं राजनीतिक घटना-क्रियाओं के अभिज्ञान हेतु द्वंद्वात्मकता, ऐतिहासिक भौतिकवाद के नियमों का प्रयोग। तभी राजनीतिक व्यवस्था, राज्य, विधि एवं राजनीति से आर्थिक, भूगोलीय, जैविक, जनसांख्यिकीय एवं अन्य कारकों के संबंध स्थापित किये जा सकते हैं। इस समझ में राजनीतिक प्रक्रियाओं के अध्ययन का सामान्य पद्धति विज्ञान निहित है। इसकी नींव, जोकि भौतिकवादी विश्लेषण का मर्म है, निर्मित होती है आर्थिक, सामाजिक-राजनीतिक एवं विचारधारात्मक संबंधों तथा वर्गों एवं उनके सामाजिक स्तरों, राजनीति एवं राज्य, सत्ता एवं विधि तथा अधिरचना के अन्य संघटक तत्त्वों के संबंधों को एक-दूसरे से जोड़ने वाली सीधी कड़ी के अध्ययन से।

जैसा लेनिन ने कहा था, मार्क्सवाद के लिए "सभी सामाजिक संबंधों के बीच से उत्पादन संबंधों को पृथक करना आवश्यक है क्योंकि ये संबंध बुनियादी एवं प्राथमिक होते हैं तथा अन्य समस्त संबंधों को निर्धारित करते हैं।"[2] वैज्ञानिक समाजवाद के प्रवर्त्तकों ने अपने समय की प्रमुख एवं मान्य राजनीतिक घटना-क्रियाओं की रूपवादी न्यायिक समझ को अस्वीकार करके, सर्वप्रथम राजनीति

---

2. वी॰ आई॰ लेनिन : कलेक्टेड वर्क्स, खंड 1, पृष्ठ 138

का समाजशास्त्रीय विश्लेषण प्रस्तुत किया। राजनीति के क्षेत्र में मार्क्सवाद के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सिद्धांत हैं : (1) आधार एवं अधिरचना का सिद्धांत—राज्य, विधि एवं राजनीति पर भौतिक वस्तुओं की उत्पादन प्रणाली के निर्णायक प्रभाव से संबंधित, (2) राज्य, विधि एवं राजनीति के आर्थिक एवं सामाजिक जीवन पर पारस्परिक संबंधों का सिद्धांत; (3) सामाजिक विकास के आधार के रूप में वर्ग-संघर्ष (विशेषतया राजनीतिक संघर्ष) का सिद्धांत, (4) क्रांति के माध्यम से समाजवादी राज्य एवं सर्वहारा राजनीति द्वारा बूर्ज्वा राज्य एवं बूर्ज्वा राजनीति के अपरिहार्य विस्थापन का सिद्धांत—साम्यवाद के अंतर्गत राज्य और राजनीति के क्रमिक विसर्जन का सिद्धांत। राजनीतिक प्रक्रिया के बाह्य रूपों के वर्णन का स्थान, इस तरह राज्य एवं राजनीति के सामाजिक स्वरूप के वास्तविक वैज्ञानिक विश्लेषण ने ले लिया। प्लेखानोव की इतिहास में जनता एवं व्यक्तियों की भूमिका संबंधी अवधारणा तथा वर्ग, जनता एवं नेताओं के अन्योन्याश्रय की समस्या पर उनके योगदान का सत्ता एवं राजनीति के स्वभाव की समझ की दृष्टि से बुनियादी महत्त्व है।

'राजनीतिक अर्थशास्त्र की समीक्षा' की भूमिका में मार्क्स ने लिखा था : "मुझे निरंतर सताने वाले संदेहों के निराकरण के लिए मैंने जो पहला काम किया वह था हीगेल के दक्षिणपंथ दर्शन की आलोचनात्मक समीक्षा···खोज एवं पड़ताल ने मुझे इस निष्कर्ष पर पहुंचाया कि विधिक संबंधों एवं राज्य के रूपों की समझ न तो उनके स्वयं के आधार पर संभव है और न मानव विकास के तथाकथित सामान्य विकास (की अवधारणा) से। इसके विपरीत इनकी जड़ें जीवन की भौतिक परिस्थितियों में निहित होती हैं, हीगेल ने अठारहवीं शताब्दी के अंग्रेज एवं फ्रांसीसी चिंतकों की तर्ज पर जिन्हें 'नागरिक समाज' का सार तत्त्व माना। नागरिक समाज की संरचना का स्रोत भी जबकि राजनीतिक अर्थव्यवस्था में निहित होता है।"[3]

समस्त पूर्ववर्ती समाजशास्त्रीय सिद्धांतों ने राज्य के वास्तविक आधार को या तो अनदेखा किया या उसे प्रमुख न मानकर, तथा ऐतिहासिक प्रक्रिया से सीधे न जोड़कर, सहायक माना। कार्ल मार्क्स ने सिद्ध किया कि भौतिक उत्पादन राज्य के रूपों का न केवल आधार होता है अपितु उनके चरित्र को निर्धारित भी करता है। मार्क्स के निष्कर्ष ने शोषक संरचना की समीक्षा को क्रांतिकारी रूप दिया तथा इस विचार का आधार प्रस्तुत किया कि एक नयी एवं उच्चतर श्रेणी में संक्रमण के लिए समाज की अवस्था परिपक्व हो चुकी थी।

---

3. कार्ल मा[illegible]
1973, [illegible]

मार्क्स ने 'पूंजी' में आधार एवं अधिरचना के अंत.संबंधों की संतुलित परिभाषा देते हुए लिखा : "*उत्पादन की परिस्थितियों के स्वामियों तथा वास्तविक उत्पादकों के बीच के सीधे संबंध ही—जो कि श्रम-पद्धतियों के विकास की निश्चित अवस्था के समरूप होते हैं तथा परिणामस्वरूप सामाजिक उत्पादकता के भी समरूप होते हैं*—समूची सामाजिक संरचना के अदृश्य आधार को उद्घाटित करते हैं *तथा इसी के साथ सम्प्रभुता एवं गुलामी के संबंधों के राजनीतिक रूप को भी* उद्घाटित करते हैं—संक्षेप में, तदनुरूप राज्य के विशिष्ट रूप को भी व्यक्त करते हैं।"[4]

आधार एवं अधिरचना के अंत.संबंध एकपक्षीय नहीं होते। राजनीतिक *अधिरचना, अपनी ओर से, सामाजिक जीवन पर गहरा प्रभाव डालती है। एंगेल्स* के शब्दों में, "आर्थिक विकास पर राजसत्ता का प्रभाव तीन प्रकार का हो सकता है *वह उसी दिशा में अग्रसर हो सकती है जिसके परिणामस्वरूप विकास की गति* तेज होगी; *वह विकास नीति का विरोध कर सकती है जिसके परिणाम दूरगामी होंगे तथा बड़े राष्ट्रों तक का आर्थिक विकास अवरुद्ध होगा; अथवा वह आर्थिक* विकास की कतिपय विशिष्ट नीतियों का विरोध करके अन्य नीतियां प्रस्तावित *कर सकती है। अंतिम स्थिति पहली दो स्थितियों के एक हिस्से से मिलती-जुलती* है। यह स्पष्ट ही है कि दूसरी एवं तीसरी स्थितियों में राजनीतिक सत्ता आर्थिक *विकास को बेहद नुकसान पहुंचा सकती है तथा परिणामस्वरूप ऊर्जा एवं सामान* के अपव्यय के लिए जिम्मेदार ठहरायी जा सकती है।"[5]

इससे स्पष्ट है कि ये आरोप कितने बेबुनियाद हैं कि मार्क्सवाद राजनीतिक विकास की समूची प्रक्रिया को उत्पादन संबंधों के सीधे एवं तात्कालिक कार्य में परिवर्तित कर देता है। अर्थव्यवस्था का प्रभाव तो निर्णायक होता ही है, किंतु कई *अन्य कारक भी हैं जो सामाजिक जीवन के समस्त पक्षों पर बड़ा प्रभाव डालते* हैं। राजनीतिक प्रक्रिया जैसा सुनम्य तत्व तो प्रभावित हुए बिना रह ही नहीं सकता। इन कारकों में *वर्ग संरचना, समाज की राष्ट्रीय रचना, नीतिशास्त्र,* विधिक परंपरा, विचारधारा, संस्कृति, राजनीतिक परंपराएं तथा अंतर्राष्ट्रीय *परिस्थिति प्रमुख हैं।*

एंगेल्स ने स्वयं को उन नकली मार्क्सवादियों से पृथक रखा जोकि *अर्थ संबंधों को सामाजिक विकास का एकमात्र निर्धारक तत्व मानते थे तथा स्वभावतया आर्थिक निर्धारणवाद की दृष्टि से ही प्रत्येक मुद्दे पर विचार करते थे। एंगेल्स का* मानना था कि वास्तविक जीवन में उत्पादन एवं पुनरुत्पादन, इतिहास की भौतिक-

---

4. कार्ल मार्क्स : कैपिटल खंड iii, मास्को, 1971, पृ॰ 791
5. *कार्ल मार्क्स एंड फ्रेडरिक एंगेल्स : सिलेक्टेड करेस्पांडेंस, मास्को, 1965, पृ॰ 422*

वादी समझ के अनुसार, अंतिम विश्लेषण में ही, निर्धारक कारक बनते हैं। इससे अधिक न तो मार्क्स ने और न मैंने कभी भी बलपूर्वक कहा है। अतः कोई व्यक्ति इसे तोड़-मरोड़कर यह कहे कि आर्थिक तत्त्व ही एकमात्र निर्धारक है तो वह इस प्रस्तावना को परिवर्तित करके निरर्थक, अमूर्त एवं मूर्खतापूर्ण ही बनाता है। आर्थिक स्थिति आधार तो होती ही है किंतु अधिरचना के विभिन्न तत्त्व—वर्ग-संघर्ष का राजनीतिक रूप व उसके परिणाम, विजेता वर्ग द्वारा लागू किये गये संविधान, विधिक रूप (इन संघर्षों में शरीक लोगों के मस्तिष्कों में संघर्षों के प्रतिबिंबों के रूप में राजनीतिक, न्यायिक एवं धार्मिक विचार जो विकसित होकर मतवाद का रूप धारण कर लेते हैं)—भी इसे प्रभावित करते हैं।[6]

अतः राजनीतिक व्यवस्थाओं अथवा किसी विशिष्ट नीति का विश्लेषण करते समय मात्र आर्थिक हित रेखांकित करने तक सीमित नहीं रहा जा सकता, अन्य ठोस कारकों की खोज—या जैसा एंगेल्स ने लिखा था, अधिरचना के उन विभिन्न तत्त्वों की खोज जो कि राजनीतिक नीति तय करने वाली विशिष्ट राजनीतिक संस्थाओं के क्रियाकलाप के उद्गम के तात्कालिक निर्धारक है—भी आवश्यक बन जाती है। दूसरे शब्दों में, विश्लेषण यथासंभव सुस्पष्ट होना चाहिए हालांकि राजनीतिक प्रक्रिया पर निर्धारक प्रभाव डालने वाले सुनिश्चित आर्थिक कारकों एवं हितों को उभारना भी आवश्यक है।

"ऐसा नहीं है कि आर्थिक स्थिति ही एकमात्र सक्रिय कारण है तथा शेष सब मात्र निष्क्रिय परिणाम है। आर्थिक आवश्यकता के आधार पर होने वाली अंतर्क्रिया अंततः अपना प्रभाव दिखाती है।"[7]

राजनीतिक व्यवस्था एवं राजनीति को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों के द्वंद्वात्मक संबंधों की जटिलता की समझ का अर्थ यह नहीं है कि सर्वाधिक महत्त्व के सिद्धांत—कि भौतिक वस्तुओं के उत्पादन की प्रणाली समूची ऐतिहासिक प्रक्रिया को निर्णायक रूप से प्रभावित करती है—को विस्मृत कर दिया जाय। लेनिन के शब्दों में, 'इतिहास एवं राजनीति संबंधी विचारों के क्षेत्र में छायी हुई अव्यवस्था एवं स्वेच्छाचारिता का स्थान लिया एक विशिष्टतः समग्र एवं सुसंगत वैज्ञानिक सिद्धांत ने जो यह प्रदर्शित एवं सिद्ध करता है कि उत्पादक शक्तियों के विकास के परिणामस्वरूप किस प्रकार एक समाज-व्यवस्था एक दूसरी उच्चतर व्यवस्था को जन्म देती है।'"[8]

लेनिन की मान्यता थी कि राज्य की गतिविधियों, राज्य की दिशा, राज्य के

6 कार्ल मार्क्स एवं फ्रेडरिक एंगेल्स सिलेक्टेड कारेसपांडेंस, मास्को, 1965, पृ० 417

7. कार्ल मार्क्स एवं फ्रेडरिक एंगेल्स : सिलेक्टेड वर्क्स इन थ्री वाल्यूम्स, खंड 3, मास्को, 1971 पृ० 502

8. वी० आई० लेनिन : कलेक्टेड वर्क्स, खंड 19, पृ० 25

क्रियाकलाप के कार्यों, मुद्दों एवं अंतर्वस्तु के निर्धारण में भागीदारी ही राजनी
है। उन्होंने मार्क्सवादी राजनीतिज्ञों का आह्वान किया कि वे उन तथ्यों का वि
पर राजनीति आधारित है वैज्ञानिक तरीके से अध्ययन करने की चेष्टा करे
उन्होंने रेखांकित किया "कि राजनीति की अपनी वस्तुनिष्ठ तर्क पद्धति होती
जो व्यक्तियों एवं दलों की अग्रिम योजनाओं से निरपेक्ष होती है।"[9]

राजनीतिक सिद्धांत एवं विशिष्ट राजनीतिक प्रतिक्रियाओं के अध्ययन
केंद्र में सत्ता की अवधारणा अवस्थित है। यह अवधारणा राजनीतिक संस्थाओं
राजनीतिक आंदोलनों तथा स्वयं राजनीति की समझ के लिए कुंजी का महत्त्व
रखती है। अतः इस बिंदु पर विस्तार से विचार करना उपयुक्त ही होगा।

मार्क्स तथा लेनिन ने बारंबार निर्दिष्ट किया कि सत्ता की अवधारणा राजनीतिक सिद्धांत की मूलभूत अवधारणाओं में से एक है। लेनिन के शब्दों में, "एक वर्ग के हाथों से दूसरे वर्ग के हाथों में राजसत्ता का हस्तांतरण क्रांति का पहला, प्रमुख एवं बुनियादी लक्षण है, वैज्ञानिक एवं व्यावहारिक राजनीतिक—दोनों ही अर्थों में।"[10] उनके अनुसार किसी भी क्रांति का मूल प्रश्न राजसत्ता का प्रश्न ही होता है, "···वर्ग-संघर्ष तभी वास्तविक, सुसंगत एवं उन्नत बनता है जबकि वह राजनीति को अंगीकार करता है। राजनीति में भी यह संभव है कि कम महत्त्व के मुद्दों तक सीमित रहा जाय; जहां तक गहरे जाना भी संभव है। मार्क्सवाद वर्ग-संघर्ष को उन्नत एवं राष्ट्रव्यापी तभी मानता है जब वह राजनीति को मात्र अंगीकार नहीं करता बल्कि राजनीति के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व—राजसत्ता के संघटन—को आत्मसात कर लेता है।"[11]

समाजवादी एवं बूर्ज्वा समाजों में सत्ता के स्वरूप का विशद विश्लेषण—सत्ता की सामान्य अवधारणा का विश्लेषण भी राजनीति एवं राज्य की प्रकृति को समझने के लिए महत्त्वपूर्ण होता है। इसी आधार पर राजनीति एवं राजनीतिक संबंधों सामाजिक संबंधों की समग्रता से अलग करना संभव है। 'सत्ता के प्रश्न को टाला अथवा अनदेखा नहीं किया जा सकता क्यों कि यह ऐसा मूल प्रश्न है जो कि क्रांति के विकास में, वैदेशिक एवं घरेलू नीतियों समेत प्रत्येक चीज को निर्धारित करता है।"[12]

सत्ता के विश्लेषण के दौरान जो तथ्य सर्वाधिक ध्यान आकर्षित करता है वह यह कि इस शब्द का प्रयोग अत्यंत व्यापक अर्थों में किया जाता है। मार्क्स एवं एंगेल्स ने इसका प्रयोग सामाजिक संबंधों के संदर्भ में ही नहीं किया बल्कि प्रकृति

9. वी॰ आई॰ लेनिन : कलेक्टेड वर्क्स, खंड 11, पृ॰ 379
10. वही, खंड 24, पृ॰ 44
11. वही, खंड 19, पृ॰ 121-22
12. वही, खंड 25, पृ॰ 366

एव मनुष्य के सबधों की विशेषता निरूपित करते हुए भी किया। उनकी मान्यता थी कि मानव इतिहास की प्रारंभिक अवस्थाओं में मनुष्य प्रकृति पर आश्रित थे तथा "उससे पशुओं की भांति आतंकित थे।"[13] सभ्यता के विकास के परिणाम-स्वरूप मनुष्य—जो प्रकृति के नियमों का ज्ञाता है—पर प्रकृति का नियत्रण ढीला पड़ने लगा। एंगेल्स के शब्दों में, "प्रत्येक कदम पर हमें यह स्मरण होता है कि हम प्रकृति से बाहर हट कर उस पर उस तरह शासन नहीं करते जैसे कि एक विजेता विदेशी लोगों पर करता है बल्कि हम—मांस, रक्त एवं मस्तिष्क युक्त—इसी के अंश हैं और इसके मध्य रहते हैं तथा प्रकृति के ऊपर हमारा नियत्रण इस तथ्य में निहित है कि अन्य प्राणियों की तुलना में हमें यह श्रेष्ठता हासिल है कि हम इसके नियमों को समझ पाएं एव उनका सही प्रयोग कर पाएं।"[14]

आधिपत्य के पर्याय के रूप में सत्ता का प्रयोग मूलत लाक्षणिक है। एंगेल्स ने अन्यत्र कहा था कि "जीवन का परिस्थितियों का वह समग्र समुच्चय जो मनुष्य को घेरे हुए है तथा जो अब तक मनुष्य पर शासन करता रहा है, अब मनुष्य के स्वामित्व एव नियंत्रण में है।"[15]

इससे यह परिणाम निकलता है कि प्रकृति सत्ता की पात्र एव धारक, दोनों ही, है। सत्ता से यहां हमारा सरोकार इतने व्यापक अर्थों में न होकर उसके सामाजिक, राजनीतिक-तार्किक सदर्भों तक सीमित है।

वैज्ञानिक समाजवाद के प्रवर्तकों की कृतियों में समस्या के इस पक्ष की विस्तार से विवेचना हुई है। उनकी धारणाओं को विस्तार देते हुए लेनिन ने सत्ता एवं राज्य में विभेद किया। वह इस तथ्य को आधार बनाकर आगे बढ़े कि राज्य के प्रादुर्भाव से काफी पहले भी सामाजिक सत्ता का अस्तित्व था तथा यह निष्कर्ष निकाला कि राज्य के विलुप्त हो जाने के बाद भी किसी-न-किसी रूप में यह कायम रहेगी। प्योत्र स्त्रूव की इस धारणा का खंडन करते हुए कि वर्गों के समाप्त हो जाने के बाद भी राज्य बना रहेगा, लेनिन ने लिखा, "पहली गलती तो वह दमनकारी सत्ता को राज्य का विशिष्ट लक्षण मान कर करते हैं; दमनकारी सत्ता प्रत्येक मानव समुदाय में विद्यमान होती है; कबीलाई समाज में भी थी और परिवार में भी, किंतु तब राज्य कहीं नहीं था ··· राज्य का विशिष्ट लक्षण एक ऐसे वर्ग का अस्तित्व है जिसके हाथों में समस्त सत्ता केंद्रीकृत होती है।"[16] लेनिन ने एंगेल्स के इस विचार को विस्तार दिया कि राज्य का एक लक्षण बहुसंख्यक जनता

---

13 कार्ल मार्क्स एंड फ्रेडरिक एंगेल्स : द जर्मन आइडियोलाजी, मास्को, 1968, पृ० 42

14 कार्ल मार्क्स एंड फ्रेडरिक एंगेल्स · सिलेक्टेड वर्क्स इन थ्री वाल्यूम्स, खंड 3, मास्को 1973, पृ० 74-75

15. वही

16. वी० आई० लेनिन, कलेक्टेड वर्क्स, खंड 1, पृ० 419

से अलग-थलग, राजकीय सत्ता की उपस्थिति होना है।

वर्गीय घटनाक्रिया के रूप में राजनीति का सर्वाधिक विशिष्ट लक्षण सत्ता के साथ उसके *प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष संबंधों तथा सत्ता को क्रियान्वित* करने के क्रियाकलाप में व्यक्त होता है। मात्र इसी आधार पर हम समग्र सामाजिक संबंधों से राजनीति एवं राजनीतिक संबंधों को पृथक कर सकते हैं।

राजनीति की अत्यंत सामान्य परिभाषा यह है कि यह विभिन्न वर्गों, सामाजिक समूहों एवं राष्ट्रों के अंतःसंबंधों का रूप है, एक ऐसा रूप जो सत्ता की अभिव्यक्ति एवं उसके क्रियान्वयन के साथ प्रत्यक्षतः अथवा परोक्षतः जुड़ा होता है।

"···राजनीति *अर्थशास्त्र की घनीभूत अभिव्यक्ति है,*"[17] लेनिन ने राजनीतिक संघटन पर आर्थिक कारक के निर्णायक प्रभाव को सटीक एवं सूत्रात्मक शैली में व्यक्त करते हुए ऐसा कहा था। यह मत बूर्ज्वा राजनीति विज्ञान के उन *पारंपरिक विचारों का खंडन है जिनके अंतर्गत् राजनीति को जीवन का ऐसा क्षेत्र* माना जाता था जो अर्थशास्त्र से पूरी तरह कटा हुआ हो; अर्थशास्त्र जिसे किसी भी स्थिति में निर्धारित नहीं करता। दूसरी ओर, यह मत संशोधनवादियों की *अनगढ़ अवधारणाओं को भी ध्वस्त करता है।*

"मार्क्स-एंगेल्स ने जिसे द्वंद्वात्मक पद्धति—आधिभौतिक के विरोध में—कहा था, वह समाजशास्त्र की वैज्ञानिक पद्धति के अतिरिक्त कुछ नहीं है। यह पद्धति *समाज को ऐसे जीवित अवयव संस्थान के रूप में मानती है जो निरंतर विकास* की स्थिति में है (न कि यांत्रिक रूप से श्रेणीबद्ध इकाई के रूप में जो कि अलग-अलग सामाजिक तत्वों के स्वेच्छाचारी सहयोजन को अनुमति देती हो)। ऐसे *अवयव संस्थान का अध्ययन सामाजिक संरचना को निर्मित करने वाले उत्पादन* संबंधों के वस्तुनिष्ठ विश्लेषण की अपेक्षा तो रखता ही है, इसके कार्य करने एवं विकास संबंधी नियमों की पड़ताल की भी अपेक्षा रखता है।"[18]

मूर्त राजनीतिक घटनाक्रिया के अध्ययन के लिए आवश्यक है कि इन्हें निर्धारित करने वाले आर्थिक हितों का विवेचन हो, साथ ही सामाजिक कारकों एवं अंतर्विरोधों का स्पष्टीकरण भी हो जिनके माध्यम से आर्थिक हित प्रभावी *रूप से आगे बढ़ते हैं। राजनीतिक प्रक्रियाओं का वस्तुपरक विश्लेषण* हमें दोनों आत्यन्तिक भूलों से बचाता है—राजनीति पर आर्थिक हितों के अंतिम एवं निर्णायक प्रभाव को कम करके आंकना, तथा विशिष्ट निर्णयों एवं उपक्रमण को प्रभावित *करने वाले सामाजिक एवं राजनीतिक कारकों को सापेक्ष स्वतंत्र भूमिका को*

---

17 वी० आई० लेनिन, कलेक्टेड वर्क्स, खंड 32, पृ० 83

18 वही, खंड 1, पृ० 165

अनदेखा करना। राजनीतिक प्रक्रियाओं की प्रकृति को प्रभावित करने वाला प्रमुख कारक वर्ग एवं अन्य सामाजिक समूह हैं। मार्क्स के शब्दों में "...ऐसा प्रत्येक आंदोलन जिसमें शासक वर्गों के खिलाफ श्रमिक वर्ग एक वर्ग के रूप में भाग लेता है तथा उन पर बाहर से दबाव डालता है, एक राजनीतिक आंदोलन होता है...श्रमिक वर्ग के अलग-अलग आर्थिक आंदोलनों से राजनीतिक आंदोलन का उदय होता है तो वर्गीय आंदोलन का रूप धारण कर लेता है जिसका उद्देश्य सामान्य रूप में अपने हितों पर बल देना होता है, एक ऐसे रूप में जिसमें सामान्य एवं सामाजिक बाध्यता की शक्ति निहित हो।"[19] यह मत—कि राजनीतिक आंदोलन वर्गीय अंतःसंबंधों की आधारभूत अवस्थिति है—राजनीति के प्रति मार्क्सवादी दृष्टिकोण का केंद्र बिंदु है।

मार्क्स का अनुसरण करते हुए लेनिन ने विभिन्न वर्गों के अंतःसंबंधों को राजनीति के रूप में रेखांकित किया। किंतु बात यहीं समाप्त नहीं होती। वर्गों के अंतःसंबंध आर्थिक, विचारधारात्मक, सामाजिक-मनोवैज्ञानिक अथवा अन्य किसी प्रकार के हो सकते हैं। लेनिन की दृष्टि में राजनीति का विशिष्ट लक्षण यह है कि "यह राज्य एवं सरकार के साथ समस्त वर्गों एवं स्तरों के संबंधों का क्षेत्र है, वर्गों के अंतःसंबंधों का क्षेत्र होने के अतिरिक्त।"[20] परिणामस्वरूप एक राजनीतिक आंदोलन विभिन्न वर्गों के अंतःसंबंधों की अभिव्यक्ति होता है जिसमें राजनीतिक सत्ता एवं प्रशासन की कार्यवाही की मूल समस्याएं निहित होती हैं।

यदि सत्ता की वर्गीय अवधारणा राजनीति संबंधी हमारे दृष्टिकोण का केंद्र-बिंदु है तो इसे राजनीति विज्ञान का केंद्र-बिंदु भी होना चाहिए।

सामान्य वार्तालाप एवं साहित्य दोनों में ही सत्ता शब्द विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त होता है क्योंकि यह शब्द अनेकार्थी एवं अनिश्चितार्थी है। प्रकृति-वैज्ञानिक प्रकृति पर आधिपत्य, तथा दार्शनिक समाज के वस्तुगत नियमों की समझ एवं उस पर नियंत्रण के अर्थ में सत्ता की चर्चा करते हैं तो समाजशास्त्री सामाजिक शक्ति, अर्थशास्त्री अर्थशक्ति, न्यायविद राज्यशक्ति तथा मनोवैज्ञानिक मनुष्य पर स्वयं के नियंत्रण के अर्थों में सत्ता की चर्चा करते हैं। बूर्ज्वा समाजशास्त्री यद्यपि इस शब्द के निर्णायक महत्व को स्वीकार करते हैं, किंतु विभिन्न अर्थों के ऊहापोह का लाभ उठाते हुए उन्होंने सत्ता शब्द की निश्चित परिभाषा प्रस्तुत किये जा सकने की संभावनाओं तक को अस्वीकार किया है।

अमरीकी समाजशास्त्री सत्ता को सामाजिक बलगति विज्ञान का आवश्यक कारक मानते हुए इसमें समाजशास्त्रियों एवं दार्शनिकों को आकृष्ट करने वाली

---

19 कार्ल मार्क्स एवं फ्रेडरिक एंगेल्स : सिलेक्टेड कारेसपांडेंस मास्को, 1965, पृ० 270-71

20 वी० आई० लेनिन . कलेक्टेड वर्क्स, खंड 5, पृ० 422

समस्याओं का समूह देखते हैं।[21] कुछेक फ्रांसीसी समाजशास्त्री सत्ता को रहस्यात्मक आलोक में घिरा पाते हैं। मिशेल आमवेक की मान्यता है कि वर्तमान में सत्ता की घटनाक्रियाओं ने राजकीय विधिशास्त्रियों एवं राजनीति वैज्ञानिकों को तल्लीन बना रखा है।[22] फ्रांस्वा बुरीको की मान्यता है कि "सत्ता अपने राजनीतिक रूप में एक मजबूत पहेली बनी हुई है।"[23] फ्रांसीसी समाजशास्त्री एम० क्रोजे समाजशास्त्रियों के लिए सत्ता की अवधारणा को अत्यन्त आवश्यक मानते हैं, क्योंकि सत्ता सामाजिक जीवन की समस्त प्रक्रियाओं में विद्यमान होती है। वह अपनी दिक्कत का स्रोत समाजशास्त्रियों द्वारा इस शब्द के अमूर्त एवं अस्पष्ट प्रयोग में खोजते हुए यह मानते हैं कि अमूर्तन एवं अस्पष्टता के बावजूद वे अपने विज्ञान एवं सामाजिक जीवन की समस्याओं को हल करने में इस शब्द से काम चला पाने में सक्षम हुए हैं। वह निर्णय करने एवं संगठन संबंधी सिद्धांत के प्रयोग में इस उलझाव से मुक्ति देखते हैं।[24]

पश्चिमी समाजशास्त्रियों द्वारा प्रस्तुत परिभाषाएं या तो आत्यन्तिक रूप में अनुभववादी हैं— जिनमें सत्ता की दार्शनिक अवधारणाओं का नकार निहित है— *या समाजशास्त्रीय अमूर्तन को प्रदर्शित करती हैं—जिनमें धारणा एवं उसकी* अंतर्वस्तु को अलग कर दिया गया है। इनमें, सतही अमामञ्जस्य के बावजूद, सत्ता की वर्गीय अंतर्वस्तु की उपेक्षा की गयी है।

इस प्रश्न पर मोरिस दुयुवेरजे का दृष्टिकोण प्रत्यक्षवादियों की भंगिमाओं से *मेल खाता है। वह सत्ता अथवा प्रभुत्व को तात्विक अथवा दार्शनिक दृष्टिकोण से* देखने को तैयार नहीं हैं और न यह जानने में उनकी रुचि है कि सत्ता का सैद्धांतिक आधार है अथवा नहीं और न यह जानने में भी कि कतिपय व्यक्तियों द्वारा अन्य *व्यक्तियों को दिये गये आदेश विवेक सम्मत हैं अथवा नहीं।* सभी मानव समाजों में सत्ता को विद्यमान मानते हुए वह प्रस्तावित करते हैं कि उन व्यावहारिक तरीकों, जिनसे सत्ता को आदर मिलता है, तथा उन साधनों, जिनसे वह समर्पण प्राप्त करती है, की ओर ध्यान दिया जाय।[25] सत्ता के कतिपय सामान्य लक्षणों *की गणना करने के बावजूद दुयुवेरजे की धारणा असंगतिपूर्ण है क्योंकि वह इन*

---

21. देखें, जी० बेकर एड ए० बोस्कोव : स्टेजेज एंड चेंजेज इन माडर्न सोशियालाजीकल *थियरी, मास्को, 1961, पृ० 486 (रूसी में)*
22. मिशेल आनवेक : ले ता सों ओतोरिते, सो पुवआर, पेरिस, 1964, पृ० 9
23. फ्रांस्वा बुरीको . ऐस्सय् इस द्युन त्योरी द लोतोरिते, पेरिस, 1961, पृ० 8
24. एम० क्रोजे . 'पुवआर ए ओरगनिजासियों' आर्शीव योरोपेएन्न द सोसिओलोजी, पेरिस 1964, खंड 5, अंक 1, पृ० 52-53.
25. *मोरिस दुयुवेरजे : ऐंस्तीत्यूसिओं पोलितीक ए द्रव्वा कोंस्तित्युसिओनेल, पेरिस, 1960,*

सत्ताओं को दार्शनिक आधार देते हैं।

जीववाद की ओर प्रवृत्त सत्ता की परिभाषाएं पूर्व्वी समाजशास्त्रियों के मध्य यत्र-तत्र देखी जा सकती हैं। मोरिस मारसाल के शब्दों में "प्रमुख विशिष्ट रूप से मानवीय तथ्य नहीं है अपितु यह निर्विवाद रूप से जैवीय क्रम की स्थितियों एवं जड़ों से उपजता है तथा यही वह क्रम है जो हमें पशुओं से जोड़ता है।"[26] आंलफे वोज का निष्कर्ष है कि सत्ता की जड़ें जैवीय प्राणी के रूप में मनुष्य की प्रकृति में निहित हैं।"[27]

दुवेरजे सत्ता एवं राजनीति की घटनाक्रियाओं को न केवल पशुओं अपितु कीटाणुओं के मध्य भी देखते हैं। "सामाजिक यथार्थ—जैसा यह तात्कालिक एवं सीधे रूप में मनुष्य को ज्ञात है—में नेतृत्व, प्रभुत्व एवं सत्ता के विचार समाहित होते हैं'''प्रभुत्व जल, अग्नि, वर्षा एवं हिमखंड की भांति प्राकृतिक एवं अकाट्य घटनाक्रिया है।"[28]

बैत्रो द जुवेनेल स्पष्टतया मानते हैं कि "सत्ता हमारे लिए प्रकृति का तथ्य है।"[29]

सत्ता की जैवीय अवधारणा के सूत्र अतीत से जाकर जुड़ते हैं। अरस्तू स्वयं प्रकृति द्वारा पूर्व निर्धारित समाज में सत्ता को 'स्वाभाविक' स्थिति के रूप में देखते थे। "कुछ लोग शासन करें व अन्य शासित हों, यह न केवल आवश्यक है, बल्कि इष्टकर भी है, जन्म के क्षण से ही कुछ लोग दासता के लिए तथा अन्य कुछ शासन करने के लिए निर्दिष्ट होते हैं। शासकों एवं प्रजा की विभिन्न किस्में होती हैं फिर भी वह शासन बेहतर होता है जो बेहतर प्रजा के ऊपर किया जाता है—उदाहरण के लिए, अन्य पशुओं पर राज्य करने की तुलना में मनुष्यों पर राज्य करना निश्चित रूप से बेहतर है। कुशल व्यक्तियों द्वारा संपादित कार्य बेहतर होते हैं, और फिर जब एक व्यक्ति शासन करता है तथा अन्य शासित होते हैं तो इसे काम की संज्ञा तो दी ही जा सकती है।"[30]

कई पश्चिमी समाजशास्त्रियों ने भी जैवीय दृष्टिकोण पर गंभीर आपत्तियां व्यक्त की हैं। उदाहरण के लिए, जी० गैलोरोगी मानव समाज एवं जैवीय शरीर रचना के बीच किसी भी सादृश्य को अस्वीकार करते हैं। जार्ज बूर्दो सत्ता और समाज का जन्म एक साथ हुआ मानते हैं। ज्यां विलियम ला पियरे सत्ता को

---

26. मोरिस मारसाल : सोनोरिते, पेरिस, 1958, पृ० 9
27. आल्फ्रे वोज : बिलोसोफी द्यु पुव्वार, पेरिस, 1948, पृ० 14
28. मोरिस दुवेरजे : ऐन्नीत्युमियो पोलिटीक ए इम्पा कॉस्टित्यूसिओनेल, पेरिस, 1960, पृ० 22
29. बैत्रो द जुवेनेल : द्यु पुव्वार, जेनेवा, 1947, पृ० 34
30. द पॉलिटिक्स आफ एरिस्टाटल, न्यूयार्क, 1900, पृ० 6

सामाजिक संगठन का आत्यंतिक लक्षण—सामाजिक कारक के रूप में सामाजिक समूह में निहित—मानते हुए सत्ता की अवधारणा का स्रोत इस तथ्य में देखते हैं कि "मनुष्य समूह का अंग है।"[31]

विशिष्ट सामाजिक घटनाक्रियाओं के रूप में सत्ता की धारणा निर्विवाद रूप से इसकी प्रकृति के अध्ययन को आगे बढ़ाती है। किंतु वे बूर्ज्वा समाजशास्त्री जो स्तरों (छोटे समूहों) के सिद्धांत से प्रारंभ करते हैं तथा समाज को विरोधी हितों के आधार पर वर्गों में विभक्त नहीं देखते समस्या के मर्म को नहीं समझ पा सकते।

सत्ता की अत्यंत व्यापक अवधारणा से बचने के कुछ समाजशास्त्रियों के प्रयासों का परिणाम यह हुआ है कि उनकी दृष्टि अत्यंत संकुचित हो गयी है तथा उनके लिए सत्ता, नियंत्रण एवं प्रभाव में कोई अंतर नहीं रह गया है। हर्बर्ट साइमन 'सत्ता' एवं 'प्रभाव' की अवधारणाओं को एक-दूसरे के पर्याय के रूप में देखते हैं।[32]

गेरार बैरगरों का दृष्टिकोण एकदम आत्यंतिक है। वह सत्ता शब्द के प्रयोग का विरोध करते हुए इसके स्थान पर नियंत्रण के प्रयोग की वकालत करते हैं तथा यह मानते हैं कि ऐसा करने के कई लाभ होंगे जिनमें विचारधारात्मक तटस्थता प्रमुख है।[33] यह दृष्टिकोण वस्तुत: वैज्ञानिक विश्लेषण की दुर्बलता को प्रदर्शित करता है तथा बहुत से पश्चिमी समाज-शास्त्रियों द्वारा खारिज किया जा चुका है।

तुलना की दृष्टि से विदेशी समाजशास्त्रीय साहित्य में उपलब्ध सत्ता की कतिपय दिलचस्प एवं प्रतिनिधिक परिभाषाओं को लें। समाज विज्ञानों के शब्द-कोश में दी गयी परिभाषा इस प्रकार है: "सत्ता अपने सामान्य अर्थ में दो व्यंजनाएं देती है, (अ) घटना घटित करने की सामर्थ्य (उसका प्रयोग किया जाए अथवा नहीं), (ब) व्यक्ति अथवा समूह द्वारा सुनिश्चित तरीकों से, साधन कोई भी हो, अन्य लोगों पर डाला गया प्रभाव",[34] यह वस्तुत: मैक्स वेबर की प्रसिद्ध उक्ति, *सत्ता का अर्थ है किन्हीं सामाजिक संबंधों के भीतर, विरोध के बावजूद अपनी* इच्छा मनवाने की सामर्थ्य—सामर्थ्य के आधारों से पूरी तरह स्वतंत्र"[35] का

31. जॉं विलियाम लापियरे : ल पुव्वार पोलितीक, पेरिस, 1959, पृ० 5
32. हर्बर्ट ए० साइमन : नोट्स आन दि आब्जर्वेशन एंड मेज़रमेंट ऑफ पॉलिटिकल पावर, द जर्नल ऑफ पॉलिटिक्स, अंक 4, नवंबर 1953, खंड 15, पृ० 501
33. गेरार बैरगरो : फ़ोर्किस ऑम्नियस द पेरा, पेरिस, 1965, पृ० 39-43
34. ए डिक्शनरी ऑफ द सोशल साइंसेज़, 1964, संपा० जूलियस गोल्ड एंड विलियम एल० कोल्ब
35. मैक्स वेबर : विर्टशाफ्ट, उंट गेज़ेलशाफ्ट, ऐरस्टर हाल्ब, टुबिंगेन, 1956, पृ० 28

विवेचन है।

ऐसे समय में जब कि सत्ता की न्यायिक अवधारणाएं मान्यता अर्जित कर रही थी वेबर का—अपनी इच्छा लागू करने की सामर्थ्य के रूप में—सत्ता संबंधी विचार निस्संदेह फलदायी सिद्ध हुआ। यह विचार पश्चिमी समाजशास्त्रियों द्वारा प्रस्तुत सत्ता की अधिकाधिक परिभाषाओं का आधार है। हालांकि इस मुद्दे पर वे स्वयं मार्क्सवाद की अग्रता को बहुधा स्वीकार करते हैं। दरअसल, एंगेल्स ने सत्ता संबंधों को परिभाषित करते हुए इन्हें इच्छा-निःसृत माना था। "प्रभुता, जिस अर्थ में यह यहां प्रयुक्त है, का अर्थ है दूसरे की इच्छा का हमारी इच्छा पर आरोपण, दूसरी ओर, प्रभुता के लिए अधीनीकरण आवश्यक एवं अपेक्षित होता है।[36] मार्क्सवाद वर्गीय इच्छा को सत्ता का आधार मानता था, बूर्जा समाजशास्त्र संस्थानिक इच्छा को आधार मानता है जिसके अंतर्गत किसी राजनीतिक दल, अथवा किसी अन्य संगठन की प्रभावी इच्छा सत्ता का आधार प्रस्तुत करती है।

पश्चिमी समाजशास्त्रियों को वेबर की परिभाषा में अतिरिक्त वर्गीय आग्रह दिखलाई पड़ता है, अतः वे इसके स्थान पर ऐसे लक्षणों को सामने लाने के प्रयास करते हैं जो सामाजिक अर्थ में अधिक तटस्थ हैं इच्छा के स्थान पर विधि, आधिपत्य के स्थान पर दिशा, प्रभाव अथवा नियंत्रण (रेमंड आरों, क्रोज़े)।

हमारी राय में सत्ता की प्रकृति की परिभाषा के लिए निम्नलिखित बिंदु अत्यंत आवश्यक हैं: (1) सामाजिक सत्ता की परिभाषा के लिए वर्गीय दृष्टिकोण अपरिहार्य है, (2) सत्ता की अनेकवादी प्रकृति के अनुरूप सामाजिक राजनीतिक सत्ता के केंद्रीकरण एवं विसरण की प्रक्रियाएं साथ-साथ प्रारंभ होती हैं—सत्ता संभालने की प्रक्रिया में जनसंख्या के बड़े हिस्सों की भागीदारी के कारण। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए एक ठोस समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण विकसित करना अत्यंत आवश्यक है; (3) न केवल सत्ता की एक सामान्य अवधारणा विकसित एवं निर्मित की जाय अपितु, उसके विभिन्न विशिष्ट लक्षणों—आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक एवं राज्य संबंधी—का भी पता लगाया जाय; (4) सामाजिक सत्ता एवं व्यक्तिगत सत्ता का भेद आवश्यक—ये दोनों रूप परस्पर—क्रिया करने के बावजूद एक दूसरे से असंबद्ध रह सकते हैं (पितृ/मातृ सत्ता वर्गीय सत्ता से भिन्न होती है), (5) सामाजिक-राजनीतिक संरचनाओं की भिन्नता के आधार पर सत्ता के लक्षणों में भेद करना आवश्यक है। समाजवादी समाजों में नेतृत्व, प्रशासन, प्रभाव एवं नियंत्रण पर आधारित संबंध आगे आ रहे हैं जबकि वर्गीय विरोध को व्यक्त करने वाले समाजों में आधिपत्य एवं अधीनस्थता के

36. कार्ल मार्क्स एंड फेडरिक एंगेल्स : सिलेक्टेड वर्क्स, मास्को, 1973, खंड 2, पृ० 376

न संघ सत्ता की रीढ़ बने हुए हैं; (6) सत्ता की सामान्य अवधारणा को स्वीकृति प्रदान करते हुए सांस्थानिक (शक्ति पर आधारित) एवं विधिक सिद्धांतों को पृथक करना आवश्यक है ये एक दूसरे से गुंथे होने के बावजूद समरूप नहीं होते ।

उक्त विचारों के समावेश पर आधारित सत्ता सत्ता की परिभाषा इस रूप में प्रस्तुत की जा सकती है सामाजिक जीवन में अपनी इच्छा को क्रियान्वित करने की क्षमता एवं सामर्थ्य ही सत्ता है, आवश्यकता पड़ने पर अन्य लोगों पर उक्त इच्छा को थोप कर। राजनीतिक सत्ता, जो सत्ता की सर्वाधिक महत्वपूर्ण अभिव्यक्ति है, वर्ग, समूह अथवा व्यक्ति द्वारा अपनी इच्छा—राजनीतिक एवं विधिक मानकों मे व्यक्त—मनवाने की सामर्थ्य का ही नाम है।

राजनीतिक सत्ता की अवधारणा राज्य की अवधारणा से कहीं अधिक व्यापक है। राजनीतिक गतिविधि राज्य के चौखटे के भीतर ही जारी नहीं रहती अपितु सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था के अन्य घटक तत्वों—दलों, श्रमिक संघों, संयुक्त राष्ट्र जैसे अंतरराष्ट्रीय संगठनों आदि—मे भी जारी रहती है। राज सत्ता की प्रकृति की सही समझ तक पहुंचने के लिए आवश्यक है कि दमन द्वारा लक्ष्य प्राप्ति की इसकी सामर्थ्य पर भी विचार किया जाय।

राजसत्ता में दमन अनिवार्य रूप से निहित नहीं होता। यह अपने लक्ष्यों को अन्य साधनों—विचारधारात्मक प्रभाव, आर्थिक प्रोत्साहन आदि के माध्यम से—से भी प्राप्त कर सकती है। किंतु समाज के सदस्यो द्वारा अपनी योजनाओं की क्रियान्विति की दृष्टि से उन पर डाले जाने वाले दबाव पर इसका एकाधिकार होता है। बाह्य रूप से, सत्ता अपने अधीनस्थों पर अपनी इच्छा थोपने से जुड़ी होती है जबकि आंतरिक रूप से अधीनस्थों द्वारा इस इच्छा के समक्ष आत्म-समर्पण (स्वेच्छया अथवा बलपूर्वक) से जुडी होती है। राज सत्ता सामाजिक सत्ता का वह रूप है जिसका चरित्र वर्गीय होता है तथा जो दमन के विशिष्ट यंत्रों के उपयोग पर निर्भर रहकर समस्त जनता के लिए क़ानून एवं आदेश जारी करने का एकाधिकार रखता है। इसका अर्थ है कि एक विशिष्ट संगठन तथा उक्त संगठन द्वारा लक्ष्य प्राप्ति की गतिविधि, दोनों पर ही, समान ज़ोर है।

बहरहाल, सत्ता की गतिविधि के अर्थों में राजनीति का विश्लेषण राजनीति विज्ञान के अध्ययन के दायरे को अत्यंत विस्तृत बना देता है।

विज्ञान के रूप मे राजनीति को समझने के लिए सत्ता के निम्नलिखित लक्षणों का ज्ञान अपरिहार्य है : एक, राजनीतिक व्यवस्था के साथ इसके अंत-संबंध, तथा दो, विभिन्न समुदायों एवं व्यक्तियों के मध्य वस्तुओं के वितरण संबंधी तथा समूचे समाज के लिए बाध्यकर निर्णय लेने का इसका अधिकार एवं क्षमता। हमारी राय मे, राजनीतिक प्रक्रिया के अध्ययन के संस्थानिक एवं वृत्ति-

मूलक दृष्टिकोण इसमे समाहित हैं।

राजनीतिक व्यवस्था राजनीतिक संगठनों का समुच्चय ही नहीं है अपितु विभिन्न वर्गों, सामाजिक शक्तियों, स्तरों एवं समूहों (राज्य एवं दल के उपकरण) के अंत संबंधों की व्यवस्था भी है जिनके माध्यम से साधिकार निर्णय लिये एवं क्रियान्वित किये जाते हैं। साधिकार निर्णयों से यहां हमारा अभिप्राय उन निर्णयों (आवश्यक नहीं कि वे विधिक मानकों के अनुरूप हों) से है जो शक्ति, अर्जित विश्वास अथवा अन्य प्रभावों के माध्यम से क्रियान्वित होते हैं तथा जिन्हें समाज के बहुसंख्यक हिस्से द्वारा अनिवार्य माना जाता है।

राजनीतिक व्यवस्था एवं राजनीतिक प्रक्रिया, इस प्रकार, राजनीतिक शोध का प्रमुख विषय बन जाती है। यह राजनीति का अध्ययन करने वाले समस्त अनुशासनों की आधारशिला है।

पश्चिम मे तीन अनुशासन राजनीतिक घटनाक्रियाओं के अध्ययन मे सलग्न हैं. राजनीति विज्ञान, राजनीतिक समाजशास्त्र एवं राजनीतिक मानवशास्त्र। इन तीनों की सीमारेखाएं सुनिश्चित नहीं हैं। अमरीका एवं यूरोप में, उन्नीसवी शताब्दी के आठवें दशक मे, न्यायिक परपराओं से विकसित राजनीतिशास्त्र राज्य सघटन की पारंपरिक समस्याओं का अध्ययन करता है; बीसवी शताब्दी के चौथे दशक मे राजनीतिशास्त्र एवं समाजशास्त्र के प्रतिच्छेद बिंदु पर राजनीतिक समाजशास्त्र का उदय हुआ; राजनीतिक मानवशास्त्र मुख्यतया विकासशील देशों की राजनीतिक घटनाक्रियाओं से सबंध रखता है। पश्चिम मे इस विभाजन को सर्वत्र स्वीकृति प्राप्त नहीं हुई है, मात्र अमरीकी विद्वान इसका समर्थन करते है। राजनीति के कतिपय अध्येता राजनीतिक समाजशास्त्र तथा राजनीति विज्ञान को एक ही मानते हैं।

अलग-अलग देशों मे इन अनुशासनों मे किये जाने वाले भेद की मात्रा भी समान नहीं है। अमरीका मे दृष्टिकोण एवं पद्धतिमूलक यत्र की दृष्टि से ये तीनों एक-दूसरे की ओर झुकाव दर्शाते हैं जबकि यूरोप मे राजनीति विज्ञान एवं राजनीतिक समाजशास्त्र मे समुचित भेद किया जाता है। यूरोप में राजनीतिक क्रियाकलाप को व्याख्यायित-विश्लेषित करनेवाली दो पद्धतियों—जो सिद्धांतत. एक दूसरे से भिन्न हैं—मे सघर्ष दिखाई पड़ता है। मार्क्सवादियों के लिए विचारधारात्मक स्तर पर इन भिन्नताओं की कोई अहमियत नहीं है तथा इस मायने मे ये तीनों अनुशासन एक ही हैं।

बूर्ज्वा राजनीति विज्ञान, जिसका उदय 19वी शताब्दी के अंत मे हुआ था, का विकास एक ओर तो राज्य इजारेदार पूंजीवाद की व्यावहारिक मांगों के प्रभाव मे हुआ है, दूसरी ओर यह वर्ग-संघर्ष एवं राज्य के वर्गीय चरित्र सबंधी मार्क्सवादी सिद्धांतों के बूर्ज्वा समाजशास्त्रियों द्वारा प्रस्तुत समाधान के प्रभाव मे

भी विकसित हुआ है। राजनीति के पश्चिमी अध्येता कमोबेश यह स्वीकार करते हैं कि राजनीति विज्ञान सर्वप्रथम अमरीका में ही प्रकट हुआ। राजनीति के प्रारंभिक अमरीकी अध्येताओं ने प्रभावी विधिक सिद्धांतों को इस आधार पर त्याज्य माना कि अमरीकी यथार्थ के साथ उनका तादात्म्य नहीं था। यूरोप में बूर्ज्वा विधिक विद्वानों के बहुमत द्वारा समर्थित संतुलन एवं शक्ति विभाजन के सिद्धांत की उन्होंने गंभीर एवं तीव्र आलोचना की। इन अवधारणाओं के प्रतिकार के लिए चार्ल्स बीयर्ड ने अमरीकी परिस्थितियों के अनुरूप राजनीति विज्ञान के आविष्कार पर जोर दिया। राजनीति के अमरीकी विद्वानों का जोर प्रारंभ से ही राजकीय संस्थानों की कार्य-पद्धति पर था। विश्वविद्यालयों में सरकारी क्रिया-कलाप के अध्ययन को समर्पित विभाग खोले गये।

किंतु यह मूल प्रश्न का बाह्य पक्ष ही है। अमरीका में राजनीति विज्ञान के उदय का मूल कारण यह है कि 19वीं शताब्दी के अंत में जब इजारेदार पूंजीवाद ने बाजार पूंजीवाद का स्थान ले लिया था, राज्य की शक्तियों एवं क्रियाकलापों में बेहद बढ़ोतरी हुई थी। एक भीमकाय राज्य तंत्र विकसित हुआ। सुगम संचालन के लिए प्रशासन एवं समूचे सामाजिक राजनीतिक जीवन के तकनीकी प्रश्नों का ज्ञान आवश्यक था। अतः साम्राज्यवादी राज्यों, जिनमें संयुक्त राज्य अमरीका प्रमुख था, ने समाजशास्त्र एवं राजनीति के अध्ययन के लिए धन जुटाना प्रारंभ किया ताकि अंततः दर्शनशास्त्र एवं न्यायशास्त्र को विस्थापित करके ये अनुशासन समाज विज्ञानों के क्षेत्र में प्रमुख स्थान अर्जित कर सकें।

19वीं शताब्दी के अंत में राज्य के अमरीकी अध्ययन में बेहद प्रभावी तात्विक-न्यायिक दृष्टिकोण को इन कार्यों के उपयुक्त नहीं माना गया; इस दृष्टिकोण का जन्म यूरोप में—खासकर जर्मनी में—हुआ था जहां की ख्याति एक समर्थ न्यायिक संप्रदाय के रूप में थी। नया अनुशासन, जिसे शीघ्र ही राजनीति विज्ञान कहा जाने लगा, इस अर्थ में पहले से भिन्न था कि इसने राज्य एवं समाज के बीच के संबंधों की ओर ध्यान दिया; इसने सरकारी संस्थानों के क्रियाकलाप को अधिक व्यावहारिक एवं यथार्थपरक विश्लेषण के प्रयास भी किये। राजनीति वैज्ञानिकों ने प्रारंभ में प्रशासन के व्यावहारिक एवं विशुद्ध तकनीकी प्रश्नों पर ध्यान केंद्रित किया। इसके काफी बाद में उन्होंने उन सामाजिक कारकों का अध्ययन प्रारंभ किया जो कि राज्य की संस्थाओं के क्रियाकलाप तथा विकास को प्रभावित करते हैं। वाल्टर लिपमन तथा अन्य अमरीकी विद्वानों ने, जो कि सामाजिक मनोविज्ञान के अध्ययन में संलग्न थे, राजनीति के बूर्ज्वा अध्ययन की नयी दिशा का सूत्रपात किया। राजनीति के अमरीकी अध्येताओं ने नीति के विकास को [illegible] तथाकथित 'दबाव समूहों' के अध्ययन की ओर

राजनीति विज्ञान का यूरोप मे उदय अमरीका की तुलना मे विलंब से हुआ। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् इसका विकास प्रारंभ हुआ तथा वहां बड़ी सीमा तक अमरीका द्वारा निर्धारित शर्तों का अनुसरण किया गया। राजनीतिक अध्ययन के विस्तार मे यूनेस्को की भूमिका भी कम महत्त्वपूर्ण नही थी जिसने कि एक स्वतंत्र अनुशासन के रूप मे राजनीति विज्ञान की स्वायत्तता को स्वीकृति ही प्रदान नही की, अपितु कई तरह से इसके विकास को प्रोत्साहन भी दिया।

यहा यह स्मरण दिलाना उपयुक्त होगा कि पेरिस में यूनेस्को के तत्वावधान में आयोजित राजनीति विज्ञान के सम्मेलन मे यह तय किया गया कि 'राजनीति विज्ञान' का प्रयोग एक वचन मे किया जाय तथा राजनीति विज्ञान के बुनियादी आधार के रूप में सत्ता एवं राज्य को स्वीकृति प्रदान की गयी।[37] यह विभिन्न अनुशासनों के प्रतिनिधियों के बीच छिड़ी बहस मे कुछ स्पष्टता लाने का प्रयास था : न्यायविदो की धारणा यह थी कि राज्य का अध्ययन ही राजनीति विज्ञान का आधार है, जबकि दार्शनिकों की दृष्टि में सामाजिक दर्शन की विविधता राजनीति विज्ञान का रूप धारण करती है; समाजशास्त्री सत्ता के अध्ययन को राजनीति विज्ञान मानते हैं जबकि इतिहासकार राजनीतिक प्रक्रिया के ऐतिहासिक क्रम विकास के अध्ययन के रूप मे राजनीति विज्ञान को परिभाषित करते हैं।

यूनेस्को द्वारा प्रायोजित सम्मेलन ने यह मानकर कि वर्तमान मे अध्ययन के मूल विषय निर्धारित करना ही काफी है न तो राजनीति शास्त्र की परिभाषा प्रस्तुत करने के प्रयास किये और न इसके विषय को सूक्ष्म व ठीक रूप मे व्यक्त किया।

बूर्ज्वा राजनीति विज्ञान की पद्धति एवं विषय के निर्धारण मे दिक्कत का कारण दो प्रमुख विरोधी प्रवृत्तियां हैं जो राजनीतिक जीवन के विशिष्ट चरित्र की भिन्न व्याख्या को प्रतिबिंबित करती हैं। एक दृष्टिकोण राजनीतिक जीवन को उन संस्थानो के परिप्रेक्ष्य मे देखता है जिनके माध्यम से राजनीति व्यक्त होती है, जबकि दूसरा क्रियाकलाप अथवा व्यवहार को केंद्र मे रखता है तथा संस्थानों को विभिन्न ऐतिहासिक रूपो मे से एक मानता है। पहली दशा मे राजनीति विज्ञान राज्य के सरकारी अथवा राजनीतिक संस्थानों के अध्ययन के रूप मे उभरता है जबकि दूसरी दशा में इसे सत्ता अथवा निर्णय प्रक्रिया के अध्ययन के रूप मे परिभाषित किया जाता है।

20वीं शताब्दी के मध्य तक राजनीति विज्ञान को बहुधा राज्य का ही माना जाता था। इस दृष्टिकोण का सूत्रपात निकोलस मैकियावली ने

37 एच. मोरिस्क, प्राबुस्का कासेप्पा नोवी पालितिस्ने,

था जिन्होंने राज्य संबंधी पूर्ण एवं व्यवस्थित सिद्धांत प्रतिपादित करने के प्रयास किये थे तथा जो संभवतया पहले व्यक्ति थे जिन्होंने 'राज्य' शब्द का प्रयोग किया था। राजनीतिक व्यवस्था शब्द, जो विषय के विशिष्ट चरित्र को उपयुक्त रूप में व्यक्त करता है, का व्यापक प्रयोग काफी समय बाद प्रारंभ हुआ। राजनीति विज्ञान के प्रति कार्यवाही अथवा क्रियात्मकता के आधार पर अपनाये गये दृष्टिकोण की शुरुआत बेशक 19वीं शताब्दी में हो चुकी थी किंतु यह 20वीं शताब्दी के मध्य में जाकर स्थापित हो सका।

संस्थागत एवं क्रियात्मक दृष्टिकोणों में विभेदीकरण के साथ-साथ राजनीति विज्ञान की विषय-वस्तु की अवधारणा का भी क्रमिक विकास हुआ है। 19वीं शताब्दी के अंतिम चरण में राजनीति वैज्ञानिकों ने राज्य को राजकीय प्रतिमानों के समुच्चय के रूप में न देखकर सत्ता के लिए विभिन्न समूहों की प्रतियोगिता की व्यवस्था के रूप में देखना प्रारंभ किया, जबकि इससे पहले राज्य को ही अध्ययन का विषय माना जाता था। खासकर त्रीतश्के (1897) तथा मन प्लोविक्ज (1885) राजन हॉफर (1880) एवं ओपन हाइमर (1907) जैसे पहले राजनीतिक समाजशास्त्रियों ने विभिन्न समूहों एवं वर्गों के संघर्षों में शक्ति एवं सत्ता को राजनीतिक संबंधों के प्रमुख लक्षण के रूप में देखा। अमरीका में राजनीतिक अध्ययन से संबंधित इन विचारों को यूरोप की तुलना में विलंब से स्वीकृति प्राप्त हुई जिसका कारण यूरोपीय सामाजिक दर्शन एवं सिद्धांत के प्रति उनका सहज नकारात्मक दृष्टिकोण था। 1930 में जॉर्ज कैटलिन ने, तथा 1934 में चार्ल्स मरियम ने सत्ता संबंधों की प्रणाली के रूप में राजनीति का अध्ययन प्रारंभ किया। इसके पश्चात् अन्य विद्वानों ने भी इस दृष्टिकोण का समर्थन किया—इनमें बी० ओ० की (1942), हैरल्ड लासवेल (1948) एवं एम० ए० काप्लन (1950) प्रमुख हैं।

राजनीति विज्ञान के क्रियात्मक दृष्टिकोण के विकास के लिए सत्ता की अवधारणा विशेष रूप से फलदायी सिद्ध हुई। किंतु इस धारणा की स्पष्टता के घोर अभाव, इसकी अतिशय व्यापकता तथा इसमें निहित वर्गीय चरित्र के नकार का परिणाम यह हुआ है कि पश्चिमी राजनीतिशास्त्र अध्ययन के विषय को परिभाषित करने में स्वयं को अलंघ्य कठिनाइयों से घिरा पाता है। 20वीं शताब्दी के मध्य में इस धारणा को बल मिला कि 'निर्णय' की अवधारणा के माध्यम से सत्ता की परिभाषा संभव है। सत्ता को समस्त सामाजिक प्रक्रियाओं की दिशा—निर्णय लेने व उनके क्रियान्वयन पर आधारित—के रूप में देखा जाने लगा। अतः राजनीतिक जीवन को अंत:संबंधों की ऐसी व्यवस्था के रूप में स्वीकार किया गया जिसके भीतर सामाजिक निर्णय लिये एवं क्रियान्वित किये जाते हैं, तथा राजनीति विज्ञान सामाजिक नीति के अध्ययन के रूप में स्वीकृत हुआ। यह दृष्टि-

कोण जिसका प्रादुर्भाव के० श्मिट्ट की कृतियों में हुआ शीघ्र ही अमरीकी राजनीति विज्ञान को प्रभावित करने लगा। कालांतर में पश्चिम में भी सर्वत्र इसका प्रभाव अनुभव किया जाने लगा।

इस दृष्टिकोण की एकांगिता के अहसास के परिणामस्वरूप निर्णयवादी सिद्धांत के साथ राजनीतिक व्यवस्था के चित्रण को जोड़ने के प्रयास भी किये गये। राजनीति विज्ञान का प्रमुख कार्य राजनीतिक व्यवस्था का चित्रण माना जाने लगा, व्यवहार अथवा अंतःसंबंधों की प्रणाली के रूप में जिसके अंतर्गत् सभी के लिए बाध्यकारी निर्णय लिये एवं क्रियान्वित किये जाते हैं। राजनीति विज्ञान के विषय को अधिक सुस्पष्ट बनाने की दृष्टि से वस्तुओं के वितरण की अवधारणा को इसकी विषय वस्तु में जोड़ कर एक अग्रगामी कदम उठाया गया। बूर्ज्वा राजनीति वैज्ञानिक राजनीतिक व्यवस्था को निर्णय सामर्थ्य पर आधारित वस्तु वितरण के यंत्र के रूप में देखने लगे।

व्यवहारवादी सिद्धांत—जो औपचारिक संरचनाओं (न्यायिक दृष्टि से गठित) एवं अनौपचारिक समूहों वास्तविक व्यवहार पर आधारित है—ने बूर्ज्वा राजनीति विज्ञान संबंधी दृष्टिकोण के क्षेत्र में हुए परिवर्तनों के संदर्भ में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। राजनीति विज्ञान ने व्यक्ति, उसकी मनोवृत्तियों, अभिप्रायों, मूल्यांकन एवं ज्ञान पर ध्यान देने के प्रयास किये हैं।

अमरीकी राजनीति विज्ञान पर व्यवहारवाद का विशिष्ट रूप से टिकाऊ प्रभाव रहा है। 1908 में ग्राहम वालेस ने 'राजनीति में मानव प्रकृति' नामक अपनी कृति में राजनीतिक अभिप्रेरणाओं को राजनीतिक जीवन के नये और सस्थानिक कारक के रूप में प्रस्तुत किया। इस विचार को बहुत से विद्वानों ने आगे बढ़ाया। वाल्टर लिपमन ने 'लोक अभिमत' (1922) में व्यक्ति-व्यवहार के निर्धारण में रूढ़िबद्ध धारणाओं की भूमिका के बारे में लिखा। हैरल्ड लासवेल की 'राजनीति एवं मनोरोग विज्ञान' (1930) में राजनीतिक क्रियाकलाप के अवचेतन एवं अव्यक्त अभिप्रायों को उद्घाटित करने हेतु मनो-विश्लेषण को एक पद्धति के रूप में प्रयोग करने के प्रयास किये गये। 1930 के दशक में शिकागो संप्रदाय ने राजनीति के अध्ययन में, बड़े पैमाने पर, मनोवैज्ञानिक पद्धतियों को लागू किया। इस दृष्टिकोण को लोकप्रिय बनाने वालों में प्रमुख, जोर्ज कैट्लिन ने अपनी कृति 'सुव्यवस्थित राजनीति' में लिखा : "राजनीति विज्ञान के लिए व्यावहारिक महत्व रखनेवाले इन समस्त अंत अनुशासनीय संबंधों में से सर्वाधिक महत्वपूर्ण संबंध राजनीति एवं मनोविज्ञान के बीच का है। प्रस्तुत लेखक के लिए यह संबंध मूलभूत है।"[38]

38. जॉर्ज कैट्लिन : सिस्टेमेटिक पालिटिक्स, टोरंटो, 1962, पृ० 38

वैयक्तिक व्यवहार को आधार बनाकर, वस्तुतः व्यवहारवादियों ने समाज की समग्रता के विश्लेषण को ताक पर रखकर, राजनीतिक प्रक्रिया के गौण कारकों का ही चित्रण किया है। उस अंधी गली—जिसमें कि अतिशय मनोविज्ञानवाद ने राजनीति विज्ञान को ला फेंका था—से निकलने के प्रयासों के परिणामस्वरूप राजनीति के बुर्जुआ अध्येता समूह के सिद्धांत की ओर प्रवृत्त हुए हैं। इस सिद्धांत, राजनीति विज्ञान मे जिसे आर्थर बेंट्ले ने प्रस्तावित किया था, का उदय मार्क्सीय वर्ग सिद्धांत का विकल्प प्रस्तुत करने के प्रयासों से हुआ। इस दृष्टि से बेंट्ले की उक्ति लाक्षणिक है: "राजनीतिक जीवन के आर्थिक आधार को निश्चय ही पूरी तरह स्वीकार किया जाना चाहिए, यद्यपि इसमें यह अर्थ नहीं निकाला जाना चाहिए कि आर्थिक आधार, अपने सामान्य सीमित अर्थों में, राजनीतिक कार्यवाही का एकांतिक अथवा प्रभावी आधार हो सकता है।"[39]

इस प्रवृत्ति के समर्थकों की दृष्टि में सामाजिक समूहों की रचना हितों की समानता के आधार पर होती है न कि उत्पादनक्रिया व्यापार, आर्थिक कारकों अथवा वास्तविक सामाजिक दृष्टिकोण के आधार पर। बेंट्ले की दृष्टि में समूह का अस्तित्व समान हितों वाले व्यक्तियों के एकीकरण मात्र के कारण होता है। इन समूहों के निर्माण के सामाजिक कारणों को एकदम अनदेखा करके वह अभिप्रायों, भावनाओं, आकांक्षाओं, मनोवेगों तथा अन्य मनोवैज्ञानिक कारकों की ओर विशेष ध्यान देते हैं।

व्यवहारवादियों का यह दावा है कि राजनीतिक कारक के रूप में वैयक्तिक एवं लोक मनोविज्ञान का अध्ययन मार्क्सवाद के लिए असंगत है। उनका यह भी दावा है कि मनोवैज्ञानिक कारक की खोज पश्चिमी मनोविज्ञान ने की है। यह सरासर गलत है। हम जानते हैं कि लेनिन ने कितनी ही बार क्रांतिकारी संघर्ष में लोक मनोविज्ञान एवं श्रमिक वर्ग के विचारों तथा उनकी मनोदशा की भूमिका पर विचार किया था। उन्होंने लिखा कि "भौतिकवाद का निष्कर्ष यह है कि घटना प्रवाह पर आधारित विचार प्रवाह ही वैज्ञानिक मनोविज्ञान से संगति रखता है।"[40] बहरहाल, मार्क्सवाद-लेनिनवाद के लिए वस्तुनिष्ठ उत्पादन संबंधों एवं वर्ग संघर्ष के निर्णायक प्रभाव की स्वीकृति ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह प्रभाव राजनीति एवं राजनीतिक संबंधों को निर्मित करने वाले कारकों—लोक एवं व्यक्ति मनोविज्ञान—की समझ की कुंजी प्रस्तुत करता है।

यहां बुर्जुआ राजनीति विज्ञान द्वारा निर्णय करने के सिद्धांत को दिये जाने वाले महत्त्व के बारे में दो शब्द कहना उपयुक्त होगा। इसकी मान्यता है कि

किसी भी निर्णय के अध्ययन के लिए तीन चंचल तत्त्वों—सक्षमता, सूचना एवं अभिप्रेरणा का विश्लेषण पर्याप्त होता है। निर्णय लेने की प्रक्रिया की पड़ताल के समय ये कारक निःसंदेह बेहद महत्त्वपूर्ण होते हैं। किन्तु ऐसे विश्लेषण मात्र से सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन की प्रामाणिक प्रवृत्तियों—जो अंतिम विश्लेषण में उक्त निर्णय में व्यक्त होती हैं—की व्याख्या संभव नहीं है। निर्णयकर्त्ताओं की जीवनियों, उनके शैक्षिक स्तर, लोकजीवन एवं समूह विशेष के सदस्य के रूप में उनके आचरण का अध्ययन—यह सभी लाभदायक है अतः इसे अनदेखा नहीं किया जाना चाहिए। किंतु राजनीति के अध्ययन को इस रूप में घटा देने का अर्थ निर्णयकर्ताओं के राजनीतिक विचारों के निर्माण में निर्णायक भूमिका निभाने वाले गूढ़ सामाजिक कारकों, सामाजिक अपेक्षाओं एवं हितों से आंख मूंदना होगा।

समकालीन अमरीकी राजनीति विज्ञान पर व्यवहारवाद के अतिरिक्त परिणामवाद—अपने समस्त रूपांतरों में—का भी गहरा प्रभाव है। राजनीतिक अध्ययन के क्षेत्र में परिणामवाद एक ऐसा प्रयास है जो राजनीतिक जीवन के बाह्य रूपों के औपचारिक एवं न्यायवादी तथा संस्थानिक अध्ययन से बचकर राजनीतिक प्रक्रिया के अधिक यथार्थवादी दृष्टिकोण तक पहुंचता है। एक वायवी सैद्धांतिक आधार के अभाव में परिणामवाद अपरिष्कृत भौतिकवाद की अवधारणाओं को उधारकर उन्हें अन्य दार्शनिक प्रणालियों के तत्त्वों के साथ जोड़कर विभिन्न दर्शनग्राही मिश्रण तैयार कर लेता है। अमरीकी राजनीति विज्ञान में राजनीतिक यथार्थवाद विकृत होकर साम्राज्यवादी राजनीतिक यथार्थ का पक्ष समर्थक मात्र रह गया है, जहां परिणामवादियों के शब्दों का उपयोग करें तो, अमूर्त नैतिक एवं दार्शनिक दृष्टि से भी आलोचना की वैधता को नकारा जाता है।

ऐसे परिणामवादियों के सबसे प्रमुख प्रतिनिधि चार्ल्स मेरियम हैं। जिनकी मान्यता है कि राजनीतिक प्रक्रिया का प्रेरणास्रोत शक्ति की नीति है। उनकी दृष्टि में शक्ति ही एकमात्र वास्तविकता है। "आर्थिक, धार्मिक एवं जातीय मुद्दे आते-जाते रहते हैं......वे संघर्ष एवं पुंज जोकि सामूहिक हितों के टकराव से उत्पन्न होते हैं, इनके क्रूर समाधान एवं शक्ति उन्मादियों के वीरतापूर्ण कृत्य सभी संघर्ष के ऐसे वृत्तांत हैं जो हमारे सामाजिक एवं दैवीय उत्तराधिकार एवं विविध सामाजिक अनुभवों के परिष्कार से निःसृत अपर्वतन मानवीय शक्तियों के अनुकूलन एवं सामंजस्य के प्रयासों की कहानी कहते हैं।"[41]

मेरियम के अनुसार 'राजनीतिक यथार्थ' का आधार व्यक्ति की इच्छा एवं

---

41. चार्ल्स मेरियम, पॉलिटिकल पावर, न फ्री प्रेस, ग्लैंको, 1950, पृ० 30

उद्देश, शक्ति के लिए संघर्ष तथा उसके प्रयोग के माध्यम से प्रकट होता है। उनकी राय में, राजनीति विज्ञान के अध्ययन का प्रमुख विषय यही होना चाहिए। किंतु सामाजिक मानदंडों के स्थान पर व्यक्तिगत मानदंडों को स्थापित करके मरियम एवं अन्य व्यवहारवादियों ने उस राजनीतिक यथार्थ को धूमिल ही किया है जो कि पूंजीवादी समाज के सामाजिक-राजनीतिक संबंधों का सार तत्व है। मरियम का कहना है कि "सामाजिक समूहों के तनाव···संगठित राजनीतिक कार्यवाही को आवश्यक बनाते है,"[42] किंतु यह अर्थ को सीमित ही करता है क्योंकि वह वस्तुतः राजनीतिक प्रक्रिया के वास्तविक विश्लेषण को व्यक्तियों के क्रियाकलाप एवं उनके मनोविज्ञान के अध्ययन के साथ संबद्ध करते हैं।

एक अन्य परिणामवादी, हैरल्ड लासवेल, ने सामाजिक जीवन एवं 'शक्ति के प्रति ध्यान के सिद्धांत' के बीच की खाई को पाटने का प्रयास किया है। वह राजनीति विज्ञान के कार्य को राजनीति एवं सामाजिक प्रक्रियाओं के संबंधों के यथार्थवादी विश्लेषण के विकास में निहित मानते हैं। इस प्रकार के विश्लेषण के लिए प्रस्थान बिंदु के रूप में लासवेल राजनीति में 'मूल्यों' की अवधारणा को प्रस्तुत करते हैं। उनके शब्दों में, "किसको क्या, कब और कैसे मिलता है का अध्ययन ही राजनीति है।"[43] उनकी राय में सत्ता के उपयोग एवं विभाजन के प्रकार्य के रूप में मूल्यों के वितरण का अध्ययन ही राजनीति विज्ञान है। मूल्यों में वह शक्ति, सम्मान, ईमानदारी, संपन्नता, स्नेह, सपदा, प्रबोधन एवं शिल्पकारिता को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण मानते हैं। "किसी भी मूल्य का अधिकतम अंश प्राप्त करने वाले कुछ लोग विशिष्ट वर्ग में आते हैं तथा शेष सभी सामान्य जन कहलाते हैं।"[44]

लासवेल ने, इस तरह, राजनीतिक प्रक्रिया के आधार के रूप में विशिष्ट वर्गों की धारणा के साथ मूल्य-वितरण की धारणा को नत्थी कर दिया है। इन सिद्धांतों का चरम बिंदु हिंसा का समर्थन है। हिंसा की व्याख्या चरम एवं अपरिहार्य राजनीतिक यथार्थ के रूप में की गयी है; यह राजनीतिक सक्रियतावाद अथवा जनता—जिसे व्यवहारवादियों ने सामान्य जन की कोटि में रखा है—की क्रांतिकारी कार्यवाही को साम्राज्यवादी विशिष्ट वर्ग द्वारा दिया गया विश्वसनीय उत्तर है। लासवेल की भांति राजनीति के अमरीकी अध्येताओं का बहुमत राजनीति विज्ञान को सत्ता विज्ञान मानता है।

जबकि यूरोप में (फ्रांस में) राजनीति विज्ञान का उद्भव न्यायशास्त्र में से

42. चार्ल्स मरियम : पालिटिकल पावर, ए स्टडी आफ पावर, ग्लैंको 1950, पृ॰ 15
43. हैरल्ड लासवेल : वर्ल्ड पालिटिक्स एंड पर्सनल इनसीक्योरिटी, ए स्टडी आफ पावर,

तथा जर्मनी मे दर्शनशास्त्र में से हुआ है, अमरीका मे यह विभिन्न सप्रदायो द्वारा विकसित राजनीतिक जीवन के अध्ययनों के माध्यम से स्थापित हुआ, प्रारंभ से ही इसने अपने व्यावहारिक लक्ष्य निर्धारित कर लिये थे तथा यह निरंतर व्यावहारिक नीति की व्याख्या एव टीका से जुड़ा रहा है। इसका परिणाम यह हुआ है कि अमरीकी राजनीति विज्ञान एक ओर तो सामान्य राजनीतिक सिद्धात के महत्त्व को नकारता है तथा दूसरी ओर अमरीकी राजनीतिक सरचना का समर्थन करता है, उसी परिप्रेक्ष्य मे जिसमे कि अन्य सभी समकालीन व्यवस्थाओ का मूल्यांकन किया जाता है। पश्चिमी यूरोप के राजनीतिक सिद्धांतों—जो वस्तुनिष्ठता का आभास देते हैं तथा किसी प्रदत्त सामाजिक सरचना के प्रति निष्ठा को सुनियोजित तरीक़े से धूमिल बनाते हैं—से तुलना किये जाने पर इस प्रवृत्ति की वर्गोन्मुखता विशेष रूप से मुखर हो उठती है।

हमने पश्चिमी राजनीति विज्ञान के कतिपय प्रातिनिधिक सिद्धांतों की परीक्षा कर ली है। समस्त पश्चिमी राजनीति विज्ञान मे काफ़ी समानता है। बूर्ज्वा समाज विज्ञान की किसी भी अन्य शाखा की तुलना मे राजनीति विज्ञान हमारी गतिशील एवं अंतर्विरोधी शताब्दी के जीवन की परिस्थितियों के बारे मे विचार करने एव इससे अपना तादात्म्य स्थापित करने को कही अधिक विवश है। इससे इसका अध्ययन विषय—राजनीति एवं राजनीतिक सबध, जो सामाजिक जीवन के सर्वाधिक चचल तत्त्व है, एवं क्रियात्मक भूमिका, क्योंकि बूर्ज्वा राजनीति विज्ञान स्वयं को शासक शक्तियों के राजनीतिक संस्थानों की सेवा में समर्पित कर देता है—दोनों ही स्पष्ट हो जाते है। वर्तमान स्थिति इसे प्रभावित किये बिना नही रह सकती; दो विश्व व्यवस्थाओ का तीव्र सघर्ष, समूची दुनिया (ख़ासकर विकासशील देशों मे) मे समाजवाद के प्रति बढ़ती हुई सहानुभूति, जनता का बढ़ता हुआ सक्रियतावाद, राजनीतिक प्रक्रियाओं को प्रभावित करने के लिए उसका उन्नत सघर्ष, उत्पादन एव प्रशासन को पुनर्गठित करने की प्रवृत्ति के साथ राज्य पूंजीवाद का विकास आदि आज की परिस्थिति के लक्षण हैं। अतः हमारे समय के पश्चिमी राजनीति विज्ञान मे एक ओर तो हम अधिक यथार्थवाद तथा राजनीतिक जीवन के वास्तविक तथ्यों के विश्लेषण का प्रयास देखते हैं, तो दूसरी ओर सुनिश्चित रूप से बढ़ी हुई सामाजिक हितबद्धता—वस्तुनिष्ठता एव विज्ञानवाद के मुखौटे मे दबी-ढंकी—देखते है।

आधुनिक पश्चिमी राजनीतिक समाजशास्त्र मार्क्सवादी समाजशास्त्र—जिसने न केवल अपनी सैद्धांतिक श्रेष्ठता एव व्यावहारिक सामर्थ्य सिद्ध कर दी है, तीसरी दुनिया के सामाजिक यथार्थ को रूपांतरित करने के उपकरण प्रस्तुत करके—के विशाल प्रभाव की अनदेखा नही कर सकता। किंतु पहले के प्रभावी दार्शनिक सिद्धांतों को त्याग देने तथा मार्क्सवाद को स्वीकार न कर पाने के

परिणामस्वरूप पश्चिमी राजनीति विज्ञान के पास कोई सैद्धांतिक आधार ही नहीं है।

राजनीतिक अध्ययन की पद्धतियां

विशिष्ट राजनीतिक घटनाक्रियाओं का अध्ययन (1) ऐतिहासिक भौतिकवाद के पद्धतिशास्त्र, (2) राजनीतिक सिद्धांत की श्रेणियों एवं (3) समस्या-अध्ययन की समाजशास्त्रीय प्रविधियों पर आधारित होता है। यह विभेदीकरण विश्लेषण के तीन स्तरों के अनुरूप होता है: ऐतिहासिक भौतिकवाद द्वारा सुपरिष्कृत सामान्य पद्धतिशास्त्र, मध्य-वृत्ति राजनीतिक सिद्धांत एवं राजनीतिक जीवन की विशिष्ट घटनाक्रियाओं के अध्ययन में प्रयुक्त विधियां। राजनीति का पद्धतिशास्त्र अथवा सामान्य सिद्धांत ऐतिहासिक भौतिकवाद का कमोवेश स्वायत्त अंग है। यह राजनीतिक व्यवस्थाओं के उद्भव विकास एवं ऐतिहासिक विस्थापन में व्यक्त सामान्य प्रतिरूपों को पृथक कर देता है। दूसरे शब्दों में इसे राजनीति का दर्शन शास्त्र कहा जा सकता है।

मध्य-वृत्ति राजनीतिक सिद्धांत अथवा राजनीति का समाजशास्त्र विशिष्ट समाज के राजनीतिक संबंधों से संबंध रखता है तथा सीमित दायरे में राजनीतिक जीवन के सामाजिक अध्ययन की विधियों एवं सिद्धांतों की व्याख्या करता है।

इतिहास की भौतिकवादी समझ भौतिक वस्तुओं की उत्पादन प्रणाली के निर्णायक महत्त्व को तथा आधार एवं अधिरचना के सीधे तथा पारस्परिक संबंधों को स्वीकार करती है; यह राज्य, राजनीतिक व्यवस्था एवं राजनीति जैसी जटिल घटनाक्रियाओं की प्रकृति में विभेद करने की कुंजी प्रस्तुत करती है। साथ ही, द्वंद्वात्मक एवं ऐतिहासिक भौतिकवाद समस्त अनुशासनों, राज्य एवं राजनीति के अध्ययन समेत, में समान रूप से प्रयुक्त होने वाले पद्धति शास्त्र को रूपायित करता है।

राजनीतिक घटनाक्रियाओं के विश्लेषण में भौतिकवादी द्वंद्ववाद के प्रयोग के विशिष्ट लक्षण व्यक्त होते हैं। कुछ उदाहरणों को देखना उपयुक्त होगा। विपरीतों की एकता एवं संघर्ष का सिद्धांत, जोकि सामाजिक जीवन के वर्गीय विश्लेषण का आधार है, राजनीतिक व्यवस्थाओं, अंतरराष्ट्रीय संबंधों तथा राज्यों की घरेलू एवं वैदेशिक नीतियों के चरित्र की समझ के लिए बेहद महत्त्वपूर्ण है। तत्व विखंडन की प्रक्रिया में विपरीतों के जन्म तथा उनके बीच होने वाले संघर्ष को लेनिन एक मूलभूत नियम—द्वंद्ववाद का सारतत्त्व मानते थे। उन्होंने लिखा था, "विपरीतों के संघर्ष को ही विकास कहते हैं···विपरीतों की एकता सशर्त, अस्थायी, कामचलाऊ एवं सापेक्ष होती है। एक-दूसरे से स्वतंत्र विपरीतों का

र्द निरपेक्ष होता है, ठीक वैसे ही जैसे विकास एवं गति निरपेक्ष होते हैं।"[15]

राजनीतिक संरचनाओं, उनकी क्रियाशीलता तथा उनके संघर्षों एवं अंत -याओं के विश्लेषण के लिए यह मत असाधारण महत्व का है। समकालीन र्वा राज्यों—जो राष्ट्रीय हितों को प्रतिबिंबित करने का ढोंग करते है—मे हित विरोधी प्रवृत्तियों को पृथक किये बिना न तो उनकी प्रकृति को समझा सकता है और न उनकी राजनीति को। बूर्ज्वा सत्ता का विरोध करने वाली माजिक शक्तियों के चरित्र पर विचार किये बिना, अपरिहार्य क्रांतियों के रणामस्वरूप उन संरचनाओं मे घटित होने वाले मूलभूत परिवर्तनों की ऱ्यवाणी करना असंभव है।

नूतन एवं पुरातन का तथा घटनाक्रियाओं के क्रांतिकारी एवं रूढिवादी पक्षों संघर्ष—इस प्रवाह मे नूतन पुरातन को विस्थापित कर देता है—किसी भी नीतिक प्रक्रिया का निर्धारक लक्षण है। पूंजीवादी समाज के सामाजिक न का सारतत्व सर्वहारा एवं पूंजीपतियों के बीच जारी वर्ग-संघर्ष के नियम त्रबद्ध देखा जा सकता है। वर्गीय दृष्टिकोण बूर्ज्वा राज्य के राजनीतिक न—जो उग्र संघर्षों से भरा हुआ अस्त-व्यस्त एवं अशांत जीवन है—के श्लेषण की आधारशिला है।

यहां इस तथ्य को अनदेखा नहीं किया जा सकता कि राज्य का अस्तित्व हित संरचना के रूप मे भी होता है जोकि, एंगेल्स के शब्दों मे, विरोधी वर्गों ाकर रखता है तथा उन्हें पारस्परिक विध्वंस एवं समाज के विनाश के र प्रदान नहीं करता है। बूर्ज्वा समाज की यह एकता यद्यपि कामचलाऊ ापेक्ष होती है तथापि यह अस्तित्व मे होती है तथा वैदेशिक नीति के क्षेत्र शेषतया प्रतिबिंबित होती है। बूर्ज्वा राज्य अपने दायित्व निर्वाह एवं कार्य-ार को संपूर्ण समाज के नाम पर बेशक चलाते हों, इनमे शासक वर्गों की ही व्यक्त होती है, दमित एवं शोषित वर्ग किसी-न-किसी रूप मे, अपनी से स्वतंत्र, इन कार्यों को पूरा करने मे ही संलग्न रहते हैं।

विश्लेषण के तीन स्तर राजनीतिक परिवर्तनों के विश्लेषण मे प्रयुक्त भिन्न ायों को प्रतिबिंबित करते हैं। यह कहने की आवश्यकता है कि विभेदी-सिद्धांत पर आधारित नहीं है क्योंकि भिन्न पद्धतियों एवं प्रक्रियाओं के ाल के बावजूद राजनीतिक प्रक्रियाओं का अध्ययन वैज्ञानिक हो सकता है, वह मार्क्सवादी लेनिनवादी विश्व दृष्टि—द्वंद्वात्मक एवं ऐतिहासिक ादाद—में विश्वास रखता है। मुख्य मुद्दा यथार्थ की पड़ताल के विभिन्न र विश्लेषण प्रविधियों के विभेदीकरण से संबंधित है—सर्वोच्च स्तर पर

[15] व्ला॰ इ॰ लेनिन : कलेक्टेड वर्क्स, खंड 1, पृ॰ 360

(समग्र ऐतिहासिक प्रक्रिया, इसके प्रमुख अन्तर्विरोध एवं प्रगतिशील शक्तियाँ आदि को समेकित करते हुए) मध्य स्तर पर (विशिष्ट ऐतिहासिक परिस्थितियों में व्यवस्था का कार्य) तथा अनुभववादी स्तर पर।

उच्चस्तरीय पद्धतिशास्त्र विचारधारा से प्रभावित होता है तथा किसी भी अध्ययन को आवश्यक भूमिका के रूप में उपयुक्त होता है। मध्य एवं निम्न-स्तरीय पद्धतियाँ विचारधारा से परोक्ष रूप से ही जुड़ी होती हैं। तथापि मध्यम एवं अल्प परासी प्रविधियों में भेद किया जाना चाहिए। पहले के अध्ययन की विधि सामाजिक प्रक्रियाओं के अन्तर्गत अंतर्संबंध एवं तर्क को प्रतिबिंबित करती है जबकि मध्यम परासी, अनुभववादी विधि—मुख्य तकनीकी—प्रविधियों का समुच्चय मात्र है जिसका प्रयोग अनुभवात्मक आंकड़े एकत्र करने तथा उन्हें श्रेणीबद्ध करने के लिए किया जाता है। गणित एवं साइबरनेटिक्स की उपलब्धियों के परिणामस्वरूप गवेषण की प्रविधियों, कार्यविधियों एवं उपकरणों के क्षेत्र में आयी क्रांति तथा कम्प्यूटर प्रौद्योगिकी के व्यापक प्रयोग का सामाजिक राजनीतिक अध्ययनों के लिए विशेष महत्त्व है। इससे राजनीतिक जीवन की घटना-क्रियाओं एव घटनाओं से संबंधित आंकड़ों के संचयन, भंडारण एव विश्लेषण को नये प्रकार से संगठित करना संभव बन गया है।

उदाहरण के लिए, व्यवस्था विश्लेषण विधि (सिस्टम्स थियोरी) जो राजनीतिक संबंधों को कार्यों, भूमिकाओं एवं संरचनाओं की अंगभूत व्यवस्था के रूप में देखती है, राजनीतिक संरचनाओं के विश्लेषण के लिए बेहद समर्थ है। सांख्यिकीय प्रतिचयन, मतदान, साक्षात्कार एवं अन्य तकनीकी पद्धतियाँ विभिन्न संस्थानों के कार्य व्यवहार को प्रतिबिंबित करने वाले अनुभवपरक आंकड़े एकत्र करने के लिए उपयोगी हैं। जाहिर है, विश्लेषण स्तरों का यह त्रिपक्षीय विभेदीकरण सापेक्ष होता है क्योंकि किसी परियोजना से जुड़ा शोधकर्मी *यथार्थ के ज्ञान के सभी साधनों का प्रयोग करता है, बिना इन अथवा अन्य* कोटियों में उन्हें बांटे हुए।

सामान्य तौर पर यह कहा जा सकता है कि राजनीति का अध्ययन उच्चस्तरीय पद्धतिशास्त्र एवं अल्प परासी प्रविधियों का, जोकि समाजशास्त्र द्वारा राजनीति की विषय-वस्तु के निहित लक्षणों को ध्यान में रखकर विकसित की गयी हैं—प्रयोग करता है। यह एक महत्त्वपूर्ण प्रतिबंध है। इसका अर्थ है—एक, कि राजनीतिक जीवन के ठोस अध्ययन के लिए ऐतिहासिक भौतिकवाद एवं प्रायोगिक समाजशास्त्र द्वारा विकसित पद्धतियाँ जिनसे श्रेष्ठ परिणाम प्राप्त किये जा सकते हैं—का चयन अत्यंत आवश्यक है, तथा दो, कि राजनीति का भौतिकवादी सिद्धांत संबंधों के विस्तृत अध्ययन में प्रयुक्त विशिष्ट

राजनीति के अध्ययन मे प्रयुक्त सर्वाधिक महत्वपूर्ण विधियां ये हैं ·

(1) कारक सिद्धांत—जो राजनीतिक प्रक्रिया पर अर्थशास्त्र, संस्कृति आदि के प्रभाव का अध्ययन करता है; (2) सामाजिक समुदायों (वर्ग, राष्ट्र, सामाजिक समूह) एव राजनीतिक जीवन में उनकी भूमिका का विभेदीय विश्लेषण; (3) राजनीतिक संस्थानो (राज्य, दल, राजनीतिक शासन) का सरचना-वृत्ति-मूलक विश्लेषण; (4) बडी एवं छोटी राजनीतिक सरचनाओं का व्यवस्था विश्लेषण; (5) राजनीतिक प्रशासन एवं सामाजिक नेतृत्व का समन्वित विश्लेषण; (6) राजनीतिक प्रक्रिया के तत्वों की अत क्रिया का सचार विश्लेषण; (7) राजनीतिक संबंधो, विशेषकर अतरराष्ट्रीय स्तर पर, के निर्माण के कारक के रूप में शक्तियो के अन्योन्याश्रय का विश्लेषण; (8) राजनीतिक गति विज्ञान का विश्लेषण, (9) सबद्ध अथवा विरोधी राजनीतिक व्यवस्थाओ का तुलनात्मक विश्लेषण; (10) राजनीतिक आयोजना तथा पूर्वानुमान की विधिया।

इन प्रविधियों के परिगणन के साथ ही हमने उन दायरो को भी निर्दिष्ट किया है जहा, हमारी दृष्टि मे, वे सबसे अधिक लाभदायक हैं। यह स्पष्ट है कि राजनीतिक सबधो के अध्ययन मे इन प्रविधियो का, इनकी समग्रता मे, प्रयोग अनिवार्य है। इस प्रयोग का आधार ऐतिहासिक भौतिकवाद—और यदि संबंधित विषय के सदर्भ मे कहें तो राजनीति के भौतिकवादी सिद्धात—द्वारा विकसित मार्क्सवादी पद्धतिशास्त्र है। जहा तक अध्ययन के अनुभववादी स्तर का प्रश्न है, उक्त पद्धतिशास्त्र लगभग उन्ही समस्त प्रविधियों का प्रयोग करता है जिन्हें अनुभववादी सामाजिक अनुसंधान के अन्य क्षेत्रों में प्रयुक्त किया जाता है।

राजनीतिक सबधो के क्षेत्र मे समाज पर उत्पादन प्रणाली के निर्णायक प्रभाव सबधी सामान्य समाजशास्त्रीय नियमो के प्रयोग के लिए

1. राजनीतिक प्रक्रिया को प्रभावित करने वाले मूर्त सामाजिक कारकों को पृथक् करना, तथा
2. अर्थव्यवस्था पर राजनीति एवं राजनीतिक व्यवस्था के गहरे पारस्परिक प्रभाव का विश्लेषण, अनिवार्य है।

अर्थशास्त्र के अतिरिक्त अन्य कारकों—भौगोलिक परिस्थितियों, जनसांख्यिकीय विशिष्टताओं एव मनोवैज्ञानिक तत्वों—का भी राज्य के चरित्र एवं राजनीति पर कमोबेश पर्याप्त प्रभाव पडता है। यह स्वीकार करते हुए कि जैवीय कारकों—जो राष्ट्रीय मनोविज्ञान को प्रभावित करते हैं तथा उसके माध्यम से राजनीति को भी—का भी महत्व (हालांकि अत्यधिक गौण) होता है, मार्क्सवाद सामाजिक प्रक्रियाओं के नियमन मे जैवीय कारको के प्रभुत्व को अस्वीकार करता है। विभिन्न जातियों एव राष्ट्रों की असमानता के सिद्धांत—जो राजनीतिक आधिपत्य स्थापित करने में कुछ राष्ट्रों के दंभ का आधार है ...

तरह खंडन कर चुका है। व्यक्ति के तथा, इससे भी अधिक, सामाजिक मनोविज्ञान के निर्माण में सामाजिक वातावरण का निर्णायक प्रभाव बहुत पहले सिद्ध हो चुका है।

भौगोलिक अथवा अधिक व्यापक रूप में, भू-भौतिकीय परिस्थितियों का राज्य एवं राजनीति पर समुचित प्रभाव पड़ता है। पूर्वी निरंकुशतावाद के अस्तित्व को, आंशिक रूप से, जलवायु की दुसाध्य परिस्थितियां (विशेषकर जल-आपूर्ति के संदर्भ में) के संदर्भ में समझा जा सकता है, जिनके कारण आत्म-रक्षा एवं सम्मानजनक सामाजिक अस्तित्व की दृष्टि से मानवशक्ति का केंद्रीकरण आवश्यक हो गया था।

तो भी, भौगोलिक कारक सामाजिक एवं आर्थिक कारकों से किसी भी तरह बराबरी नहीं कर सकता। न केवल मार्क्सवादी ही अपितु बहुत से बूर्ज्वा समाजशास्त्री भी भौगोलिक नियतिवाद को अस्वीकार करते हैं। असंख्य अनुभववादी अध्ययनों—जिन्होंने यह प्रदर्शित किया है कि मानव जीवन के अनीद्रिय एवं सांस्कृतिक रूप सामाजिक पर्यावरण की वृत्ति हैं तथा ये रूप सामाजिक सांस्कृतिक परिस्थितियों के परिवर्तन में सामाजिक पर्यावरण के रचनात्मक प्रभाव को भी व्यक्त करते हैं—ने इसका खंडन कर ही दिया है।

जनसांख्यिकीय कारक का भी इसी प्रकार, किन्हीं परिस्थितियों में, राजनीति पर प्रभाव हो सकता है। राजनीतिक शक्तियों द्वारा विशेषकर जनसांख्यिकीय दबाव का इस्तेमाल बहुधा आक्रामक कार्यवाही के लिए किया जाता है, जैसा फ़ासिस्ट जर्मनी में हुआ था। बहरहाल, जनसंख्या का आकार एवं वितरण न तो घरेलू नीतियों के निर्धारक कारक हैं और न वैदेशिक के।

किसी भी समाज की संस्कृति का राजनीतिक संरचना, राज्य एवं राजनीति पर कहीं अधिक गहरा एवं महत्त्वपूर्ण प्रभाव होता है। शब्द के व्यापक अर्थ में, संस्कृति की अवधारणा में मानवीय कार्य व्यापार का प्रत्येक उत्पादन सम्मिलित है—भौतिक एवं सांस्कृतिक मूल्य, विचार समुच्चय, रीति-रिवाज, मनुष्य की आकांक्षाओं को मूर्त रूप देने वाले सामाजिक एवं राजनीतिक संस्थान, आचरण की स्वीकृत विधियां एवं मानदंड, आदि। इस अर्थ में संस्कृति का प्रयोग सभ्यता के पर्याय के रूप में ही किया जाता है।

प्रस्तुत संदर्भ में हम संस्कृति का प्रयोग संकुचित अर्थ में कर रहे हैं—संस्कृति राजनीतिक जीवन के कारक के रूप में। अतः हम भौतिक संस्कृति—अर्थशास्त्र, सामाजिक संस्थाएं आदि—को एक ओर रखकर प्रमुख रूप से बौद्धिक

सस्कृति के बारे मे विचार करेंगे।‡

बौद्धिक सस्कृति राजनीतिक सबधो एवं राजनीतिक सघर्षों का महत्त्वपूर्ण कारक है। जबकि उत्पादक शक्तियां तथा तदनुरूप उत्पादन सबध प्रत्येक समाज के अस्तित्व के सामान्य आधारो को निर्धारित करते हैं (सपत्ति की प्रकृति, सामाजिक सरचना, विधि, नीतिशास्त्र आदि), बौद्धिक सस्कृति बडी सीमा तक राजनीतिक सस्थानो के रूप, कार्यविधि एव उनके प्रयोजनो तक को निर्धारित करती है। यह तथ्य कि बूर्ज्वा क्राति का परिणाम इग्लैंड मे सवैधानिक राजशाही, फ्रास मे गणराज्य (जो शीघ्र ही पतित होकर नेपोलियन के साम्राज्य मे तब्दील हो गया) तथा सयुक्त राज्य अमरीका मे प्रजातांत्रिक गणराज्य के जन्म के रूप मे हुआ यह प्रदर्शित करता है कि यह मात्र आर्थिक परिस्थितियो—जो इस तथ्य के विकास के अनुकूल थी—द्वारा निर्धारित नही हुआ अपितु ऐतिहासिक परपराओं, विचारधारा, शासक शक्तियो के राजनीतिक लक्ष्यो एव वर्गशक्तियो के अन्योन्याश्रय को प्रभावित करने वाले बौद्धिक सस्कृति के अन्य तत्वो द्वारा भी निर्धारित हुआ।

इतिहास की भौतिकवादी समझ—जो भौतिक वस्तुओं के उत्पादन की प्रणाली तथा आधार एव अधिरचना के प्रत्यक्ष एव पारस्परिक अत सबधो के निर्णायक महत्त्व को रेखांकित करती है—राज्य राजनीतिक व्यवस्था एव राजनीति जैसी जटिल सामाजिक घटनाक्रियाओ की कुजी प्रस्तुत करती है। साथ ही, द्वद्वात्मक एव ऐतिहासिक भौतिकवाद मे राज्य एव राजनीति के अध्ययनो के लिए ही नही अपितु सभी अनुशासनों के अध्ययन के लिए सामान्य पद्धति शास्त्र निहित है।

यथार्थ के किसी भी क्षेत्र की भाति, राजनीतिक घटना-क्रियाओ के विश्लेषण मे भौतिकवादी द्वद्ववाद के प्रयोग के कुछ विशिष्ट लक्षण है। उदाहरण के लिए, राज्य एव राजनीति के अध्ययन के लिए, ऐतिहासिक नियतिवाद की धारणा पर भरोसा रखकर, न केवल वस्तुनिष्ठ कारको का अध्ययन करना बल्कि राजनीतिक प्रक्रियाओं एव घटनाक्रियाओं की जड मे जाकर आत्मनिष्ठ कारको की पडताल करना विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है। राजनीतिक जीवन वहीं है जहा व्यक्तियों, सामाजिक समूहों, वर्गों एव राष्ट्रों का कार्य-व्यापार स्वयं को सर्वाधिक व्यक्त करता है, अपना अनुभव कराता है। यह वह क्षेत्र है जहां नेताओं की सकल्प-शक्ति (इच्छा) का सामाजिक प्रक्रियाओं के रूप तथा अन्तर्वस्तु पर गहरा

‡ ज्ञातव्य है कि भौतिक एव बौद्धिक सस्कृति का विभाजन कठोर नहीं है क्योंकि बौद्धिक सस्कृति अपने उत्पादनों—पुस्तकों, समाचार-पत्रों, फिल्मो, रगमच, चित्रो आदि के माध्यम से मूर्त रूप ग्रहण करती है।

प्रभाव पड़ता है (यह दूसरी बात है कि अंतिम विश्लेषण में इस संकल्प का स्रोत किन्हीं ख़ास समूहों एवं वर्गों के हितों में मिले)। जर्मनी एवं स्पेन के फ़ासिस्ट शासनों की भिन्न रूपों में अभिव्यक्ति यह सिद्ध करती है कि यह इन राज्यों की विशिष्ट परिस्थितियों का परिणाम थी। यही नहीं आत्मनिष्ठ कारकों के स्तर पर भी महत्त्वपूर्ण भिन्नताएं थीं : हिटलरवाद एवं फ्रांकोवाद की विचारधारा में समानताएं हैं तो मूलभूत असमानताएं भी हैं।

सामाजिक जीवन के नियम विभिन्न घटना-क्रियाओं के बीच, अथवा एक ही घटनाक्रिया के विभिन्न पक्षों के बीच गहरा, वास्तविक, पुनरावृत्तीय एवं निर्भरता का संबंध स्थापित करते हैं। किंतु ये नियम स्वयं भी अन्य नियमों से घनिष्ठ रूप से जुड़े होते हैं अतः अंतिम विश्लेषण में ये स्वयं को प्रभावशाली प्रवृत्तियों के रूप में व्यक्त एवं उद्घाटित करते हैं, अन्य—बहुधा अंतर्विरोधी—प्रवृत्तियों के साथ संघर्ष के माध्यम से। राज्य के नियमों की प्रकृति की सही समझ हमें समकालीन राजनीतिक व्यवस्थाओं की प्रकृति—उनमें व्यक्त होने वाली विभिन्न प्रवृत्तियों पर विचार के आधार पर—के अधिक गहन विश्लेषण में सहायता देती है।

ऐतिहासिक भौतिकवाद, ऐतिहासिक दृष्टि को रेखांकित करते हुए, हमारे समक्ष राष्ट्रों एवं देशों के राजनीतिक जीवन का अत्यंत सामान्य एवं उत्पत्ति-मूलक चित्र प्रस्तुत करता है। यह सामाजिक-आर्थिक रचनाओं में निहित प्रतिरूपों पर अपना ध्यान संकेंद्रित करके इस दृष्टि के साथ मेल खाती सामान्य अवधारणाएं एवं श्रेणियां विकसित करता है। किंतु मूर्त्त राजनीतिक घटना-क्रियाओं, स्थितियों एवं परिस्थितियों को समझने तथा राजनीतिक संरचनाओं के अध्ययन एवं उनके क्रमिक विकास की अवस्थाओं की भविष्यवाणी करने के लिए इस विश्व दृष्टि को राजनीतिक जीवन के तथ्यों के एकाग्र अध्ययन से तथा, प्रत्येक प्रदत्त व्यवस्था एवं स्थिति के विश्लेषण के अनुभववादी, समाजशास्त्रीय आधार पर विकसित अवधारणाओं एवं श्रेणियों की प्रणाली के दायरे में सैद्धांतिक सामान्यीकरण से समृद्ध करना अत्यंत आवश्यक है।

राजनीतिक प्रक्रियाओं की प्रकृति को निर्धारित करने वाला मूल कारक वर्ग एवं सामाजिक समूह है। यह विचार कि वर्ग-संबंधों की चरम अभिव्यक्ति राजनीतिक आंदोलन है, राजनीति के प्रति मार्क्सवादी दृष्टिकोण की नींव है।

राजनीतिक सिद्धांत वर्ग हितों तथा किसी देश के राजनीतिक जीवन पर उनके सामान्य प्रभाव के विश्लेषण तक ही सीमित नहीं रहता। यह इससे भी कहीं आगे—इन वर्गों, शासक एवं दमित दोनों ही, के भीतर विभिन्न स्तरों एवं समूहों के कार्य व्यापार के रूपों, उनके राजनीतिक महत्त्व एवं उनकी भूमिकाओं के सटीक समाजशास्त्रीय विश्लेषण तक—जाता है। राजनीतिक प्रक्रियाओं, जो अंतिम व्याख्या में ही आर्थिक एवं वर्गीय हितों द्वारा निर्धारित होती हैं, की सही

समझ के लिए इस तरह का दृष्टिकोण बेहद उपयोगी एव आवश्यक है।

राजनीति के अध्ययन के वर्गीय दृष्टिकोण की राजनीतिक प्रक्रियाओं की अपरिष्कृत एव आदिम समझ से कोई समानता नही है। राज्य की नीति निरपवाद रूप से, शासक वर्ग/वर्गों के हितो की घनीभूत अभिव्यक्ति होती है। किंतु यह नीति, कम-से-कम, परोक्ष रूप से शासित एव उत्पीडित वर्गों के दबाव को भी प्रतिबिंबित करती है। उदाहरण के लिए, बहुत से पूजीवादी देशों के युद्धोत्तर-कालीन विधि निर्माण मे श्रमिक वर्ग द्वारा अर्जित महत्त्वपूर्ण लाभो को वर्गीकृत रूप मे देखा जा सकता है। यहा यह समझा जाना अत्यत आवश्यक है कि यह बूर्ज्वा राज्यो के खिलाफ श्रमिक आदोलन के दबाव को व्यक्त करने वाले, पूजीपति वर्ग के खिलाफ़ श्रमिक वर्ग के भीषण सघर्ष का ही परिणाम है। इस तरह के दबाव का एक उदाहरण, द्वितीय विश्व युद्ध के तुरंत बाद, जब लेबर पार्टी सत्ता मे थी, ब्रिटेन मे कोयला, इस्पात एव अन्य उद्योगो का राष्ट्रीयकरण है।

इस सब से यह स्पष्ट है कि सामाजिक जीवन की घटना-क्रियाओं के अध्ययन के लिए न केवल सामान्य सैद्धातिक परिभाषाए आवश्यक हैं, बल्कि शासक एवं शोषित वर्गों के विभिन्न समूहो के राजनीतिक हितो के एकदम परिष्कृत विश्लेषण (समाजशास्त्रीय विधियो के प्रयोग से) भी आवश्यक हैं।

उन विभिन्न रूपो का अध्ययन करना भी समान रूप से आवश्यक है जिनके माध्यम से समाज के बौद्धिक जीवन का सस्कृति (जिसमे नीतिशास्त्र विचारधारा, धर्म, विज्ञान आदि समाहित है) जैसा कारक राजनीति को प्रभावित करता है। इस कारक द्वारा राजनीतिक संबंधों को प्रभावित करने की प्रक्रिया की दृष्टि से सांस्कृतिक स्तरो की भिन्नताओ—वर्ग, राष्ट्र, समूह एव व्यक्ति की सस्कृति—पर ध्यान देना भी महत्त्वपूर्ण है। किसी वर्ग की सस्कृति म, कमोबेश, राष्ट्रीय एव अन्तरराष्ट्रीय कारक समाहित होते है तथा यह विचारधारा, लक्ष्यो प्रतिमानो, सामाजिक व्यवहार के अभिप्रायो, रुचियो, आदतों एवं रीति-रिवाजों के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण लक्षणों को अभिव्यक्ति देती है। किसी समूह की सस्कृति—उस वर्ग, जिससे वह संबद्ध है, की सस्कृति के लक्षणों को प्रतिबिंबित करने के साथ-साथ अपनी—समूहगत—विशिष्टताओं, मूल्य-व्यवस्था एव आचरण-रीति, को भी प्रदर्शित करके राजनीतिक व्यवहार (उदाहरणार्थ मतदान) आदि को प्रभावित करती है।

राष्ट्रीय सस्कृति—जो वर्गीय अर्थ मे, अंतर्विरोधियों मे भरी होती है—अवर्गीय (वर्गों से ऊपर) तत्त्वो, भाषा, राष्ट्र के अधिकाश स्थापत्य, ललित-कलाओ—आदि से मिलकर बनती है। व्यक्ति की संस्कृति मे वर्ग, समूह एव राष्ट्रीय सस्कृतियों के तत्त्व तो होते ही हैं, व्यवहार, मूल्यो एव विचारों के ऐसे व्यक्तिगत प्रतिमान भी निहित होते हैं, जो आस-पास के लोगो के लिए अपरि-

चित होते हैं। विशिष्ट राजनीतिक स्थिति—एवं उसमें लोगों के व्यवहार—पर संस्कृति के इन स्तरों में से प्रत्येक के सुनिश्चित प्रभाव को ध्यान में रखना आवश्यक है।

पोलिश समाजशास्त्री जान श्चेपांस्की का मत है कि बौद्धिक संस्कृति सामाजिक (राजनीतिक भी) जीवन को निम्नलिखित रूपों में प्रभावित करती है: (1) व्यक्ति-निर्माण एवं उसका समाजीकरण, (2) मूल्यों की व्यवस्था का सृजन, (3) कार्य व्यापार एवं व्यवहार के प्रतिमान, (4) सामाजिक व्यवस्थाओं एवं संस्थाओं के प्रतिमानों का निर्माण।[46]

व्यक्ति के समाजीकरण का अर्थ है शिक्षा, अभिप्रेरणा एवं दंड के माध्यम से सामाजिक जीवन से व्यक्ति का अनुकूलन, तथा व्यक्ति को समाज की सीमाओं के भीतर सचेतन क्रिया करने एवं समाज के साथ अपने संबंधों के नियमन की अनुमति।

मूल्य-व्यवस्था में भौतिक एवं बौद्धिक जीवन के प्रयोजनों की समग्रता निहित है। ऐसे प्रयोजन, जो चाहे वास्तविक हों अथवा काल्पनिक, जिन्हें व्यक्ति, समूह अथवा वर्ग ने कतिपय सकारात्मक अथवा नकारात्मक मूल्य से मंडित कर रखा है तथा जो कार्य-व्यापार की दिशा निर्देशित तथा उसे नियंत्रित करते हैं। विभिन्न व्यक्तियों अथवा समूहों के लिए उच्चतम मूल्यों के प्रयोजन भौतिक संपदा, कलाकृतियां अथवा अन्य सृजनात्मक गतिविधि हो सकते हैं; सत्ता, नैतिक अथवा धार्मिक आदर्श एवं प्रतिमान, ख्याति सम्मान, प्रताप आदि हो सकते हैं। मूल्य चयन में व्यक्तियों तथा समूहों का आचरण को मूल्यों के पदानुक्रम संबंधी उनका बोध निर्धारित करता है। नैतिक मूल्य—लालन-पालन, वातावरण के प्रभाव एवं संचेतन क्रिया से निर्मित—मानवीय कृत्यों के महत्वपूर्ण नियामक एवं नियंत्रक हैं, साथ ही, ये मूल्य अन्य व्यक्तियों के आचरण तथा सामाजिक-राजनीतिक संगठनों के सिद्धांतों को परखने के मापदंड भी हैं।

मूल्य व्यवस्थाएं राजनीतिक व्यवहारों में—खासकर सत्ता के अंगों के लिए चुनावों तथा राजनीतिक एवं दलीय नेताओं के चुनावों में, वास्तविक भूमिका निभाती हैं। कुछ सामाजिक समूह समाज के आंतरिक विकास की समस्याओं के प्रति अधिक चिंतित हो सकते हैं, तथा कुछ अन्य राष्ट्रीय सुरक्षा अथवा राष्ट्रीय गौरव के प्रति।

व्यवहार के प्रतिमान क्रिया-व्यापार की रीतियों को निर्दिष्ट करके उन्हें अपनी मूल्य व्यवस्था के अनुरूप लोगों की आकांक्षाओं एवं रुचियों की पूर्ति का

---

46 जान श्चेपांस्की : ऐलिमेंटरी सोशियालॉजीकल कांसेप्ट्स, मास्को, 1969, पृ० 38 44 (रूसी में)

साधन मानते हैं। इस प्रकार की रीतिया प्राय विशिष्ट परिस्थितियों में अनुकूलित होती हैं तथा समाज, वर्ग अथवा समूह के रीति-रिवाजों एवं आदतों में बहुधा इनकी पुनरावृत्ति होती है। यदि सामाजिक जीवन को हम स्थितियों की समग्रता के रूप में (लोगों के पारस्परिक संबंधों के क्षेत्र के रूप में) देखें तो पायेंगे कि व्यवहार के प्रतिमान स्थिति विशेष के प्रति व्यक्तिगत प्रतिक्रियाओं की सीमा को पूर्वनिर्धारित करते हैं—ये प्रतिक्रियाए वर्ग अथवा समूह के भीतर सामान्य मानी जाती हैं। उदाहरण के लिए, विरोधी-दल के प्रतिनिधि द्वारा दिये गये भाषण की नकारात्मक प्रतिक्रिया तथा अपने दल के सदस्यों का समर्थन—ऐसी ही प्रतिक्रियाए है।

संस्कृति सामाजिक-राजनीतिक जीवन को व्यक्तिगत आचरण के प्रतिमानों, राजनीतिक संस्थानों एवं राजनीतिक संबंधों के रूपों के माध्यम से प्रभावित करती है।

सोवियत साहित्य में राजनीतिक संस्कृति की अवधारणा को निरंतर काम में लिया जा रहा है। राजनीतिक संस्कृति का अर्थ है विभिन्न वर्गों, सामाजिक स्तरों एवं व्यक्तियों के—सत्ता, राजनीति एवं, इनसे निर्धारित, राजनीतिक सक्रियता की मात्रा के—ज्ञान एवं बोध का स्तर।

निस्संदेह रूप से, जनता की राजनीतिक संस्कृति समूहों, वर्गों, नेताओं एवं अनुयाइयों की राजनीतिक संस्कृति विशेष अध्ययन का विषय होनी चाहिए क्योंकि यह कारक राजनीतिक संस्थानों के निर्माण एवं क्रियाविधि तथा निर्णयों के अभिग्रहण, बोध एवं क्रियान्वयन को प्रभावित करता है।

राजनीति को प्रभावित करने वाले अन्य कारकों में से राजनीति एवं विज्ञान के संबंधों; राजनीति, विचारधारा एवं नीतिशास्त्र, राजनीति एवं धर्म, तथा सामाजिक चेतना के अन्य रूपों के संबंधों का अध्ययन आवश्यक है।

राजनीति के अध्ययन के ये कतिपय पद्धतिमूलक सिद्धांत हैं। अब हमें अध्ययन की मध्यम तथा अल्प परासी विधियों पर विचार करना चाहिए। इनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण व्यवस्था विश्लेषण है जो प्रस्तुत अनुसंधान की नींव है।

हम सब जानते हैं कि अर्थशास्त्री, न्यायविद, समाजशास्त्री एवं इतिहासकार राज्य की कार्यवाही के आर्थिक, न्यायिक, सामाजिक एवं ऐतिहासिक पक्षों के परिप्रेक्ष्य में राज्य की समस्याओं का अध्ययन करते हैं। वस्तुतः राज्य विभिन्न भूमिकाओं एवं प्रकार्यों को संधियुक्त संरचना अथवा समुच्चय नहीं है, अपितु यह उप संरचनाओं, उप विभाजनों, प्रकार्यों एवं भूमिकाओं से निर्मित व्यवस्था है, अमभूत संपूर्ण इकाई है। राज्य के सम्यक विश्लेषण की यह आवश्यक शर्त है कि इसके पृथक प्रकार्यों एवं समूची व्यवस्था का अध्ययन किया जाय, जिसमें प्रत्यक्ष एवं पारस्परिक संबंध एवं प्रकार्य भी सम्मिलित हों। यह व्यवस्थापरक

राजनीतिक सिद्धांत के विशेष रूप में महत्वपूर्ण है, क्रियात्मक विश्लेषण विशिष्ट अनुभववादी अध्ययनों के लिए अधिक उपयुक्त है। राजनीति के अध्ययन का यह दृष्टिकोण लेनिनवादी परंपरा—जो क्रांतिकारी रणनीति विकसित की शर्त के रूप में सामाजिक-राजनीतिक जीवन के अधिकतम मूर्त विश्लेषण की मांग करती है—के साथ पूर्णतया मेल खाता है।

हमारी दृष्टि मे व्यवस्था सिद्धांत का अर्थ प्रथमत: तो विषयों के समुच्चय के अंत:संबंधों एवं गुण धर्मों का विवेचन है। दिक्काल में व्यवस्था की अवस्थिति की सापेक्ष रूप से सही स्थापना, इसकी सरचनात्मक अंत:क्रियाओं (विषयों एवं प्रक्रियाओं के बीच) को निर्दिष्ट करने, व्यवस्था के भीतर संपूर्ण इकाई के साथ संबधो की स्थापना तथा व्यवस्था के संघटन की मात्रा, को यह आवश्यक शर्तों के रूप मे मानकर चलता है। दूसरे शब्दों में, व्यवस्था उस विधि को निर्दिष्ट करती है जिससे दो अथवा अधिक तत्त्व अंत:क्रिया करते हैं, तथा व्यवस्था विश्लेषण तत्त्वों तथा प्रकार्यों की अंत:क्रिया के मर्म तक पहुंचता है।

व्यवस्था-विश्लेषण की अन्य विशिष्टता समग्र दृष्टिकोण है। व्यवस्था विश्लेषण के लिए लक्ष्य पदानुक्रम के परिप्रेक्ष्य में राजनीतिक जीवन के सभी क्षेत्रों की सहलग्नता स्थापित करना अनिवार्य है। प्रमुख लक्ष्य स्थापित कर चुकने के पश्चात् पूरक लक्ष्यों का अध्ययन किया जाता है।

राजनीति के व्यवस्थापरक विश्लेषण के लिए राजनीतिक व्यवस्था (जिसे अगभूत संपूर्ण इकाई के रूप में देखा जाता है) के प्रति संग्रथित एवं संपूर्ण दृष्टिकोण, तथा इस क्षेत्र से संबधित नीति एव निर्णयों का अध्ययन, एवं सामाजिक-राजनीतिक प्रक्रियाओं के प्रतिमान की रचना अनिवार्य है।

हम जानते हैं कि दर्शनशास्त्र, राज्य का एवं विधि का सिद्धांत, अर्थविज्ञान एवं इतिहास मे से प्रत्येक, अपनी विशिष्ट पद्धतियों से पूंजीवादी राज्यों के सामाजिक-राजनीतिक संस्थानों का अध्ययन करता है। तो फिर व्यवस्था-विश्लेषण से क्या लाभ होता है अथवा हो सकता है?

दर्शनशास्त्र की सर्वाधिक रुचि राज्य के उद्भव एवं विकास तथा सामाजिक आर्थिक संघटनों के व्यापक कार्यक्षेत्र के भीतर, राज्य के संक्रमण (एक प्रकार के राज्य का दूसरे प्रकार के राज्य में) के प्रतिरूप में होती है जबकि विधिक अध्ययन राज्य-जीवन के संस्थानिक एवं विधिक रूपो पर प्रमुखतया विचार करते हैं। व्यवस्थापरक दृष्टिकोण संपूर्ण इकाई के रूप में राजनीतिक व्यवस्था की अंत:क्रिया, विकास एवं कार्यविधि संगठन पर आधारित है।

सत्ता एवं प्रशासन के अध्ययन से संबधित व्यवस्थापरक दृष्टिकोण यह अपेक्षा रखता है कि राज्य के संस्थानों तक ही सीमित न रहें, बल्कि राजनीतिक व्यवस्थाओं एव संरचनाओं तथा उनके पृथक तत्त्वों (राजनीतिक निर्णयों की

प्रक्रियाओं सहित) के विश्लेषण की ओर अग्रसर हो। राजनीतिक सस्थानो का अध्ययन भी उनकी निश्चलता मे नही अपितु गतिशीलता मे किया जाना चाहिए। व्यवस्था-विश्लेषण का लक्ष्य किसी भी देश के, किसी भी कालखड के दौरान— राजनीतिक जीवन की धड़कती नब्ज को समझना है। तभी वैदेशिक एवं घरेलू नीति मे आये विशिष्ट परिवर्तनो का अध्ययन कर पाना तथा भविष्य मे होने वाले क्रमिक विकास की भविष्यवाणी कर पाना सभव है।

व्यवस्थापक दृष्टिकोण एव व्यवस्था विश्लेषण, जोकि व्यवस्थापरक दृष्टिकोण का विकसित एवं उन्नत स्तर है तथा जिसमे प्रतिरूपो का निर्माण एवं गणितीय उपकरण का प्रयोग समाहित है, मे भेद किया जाना आवश्यक है।

ज्ञान की वर्तमान अवस्था मे, सामाजिक-राजनीतिक निर्णय-प्रक्रिया के प्रतिरूपो की रचना की भी सीमाएं हैं। प्रतिरूपो के निर्माण की एकाधिक विधियां है तो दूसरी ओर प्रतिरूपो के भी एकाधिक किस्म हैं। पहली किस्म प्राकृतिक अथवा प्रतिकृति प्रतिरूप है। यह एक पारंपरिक प्रतिरूप है जिसका लबे अर्से से व्यापक प्रयोग किया गया है। किसी चेहरे के छाया चित्र, वायुयान की रूपरेखा तथा कलाकार द्वारा बनाये चित्र को प्राकृतिक प्रतिरूप की सज्ञा दी जा सकती है क्योंकि यह वस्तु, घटना-क्रिया, प्रक्रिया अथवा व्यवस्था के गुणधर्मों को प्रतिबिंबित करता है। दूसरी किस्म सादृश्य प्रतिरूप है। इसका अर्थ है वस्तु के विशिष्ट गुणधर्मों का, अन्य अधिक परिचित वस्तु का वर्णन करने वाले प्राचलिक सेट के माध्यम से, चित्रण। तीसरी तथा अंतिम किस्म प्रतीकात्मक अथवा गणितीय प्रतिरूप है जो वस्तु के विशिष्ट लक्षणों के प्रतीक के रूप मे किसी समीकरण अथवा समीकरण क्रम का प्रयोग करता है।

प्रतिरूपों की पहली दो किस्मों के महत्व को कम करके नही आंका जाना चाहिए। चित्रण अथवा तर्क के माध्यम से ये वस्तु के अधिक गहन एवं मौलिक विश्लेषण मे सहायक होते हैं। तथा ये निर्णय लेने की प्रक्रिया मे सस्कृति के तत्त्व को प्रविष्ट कराते हैं। मात्र तीसरी किस्म (का प्रतिरूप) ही, शब्द के सही एव समकालीन प्रचलित अर्थ मे, प्रतिरूप है। सक्रियाओं के अध्ययन मे प्रयुक्त गणितीय प्रतिरूप विभिन्न तत्त्वो के सहयोजन को सही ढंग से चित्रित करता है तथा परिकल्पित परिस्थितियों मे व्यवस्था के व्यवहार की भविष्यवाणी करता है।

गणितीय प्रतिरूप निर्मित किया जाना खास कर उस समय अत्यंत उपयोगी सिद्ध होता है जबकि किसी स्थिति विशेष अथवा विशिष्ट अनुशसा का पूर्वानुमान निष्कर्ष स्वरूप हमे उपलब्ध होता हो। गणितीय प्रतिरूप का सर्व स्वीकृत गुण अत्यंत सूक्ष्म एव सही हल खोजने की इसकी क्षमताओं एव सभावनाओ मे निहित है जबकि वास्तविक जीवन की प्रक्रियाओं को सूत्रो मे घटित कर पाना इसकी सबसे बड़ी कमजोरी है।

राजनीतिक सिद्धांत के विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है, क्रियात्मक विश्लेषण विशिष्ट अनुभववादी अध्ययनों के लिए अधिक उपयुक्त है। राजनीति के अध्ययन का यह दृष्टिकोण लेनिनवादी परंपरा—जो क्रांतिकारी रणनीति विकसित करने के रूप में सामाजिक-राजनीतिक जीवन के अधिकतम मूर्त विश्लेषण की मांग करती है—के साथ पूर्णतया मेल खाता है।

हमारी दृष्टि में व्यवस्था सिद्धांत का अर्थ प्रथमतः तो विषयों के समुच्चय के अंतःसंबंधों एवं गुण धर्मों का विवेचन है। दिक्काल में व्यवस्था की अवस्थिति की सापेक्ष रूप से सही स्थापना, इसकी संरचनात्मक अंतःक्रियाओं (विषयों एवं प्रक्रियाओं के बीच) को निर्दिष्ट करने, व्यवस्था के भीतर संपूर्ण इकाई के साथ संबंधों की स्थापना तथा व्यवस्था के संघटन की मात्रा, को यह आवश्यक शर्तों के रूप में मानकर चलता है। दूसरे शब्दों में, व्यवस्था उस विधि को निर्दिष्ट करती है जिससे दो अथवा अधिक तत्त्व अंतःक्रिया करते हैं, तथा व्यवस्था विश्लेषण तत्त्वों तथा प्रकार्यों की अंतःक्रिया के मर्म तक पहुंचता है।

व्यवस्था-विश्पलेण की अन्य विशिष्टता समग्र दृष्टिकोण है। व्यवस्था विश्लेषण के लिए लक्ष्य पदानुक्रम के परिप्रेक्ष्य में राजनीतिक जीवन के सभी क्षेत्रों की सहलग्नता स्थापित करना अनिवार्य है। प्रमुख लक्ष्य स्थापित कर चुकने के पश्चात् पूरक लक्ष्यों का अध्ययन किया जाता है।

राजनीति के व्यवस्थापरक विश्लेषण के लिए राजनीतिक व्यवस्था (जिसे भागभूत संपूर्ण इकाई के रूप में देखा जाता है) के प्रति संग्रथित एवं संपूर्ण दृष्टिकोण, तथा इस क्षेत्र से संबंधित नीति एवं निर्णयों का अध्ययन, एवं सामाजिक-राजनीतिक प्रक्रियाओं के प्रतिमान की रचना अनिवार्य है।

हम जानते हैं कि दर्शनशास्त्र, राज्य का एवं विधि का सिद्धांत, अर्थविज्ञान एवं इतिहास में से प्रत्येक, अपनी विशिष्ट पद्धतियों से पूंजीवादी राज्यों के सामाजिक-राजनीतिक संस्थानों का अध्ययन करता है। तो फिर व्यवस्था-विश्लेषण से क्या लाभ होता है अथवा हो सकता है?

दर्शनशास्त्र की सर्वाधिक रुचि राज्य के उद्भव एवं विकास तथा सामाजिक आर्थिक संघटनों के व्यापक कार्यक्षेत्र के भीतर, राज्य के संक्रमण (एक प्रकार के राज्य का दूसरे प्रकार के राज्य में) के प्रतिरूप में होती है जबकि विधिक अध्ययन राज्य-जीवन के संस्थानिक एवं विधिक रूपों पर प्रमुखतया विचार करते हैं। व्यवस्थापरक दृष्टिकोण संपूर्ण इकाई के रूप में राजनीतिक व्यवस्था की अंतःक्रिया, विकास एवं कार्यविधि संगठन पर आधारित है।

सत्ता एवं प्रशासन के अध्ययन से संबंधित व्यवस्थापरक दृष्टिकोण यह अपेक्षा रखता है कि राज्य के संस्थानों तक ही सीमित न रहें, बल्कि राजनीतिक व्यवस्थाओं एवं संरचनाओं तथा उनके पृथक तत्वों (राजनीतिक निर्णयों की

प्रक्रियाओं सहित) के विश्लेषण की ओर अग्रसर हों। राजनीतिक संस्थानों का अध्ययन भी उनकी निश्चलता में नहीं अपितु गतिशीलता में किया जाना चाहिए। व्यवस्था-विश्लेषण का लक्ष्य किसी भी देश के, किसी भी कालखंड के दौरान—राजनीतिक जीवन की धड़कती नब्ज को समझना है। तभी वैदेशिक एवं घरेलू नीति में आये विशिष्ट परिवर्तनों का अध्ययन कर पाना तथा भविष्य में होने वाले क्रमिक विकास की भविष्यवाणी कर पाना संभव है।

व्यवस्थापक दृष्टिकोण एवं व्यवस्था विश्लेषण, जोकि व्यवस्थापरक दृष्टि-कोण का विकसित एवं उन्नत स्तर है तथा जिसमें प्रतिरूपों का निर्माण एवं गणितीय उपकरण का प्रयोग समाहित है, में भेद किया जाना आवश्यक है।

ज्ञान की वर्तमान अवस्था में, सामाजिक-राजनीतिक निर्णय-प्रक्रिया के प्रतिरूपों की रचना की भी सीमाएं हैं। प्रतिरूपों के निर्माण की एकाधिक विधियां हैं तो दूसरी ओर प्रतिरूपों के भी एकाधिक किस्म हैं। पहली किस्म प्राकृतिक अथवा प्रतिकृति प्रतिरूप है। यह एक पारंपरिक प्रतिरूप है जिसका लंबे अर्से से व्यापक प्रयोग किया गया है। किसी चेहरे के छाया चित्र, वायुयान की रूपरेखा तथा कलाकार द्वारा बनाये चित्र को प्राकृतिक प्रतिरूप की संज्ञा दी जा सकती है क्योंकि यह वस्तु, घटना-क्रिया, प्रक्रिया अथवा व्यवस्था के गुणधर्मों को प्रतिबिंबित करता है। दूसरी किस्म सादृश्य प्रतिरूप है। इसका अर्थ है वस्तु के विशिष्ट गुणधर्मों का, अन्य अधिक परिचित वस्तु का वर्णन करने वाले प्राच-लिक सेट के माध्यम से, चित्रण। तीसरी तथा अंतिम किस्म प्रतीकात्मक अथवा गणितीय प्रतिरूप है जो वस्तु के विशिष्ट लक्षणों के प्रतीक के रूप में किसी समी-करण अथवा समीकरण क्रम का प्रयोग करता है।

प्रतिरूपों की पहली दो किस्मों के महत्त्व को कम करके नहीं आंका जाना चाहिए। चित्रण अथवा तर्क के माध्यम से ये वस्तु के अधिक गहन एवं मौलिक विश्लेषण में सहायक होते हैं। तथा ये निर्णय लेने की प्रक्रिया में संस्कृति के त को प्रविष्ट कराते हैं। मात्र तीसरी किस्म (का प्रतिरूप) ही, शब्द के सही समकालीन प्रचलित अर्थ में, प्रतिरूप है। सक्रियाओं के अध्ययन में प्रयुक्त ग तीय प्रतिरूप विभिन्न तत्त्वों के सहयोजन को सही ढंग से चित्रित करता है त परिकल्पित परिस्थितियों में व्यवस्था के व्यवहार की भविष्यवाणी करता है।

गणितीय प्रतिरूप निर्मित किया जाना खास कर उस समय अत्यंत उपयु सिद्ध होता है जबकि किसी स्थिति विशेष अथवा विशिष्ट अनुशासन का पूर्वानु निष्कर्ष स्वरूप हमें उपलब्ध होता हो। गणितीय प्रतिरूप का सर्व स्वीकृत अत्यंत सूक्ष्म एवं सही हल खोजने की इसकी क्षमताओं एवं संभावनाओं में नि है जबकि वास्तविक जीवन की प्रक्रियाओं को सूत्रों में घटित कर पाना दु

प्रतिरूप निर्माण के लिए सरलीकरण अनिवार्य है तथा यह तय कर पाना अत्यंत मुश्किल है कि, अध्ययनवस्तु (विषय) के सारतत्त्व को खोये बिना, किस हद तक सरलीकरण को उचित एवं वास्तविक माना जाए। समाज विज्ञान सांख्यिकीय प्रतिरूप के निर्माण के लिए आवश्यक परिमाणीय सेट प्रस्तुत करने में स्वयं को असमर्थ पाता है। प्रतिरूप निर्माण का उपयोग फिलहाल जटिल व्यवस्था की कार्य-विधि संबंधी समझ में वृद्धि करने तथा समस्या के बुनियादी लक्षणों तथा सम्भावित विकल्पों के स्पष्टीकरण के लिए किया जा रहा है।

प्रतिरूप निर्माण मुख्यतया मानवीय चिंतन शक्ति एवं अंतर्बोध को मुक्त करने तथा उन्हें प्रदत्त समस्या के अधिक प्रभावी समाधान की ओर उन्मुख करने में सहायक होता है। यह सृजनशील चिंतन को नये विचारों, वैकल्पिक प्रस्तावों एवं प्रायोजनाओं की ओर मोड़ता है किंतु स्वतंत्र निर्णय लेने की आवश्यकता को निरस्त नहीं करता है। आर्थिक समस्याओं एवं उनमें भी कई गुना अधिक जटिल सामाजिक समस्याओं—जिन्हें गणनाओं एवं सूत्रों में घटित करना आसान नहीं है—यह बात लागू होती है।

प्रतिरूप निर्माण में पारंगत होने के लिए यह आवश्यक है कि सीढ़ी-दर-सीढ़ी आगे बढ़ा जाय ; ऐसा न करना अंकगणित एवं बीजगणित में पारंगत हुए बिना उच्चतर गणित की समस्याओं का समाधान करने के प्रयासों के समान होगा। कंप्यूटर द्वारा विधायित एवं व्यवस्थित सामाजिक सांख्यिकी का उपयोग करके सामाजिक प्रक्रियाओं के सादृश्य प्रतिरूपों के निर्माण से शुरुआत की जानी चाहिए। इसके बाद ही अगला क़दम—प्रतीकीय प्रतिरूपों के निर्माण की दिशा में—उठाकर स्थिति विशेष की परिभाषा के उपयुक्त कारकों के विश्लेषण में प्रयुक्त परिवर्तन-शील तत्त्वों का समुचित महत्त्व निर्धारित किया जाना चाहिए।

कंप्यूटर ने न केवल सूचना-संचयन की अपार संभावनाओं के द्वार खोले हैं बल्कि विकल्पों की तुलना एवं सर्वश्रेष्ठ निर्णय के चयन को भी संभव बनाया है। किन्तु इस क्षमता का उपयोग तभी संभव है जबकि सैकड़ों मानवीय भाषाओं में एक नयी भाषा जोड़कर—जिसे कंप्यूटर समझ सके—समस्या को सामाजिक प्रतीकों में रूपांतरित करके, कंप्यूटर के कार्यक्रम विकसित किये जाएं। इसके लिए विज्ञान लंबी समयावधि की अपेक्षा तो रखता ही है, विभिन्न विशेषज्ञों—अर्थ-शास्त्रियों, समाजशास्त्रियों, दर्शनशास्त्रियों, भाषाविदों एवं गणितज्ञों—के घनिष्ठ सहयोग को भी आवश्यक मानता है।

व्यवस्था-विश्लेषण के अतिरिक्त तुलनात्मक विश्लेषण की सार्थकता भी असंदिग्ध है। हाल के वर्षों में, समाजवादी देशों में, विधिक अध्ययनों में तुलनात्मक पद्धति का व्यापक प्रयोग किया गया है ; यह पद्धति विभिन्न देशों में विधि की विशिष्टता एवं समान लक्षणों के अध्ययन में अत्यंत उपयोगी साबित हुआ है।

सादृश्य के आधार पर, राजनीति के सिद्धांत के अध्ययन में भी तुलनात्मक पद्धति उपयोगी साबित होनी चाहिए—विभिन्न देशों के राजनीतिक संस्थानों, दलीय क्रियाकलाप के रूपों एवं प्रणालियों, राज्य के निकायों एवं सामाजिक संघटनों के तुलनात्मक अध्ययन को अपनाते हुए। इससे सभी राज्यों के समान लक्षणों को उभारना तथा प्रदत्त राजनीतिक संरचना के विशिष्ट लक्षणों को प्रतिबिंबित करना आसान हो जाता है। जाहिर है, तुलनात्मक पद्धति को यांत्रिक रूप में प्रयुक्त करना गलत होगा। इसे अनुभवपरक एवं ऐतिहासिक दृष्टिकोण के साथ संयोजित किया जाना चाहिए क्योंकि विभिन्न देश विकास के अलग-अलग पड़ावों से गुज़र रहे हैं। बूर्ज्वा राज्यों की किस्मों एवं रूपों, उनकी दलीय संरचना, प्रतिनिधित्व प्रणाली आदि के विश्लेषण से लेकर राजकीय नीति के विश्लेषण में तुलनात्मक पद्धति के प्रयोग से साम्राज्यवादी खेमे के भीतर संबंधों के रहस्यों का उद्घाटन आसान हो सकता है।

राजनीतिक भविष्यवाणी एवं आयोजना राजनीतिक सिद्धांत का एक प्रमुख संघटक तत्व है। कहना न होगा कि यह वैज्ञानिक भविष्यवाणी का सर्वाधिक दुर्गम क्षेत्र है क्योंकि अधिरचना का अंश होने के कारण, राजनीति न केवल सर्वाधिक सुनम्य होती है बल्कि विभिन्न प्रभावों को ग्रहण भी करती है। बहरहाल, कतिपय सीमाओं के भीतर, बुनियादी प्रवृत्तियों की भविष्यवाणी संभव एवं आवश्यक दोनों ही है। तो भी यह राजनीति के समाजशास्त्र द्वारा प्रयुक्त विधियों के समग्र उपयोग को एक पूर्व शर्त मानकर चलती है।

मोटे तौर पर, राजनीति के अनुभववादी-समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण की मूल समस्या अध्ययन-विषय नहीं होता अपितु राज्य एवं राजनीति के क्षेत्र में 'कैसे' तथा 'किन विधियों' (किन लक्ष्यों की प्राप्ति के प्रयासों) का अनुसंधान होता है।

यही कारण है कि राजनीतिक अध्ययन[47] की अनुभववादी पद्धतियां अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। ये पद्धतियां सामाजिक अनुसंधान के दौरान, पूर्व अर्जित अनुभव का उपयोग करती हैं: (1) सांख्यिकीय आंकड़ों के विश्लेषण; (2) सामाजिक अभिमत (प्रश्नावलियों एवं साक्षात्कारों के माध्यम से) के अध्ययन की विधियों; (3) पर्यवेक्षण की प्रविधियों, (4) दस्तावेज़ों के विश्लेषण, (5) सामाजिक परीक्षणों; (6) श्रेष्ठ गणितीय पद्धतियों, (7) प्रतिरूप-निर्माण एवं वैकल्पिक प्रस्तावों की विवेचना; (8) खेल सिद्धांत (गेम थ्योरी) के उपयोग आदि से

47. देखें, वी० ए० यादोव : मेथड्स एंड प्रोब्लेम्स इन सोशियालाजीकल रिसर्च, तार्तू, 1968 तथा वी०ए० यूरिन : सोशियोलाजी आफ द वर्ल्ड एंड द वर्ल्ड आफ सोशियोलाजी : मेथड्स आफ स्टडीइंग पब्लिक ओपीनियन, मास्को, 1971

विकास एवं अंत क्रिया पर ध्यान देने की है।

राजनीतिक व्यवस्था के प्रति हमारे पद्धतिमूलक दृष्टिकोण की नींव राजनीतिक संबंधों के द्वंद्वात्मक समाजशास्त्र तथा उस पर आधारित व्यवस्थारक विश्लेषण से निर्मित होती है। व्यवस्था सिद्धांत के बुर्जुआ विवेचन के विपरीत, मार्क्सीय द्वंद्वात्मक दृष्टिकोण में पर्यावरण से व्यवस्था का पृथक्कीकरण, पर्यावरण के साथ इसके संबंधों तथा इसके आंतरिक सबंधों का अध्ययन, बुनियादी परिवर्तनशील तत्त्वों को अभिलक्षित करना, लक्ष्यों तथा विकल्पों एवं क्रिया व्यापार की यंत्रविधि एवं प्रणालियों का निर्धारण समाहित है। यह दृष्टिकोण, उपरोक्त बिंदुओं के अतिरिक्त, कतिपय अन्य को भी अपना अंग मानता है: व्यवस्था के विकास के तत्त्व के रूप में व्यवस्था की क्रियाविधि की परीक्षा, जैवीय एवं साइबरनेटिक तंत्रों की तुलना में एक ओर तो सामाजिक व्यवस्था की विशिष्टता के संबंध में, तथा दूसरी ओर, समाजिक जीवन के विशिष्ट पक्ष के रूप में राजनीतिक व्यवस्था से संबंधित चिंतन; विरोधी शक्तियों एव अंतर्विरोधों की एकता व संघर्ष के परिप्रेक्ष्य में टकराव एवं सघर्ष का अध्ययन; समाज की वर्गीय एवं आर्थिक संरचना से उत्पन्न होने वाले, राजनीतिक व्यवस्था मे परिवर्तन के प्रमुख कारकों का पृथक्कीकरण। इस मुद्दे पर टालकॅट पार्सन्स के क्रिया-विधि संबंधी मत से हमारा विरोध है जो सामाजिक परिवर्तन के गुणवाचक स्वरूप को अनावश्यक मानता है (इस आग्रह का सीधा अर्थ है वर्ग सघर्ष एवं क्रांति तथा सामाजिक अंतर्विरोधों के वस्तुनिष्ठ स्वरूप का अस्वीकार) तथा जो मूर्त्त घटना क्रियाओं के विश्लेषण को दुर्गम बनाने की दृष्टि से शब्दों के चालाकी भरे प्रयोग एवं निगमनात्मक पद्धतियों पर अतिशय ध्यान केंद्रित करता है।

'राजनीतिक व्यवस्था' के रूप में जानी जाने वाली कोटि की सही व्याख्या एवं प्रयोग, हमारी दृष्टि में, उन समस्त बुनियादी कोटियों एवं अवधारणाओं को एक व्यवस्था में सन्निहित करने की अनुमति देता है जोकि समाज के राजनीतिक जीवन को व्यक्त करते हैं। इस कोटि से प्रारंभ करके अनुसंधानकर्ता क्रमशः संकेंद्रित एवं विशिष्टीकृत राजनीतिक कोटियों तक पहुंच सकते हैं व ऐसा करपाने के लिए अनुभववादी अध्ययन के उद्देश्यों से लक्षणों का सेट प्रस्तुत करते हैं जिसकी स्पष्ट तार्किक निर्धारण से जांच संभव हो।

राजनीतिक व्यवस्था आर्थिक एवं बौद्धिक व्यवस्थाओ की भांति ही, सामाजिक समूहों के क्रिया व्यापार द्वारा पृथक्कीकृत, समाज की उप-व्यवस्था है। राजनीतिक व्यवस्था अन्य सामाजिक व्यवस्थाओं से प्रथकतः अपनी सर्वोच्चता के कारण अलग एवं विशिष्ट होती है। यह समाज में सर्वोच्च सत्ता का उपयोग करती है तथा इसके निर्णय समूचे समाज पर, तथा इसकी समस्त उपव्यवस्थाओं पर समानरूप से लागू होते हैं। राजनीतिक व्यवस्था का बुनियादी प्रकार्य समाज

के लिए, इसकी नेतृत्वकारी सामाजिक-वर्गीय शक्तियों द्वारा निर्धारित, लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए ससाधन जुटाना है। सत्ता इसका प्रमुख लक्षण है। जबकि अर्थ-व्यवस्था का प्रमुख सबंध समाज की मांगों की पूर्ति के लिए वस्तुओं (सामान) का उत्पादन करना तथा सुविधाएं जुटाना है, बौद्धिक व्यवस्था का प्रमुख प्रकार्य आचरण सबंधी मानदडो एव प्रतिरूपों की स्थापना के माध्यम से व्यक्तियों का समाज से अनुकूलन करना है।

राजनीतिक व्यवस्था का परिवेश—समाज की सामाजिक आर्थिक संरचना—अन्य उपव्यवस्थाओं के साथ इसकी अतःक्रियाओं को नियोजित करता है। समाज मे सर्वोच्च सत्ता पर अधिकार होने के बावजूद राजनीतिक व्यवस्था, समाज की आर्थिक एव सामाजिक सरचना द्वारा पूर्व निर्धारित, अधिरचना का ही अग होती है।

राजनीतिक व्यवस्था का तीसरा विशिष्ट लक्षण इसकी सापेक्ष स्वायत्तता है जोकि समूह रचनाओं, भूमिकाओं एव प्रकार्यों की विशिष्ट यत्र विधि द्वारा निर्धारित होती है।

सपूर्ण समाज पर राजनीतिक व्यवस्था का प्रभाव, अन्य उप-व्यवस्थाओं के प्रभाव की तुलना मे, अधिक सक्रिय होता है। यह इस तथ्य का परिणाम है कि इसके पास सर्वोच्च सत्ता तो होती ही है, समाज के ससाधनों का व्यवस्थापन करने का अवसर भी होता है।

किसी भी समाज को राजनीतिक व्यवस्था मे ये गुण समान रूप से पाये जाते हैं। प्रत्येक सामाजिक-आर्थिक संघटन के विकास की प्रत्येक अवस्था मे इनकी सामाजिक अतर्वस्तु, निहित एव व्यक्त होती है।

यहां हमे राजनीतिक व्यवस्था के परम विशिष्ट प्रकार्यों से इसके बुनियादी प्रकार्यों को अलग करना आवश्यक लगता है। ये प्रकार्य हैं: (1) समाज के लक्ष्यों एवं दायित्वों का निर्धारण, (2) ससाधन जुटाना, (3) समाज के समस्त तत्त्वों का समाकलन, (4) वैधीकरण—जिसका अर्थ है व्यवहृत राजनीतिक जीवन की राजनीतिक एव विधिक मानदडो के साथ तदनुरूपता।

लक्ष्यों का निर्धारण तथा उनकी पूर्ति के लिए ससाधन जुटाना राजनीतिक व्यवस्था के प्रमुख प्रकार्य हैं जबकि समाकलन तथा वैधीकरण राजनीतिक एवं अन्य सामाजिक उपव्यवस्थाओं (विशेषतया बौद्धिक उपव्यवस्था) के प्रकार्य हैं। इन लक्षणों के आधार पर हम न केवल राजनीतिक जीवन के सस्थानिक पक्ष का बल्कि व्यवहारवादी पक्ष का भी विश्लेषण कर सकते हैं।

राजनीतिक जीवन के सघटक तत्वों तथा इसके विशिष्टताबोधक चिन्हों एव प्राचलों मे विभेद किया जाना चाहिए। हमारी दृष्टि मे, उन्नत पूंजीवादी समाज की राजनीतिक व्यवस्था के चार तत्व-समूह संकेत योग्य हैं: ये इनकी

भूमिका एवं प्रकार्यों के अनुरूप होते हैं। (1) राजनीतिक संगठन; (2) राजनीतिक मानदंड; (3) राजनीतिक संबंध, (4) राजनीतिक चेतना। ये समाज की राजनीतिक व्यवस्था की उपव्यवस्थाएं हैं।

राजनीतिक व्यवस्था के तत्वों के रूप में सामाजिक जीवन के उन संस्थानों, समूहों, मानदंडों, प्रकार्यों एवं भूमिकाओं पर विचार किया जा सकता है जो राजनीतिक प्रशासन से अंत:क्रिया करते हैं। राजनीतिक व्यवस्था के विशिष्ट तत्वों द्वारा निबाही गयी भूमिकाओं तथा किए गये प्रकार्यों की दृष्टि से एकल-प्रकार्यी तत्वों (जैसे राजनीतिक दल, जिनका प्रकार्य नितांत राजनीतिक होता है) तथा बहु-प्रकार्यी तत्वों (जैसे श्रमिक संघ तथा व्यावसायिक संगठन, राजनीतिक प्रकार्य जिनके लिए प्रमुख होते हुए भी अन्य प्रकार्यों में से एक है) में भेद किया जा सकता है। अंत में, उन संस्थानों, संगठनों एवं समूहों, जिनके लिए राजनीति एक प्रमुख प्रकार्य नहीं है (जैसे वैज्ञानिक संगठन आदि), में अप्रस्तुत राजनीतिक प्रकार्यों एवं अंत:क्रियाओं की उपस्थिति पर भी हमें गौर करना चाहिए।

प्राय: सभी समकालीन संस्थानों, समुदायों एवं व्यक्तियों के आचरण में राजनीतिक पक्ष लक्षित किये जा सकते हैं, तथापि केवल वे संस्थान ही—जो सत्ता एवं प्रशासन के साथ घनिष्ठ अंत:क्रिया करते हैं तथा इस प्रकार का क्रियाकलाप जिनका अनिवार्य लक्षण है—राजनीतिक व्यवस्था के तत्व होते हैं।

राज्य राजनीतिक व्यवस्था की एक पारंपरिक संस्था है जो विभिन्न क्रियात्मक उपव्यवस्थाओं—विधायिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका— से मिल कर बना है। किंतु राजनीतिक व्यवस्था को राज्य मानना या इसमें बदलना इसके मूल्य को कम करना होगा, यद्यपि राजनीतिक व्यवस्था में राज्य की भूमिका केंद्रीय होती है। राजनीतिक व्यवस्था में अन्य राजनीतिक संरचनाएं भी समाहित होती हैं जिनके प्रकार्य व्यवस्था की, स्वायत्त उपव्यवस्था के रूप में, क्रियाशीलता के लिए बेहद महत्त्वपूर्ण होते हैं। इस तरह की संरचनाएं दबाव एवं दमन के विशिष्ट लक्षणों से रहित हो सकती हैं किंतु, अंतिम विश्लेषण में, इन्हीं के माध्यम से राजनीतिक सत्ता एवं समस्त समाज (प्रशासन के कर्त्ता एवं पात्र) के संबंध रूपायित होते हैं। इन्हीं के माध्यम से समाज के समस्त सदस्य राजनीतिक जीवन में भागीदारी निभाते हैं; इन्हीं के सहयोग से राजनीतिक लक्ष्य सूत्रबद्ध होते हैं या यों कहें कि राजनीतिक जीवन की गतिशीलता निर्धारित होती है।

'राजनीतिक व्यवस्था' एवं 'राज्य' का अंतर; राजनीतिक संस्थाओं के विश्लेषण में सुस्पष्ट होकर सामने आता है। राजनीतिक व्यवस्था में राज्य के अवयवों के अतिरिक्त अन्य राजनीतिक संस्थाएं एवं संगठन तथा राजनीतिक रूप भी सम्मिलित होते हैं। राजनीतिक व्यवस्था एवं राज्य का समाजशास्त्रीय

अध्ययन—क्योंकि ऐसा अध्ययन संवैधानिक एवं न्यायिक परिप्रेक्ष्य में किये गये राज्य के विश्लेषण से कहीं आगे जाता है—राजनीतिक व्यवस्था में इन तत्त्वों के महत्त्व को उद्घाटित करता है।

यह सर्वविदित है कि राजनीतिक शब्दावली में 'राज्य' का प्रयोग दो अर्थों में होता है: सीमित अर्थ में, राज्य राजनीतिक व्यवस्थाओं की संस्थाओं में से एक है जो बल प्रयोग के यंत्र का संचालन करता है; व्यापक अर्थ में, राज्य संपूर्ण समाज की सार्वजनिक अधिकारिक अभिव्यक्ति है। दरअसल, दूसरे अर्थ में, राज्य की अवधारणा का प्रयोग राजनीतिक व्यवस्था के पर्याय के रूप में होता है। इस अर्थ में ही हम 'पूंजीवादी राज्य', 'समाजवादी राज्य', विकासशील राज्यों की तथा मूर्त रूप में 'सोवियत राज्य' 'अमरीकी राज्य' आदि की चर्चा करते हैं। इस अर्थ में राजनीतिक व्यवस्था की चर्चा अधिक उपयुक्त होगी।

यहां इस बात को रेखांकित करना आवश्यक है कि मार्क्सवाद-लेनिनवाद के श्रेष्ठ ग्रन्थों ने राज्य का अध्ययन सीमित अर्थ में ही नहीं किया अपितु राजनीतिक व्यवस्था अथवा संरचना के अर्थ में भी किया। राज्य की सामाजिक एवं वर्गीय भूमिका (दमन एवं आधिपत्य के यंत्र के रूप में तथा, बल प्रयोग के यंत्र के रूप में भी) निर्दिष्ट करने के साथ ही उन्होंने राज्य को सार्वजनिक सत्ता, विरोधपूर्ण समाज के अस्तित्व तथा विशिष्ट संघटित इकाई, के रूप में भी देखा। शासक वर्गों के अस्त्र के रूप में राज्य के सार तत्त्व को रेखांकित करते हुए, मार्क्स एवं एंगेल्स ने इसे समाज के अस्तित्व का सार्वजनिक रूप भी माना। मार्क्स के शब्दों में, "किसी विशिष्ट नागरिक समाज की परिकल्पना कीजिए आपका ऐसी राजनीतिक परिस्थितियों से सामना होगा जो उस नागरिक **समाज की अधिकारिक सार्वजनिक अभिव्यक्ति मात्र हैं**" (जोर लेखक का)।[49] मार्क्स एवं एंगेल्स की कृतियों में हमें राजनीतिक संरचना की अवधारणा भी मिलती है जो व्यापक अर्थ में, प्रमुखतया राज्य का पर्याय है।

अस्तु, राजनीतिक व्यवस्था की अवधारणा स्वीकृत सीमित अर्थ में राज्य की अवधारणा से अधिक व्यापक है। साथ ही यह 'समाज के राजनीतिक संघटन' की अवधारणा से भी अधिक व्यापक है, यद्यपि यह राजनीतिक व्यवस्था का अन्यतम तत्त्व होता है। राजनीतिक संगठनों के माध्यम से ही समाज के प्रमुख लक्ष्यों एवं राजनीतिक नीति का निर्धारण होता है तथा राजनीतिक एवं विधिक मानदंडों को सूत्रित किया जाता है; समूचे समाज को गति मिलती है। लेकिन जैसे पहले कहा जा चुका है, राजनीतिक व्यवस्था को समाज के राजनीतिक संगठनों में घटित नहीं किया जा सकता। वास्तविक राजनीतिक जीवन एवं राजनीतिक संबंध

49 कार्ल मार्क्स एवं फ्रेडरिक एंगेल्स : सिलेक्टेड कारेस्पांडेंस, मास्को, 1965, पृ० 35

राजनीतिक संगठनों के क्रिया-कलाप से कहीं अधिक व्यापक होते हैं। इनमें राजनीतिक एवं विधिक मानदंडों के अतिरिक्त विभिन्न समुदाय (जैसे श्रमजीवी समूह) भी समाहित होते हैं तथा जो राजनीतिक व्यवस्था की क्रिया-विधि को व्यक्त करते हैं।

अब हम उन्नत पूँजीवादी समाज की राजनीतिक व्यवस्था के तत्वों का उनकी अंत क्रिया (उस व्यवस्था के परिचालन एवं विकास) के आलोक में विस्तार से अध्ययन करेंगे।

अध्याय : 2

विकसित पूंजीवादी समाज में राजनीतिक व्यवस्था

राजनीतिक संस्थाएं एवं राजनीतिक शासन प्रणालियां

राज्य को पारंपरिक रूप से राजनीतिक व्यवस्था की बुनियादी संस्था
जाता है। राज्य वह उपकरण है जिससे शासक वर्ग समाज को नेतृत्व
करता है तथा उस पर प्रशासन करता है। मार्क्स के शब्दों में, "वर्गीय रा
क्रियाकलाप के दो पक्ष होते हैं—सामान्य क्रियाकलाप जो विभिन्न समुद
स्वभाव से उद्भूत होते हैं तथा विशिष्ट प्रकार्य जो सरकार एव ज
विरोधों से उद्भूत होते हैं।"[1]

राज्य के क्रिया-व्यापार में न केवल शासक वर्ग के समान हित प्र
होते हैं बल्कि उस वर्ग के विभिन्न समूहों का प्रभाव भी व्यक्त होता है।
श्रमिक वर्ग (जो विधि निर्माण के माध्यम से सामाजिक रियायतों के लि
डालता है) के दबाव पर ध्यान दिये बगैर राज्य का क्रिया-व्यापार
सकता।

राज्य का समग्र समाजशास्त्रीय विश्लेषण सामान्यतया नि
कसौटियों पर आधारित होता है (1) राज्य की सामाजिक भूमिका
की सांघटनिक संरचना, (3) अन्य सामाजिक संस्थाओं की तुलना
सभाव्य अधिकार एवं शक्तियां; (4) समाज, वर्गों एव राष्ट्रों से इस
स्वरूप।

उन्नत पूंजीवादी देशों में, वर्गशत्रुओं के दमन एवं वर्तमान उ
को बनाये रखने के अतिरिक्त भी राज्य के कुछ अन्य प्रकार्य होने
प्रक्रिया का नियमन, सामाजिक संबंधों, बौद्धिक एव सांस्कृतिक जी
क्रिया-व्यापार का संचालन, विदेश नीति की क्रियान्विति आदि इ

उपरोक्त के साधारणीकरण के आधार पर यह कहा जा स

... 1971, पृ० 284

सामाजिक संगठनों से राज्य की पृथकता एवं विशिष्टता के ये कारक होते हैं: (1) समाज की आर्थिक एवं सामाजिक संरचना के अनुरक्षण तथा समूचे समाज के प्रशासन में सलग्न व्यक्तियों के एक विशिष्ट समूह का अस्तित्व; (2) समूची आबादी पर बल प्रयोग की शक्ति पर इसका एकाधिकार; (3) देश के भीतर व बाहर समूचे समाज के नाम से, घरेलू एवं वैदेशिक नीति—आर्थिक सामाजिक, सैनिक—क्रियान्वित करने का इसका अधिकार एवं सामर्थ्य; (4) समूची आबादी को बाधित करने वाले नियम एवं कानून जारी करने का इसका सर्वोच्च अधिकार, (5) क्षेत्रीय आधार पर सत्ता संघटन, (6) राष्ट्रीय बजट बनाने के लिए समूची आबादी से कर वसूल करने के अधिकार पर इसका स्वामित्व।

राज्य के राजनीतिक स्वरूप तथा इसके क्रिया-व्यापार के चरित्र के विस्तृत विश्लेषण के लिए इसकी सांगठनिक संरचना, इसके विभिन्न अवयवों के बीच कार्यों के वितरण, राज्य की संस्थाओं की आंतरिक संरचना एवं गतिशीलता, राज्य द्वारा शासकीय विचारधारा तथा मूल्य-प्रणाली विकसित एवं स्वीकृत करने के तरीकों, राज्य की राजनीतिक एवं आर्थिक भूमिका, कानून की सामाजिक उपयोगिता, प्रशासन तंत्र की बनावट, राजनीति में लघु समूहों की भूमिका, जनता के राजनीतिक आचरण तथा अन्य विभिन्न अनुभवपरक प्रश्नों का अध्ययन अनिवार्य एवं अपरिहार्य है।

राज्य की प्रक्रियाओं एवं विशिष्ट नीति की समझ के लिए राज्य के स्वरूप का प्रश्न अत्यंत महत्वपूर्ण है। आर्थिक संबंधों एवं सामाजिक संरचना वे बुनियादी तत्व हैं जिनसे राज्य के प्रकार की जानकारी मिलती है, जबकि इसके स्वरूप को समझने के लिए इसकी राजनीतिक संरचना, शासन एवं राज्य संघटन के रूप, राजनीतिक शासन प्रणाली एवं राजनीतिक गतिशील शक्तियों (गति-विज्ञान) का अध्ययन परम आवश्यक है।

सोवियत न्यायिक साहित्य में राज्य संघटन एवं शासन के रूपों की अवधारणा का प्रयोग लंबे समय से हो रहा है। शासन के रूप को सामान्यतया राज्य के शक्ति-संगठन के रूप में समझा जाता है। इस शक्ति का स्रोत एक विशिष्ट व्यक्ति (राजा) अथवा जनता का समूह हो सकता है, अथवा दोनों का ही। यदि राज्य-शक्ति का स्रोत राजा है तो शासन का रूप राजतंत्र कहा जायेगा। यदि कानून के तहत शक्ति का स्रोत जनता है अथवा इसका बहुमत है तो शासन का रूप गणतंत्र के रूप में जाना जायेगा।

मार्क्सवादी साहित्य ने लंबे समय से यह अनुभव किया है कि राज्य के रूप का विशुद्ध न्यायिक विवेचन यथेष्ट नहीं है। राज्य का रूपवादी वर्णन, जिसकी जड़ें अरस्तू की 'राजनीति' में खोजी जा सकती हैं, राजनीतिक जीवन की विविधता एवं संपदा को सही ढंग से ग्रहण करने एवं उसे पूरी तरह व्यक्त करने में असमर्थ ही

रहा है। राजतंत्र एवं गणराज्य का वर्गीकरण वस्तुस्थिति का सही आकलन प्रस्तुत नहीं करता क्योंकि व्यवहार में कतिपय राजतंत्र गणराज्यों से अधिक जनतान्त्रिक है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि गणराज्य की धारणा भिन्न, कभी-कभी विरोधी भी, सामाजिक संरचनाओं वाले राज्यों के लिए प्रयुक्त की जाती है।

यही कारण है कि बहुत से अध्येताओं ने 'शासन के रूप' तथा 'राज्य संघटन' को पुष्ट करने के लिए राजनीतिक शासन प्रणाली की अवधारणा प्रस्तुत की है।

अमरीकी राजनीतिक समाजशास्त्र ने राजनीतिक शासन प्रणाली के विश्लेषण में समुचित रुचि प्रदर्शित की है जो वास्तविक जीवन के तथ्यों को एकत्र एवं विवेचित करने की अमरीकी प्रवृत्ति के साथ मेल खाती है। किंतु, राजनीतिक शासन प्रणालियों को परिभाषित करने की कसौटियां तथा निकाले गये निष्कर्ष न केवल सीमित हैं, बल्कि अमरीकी बूर्ज्वा व्यवस्था की खुल्लमखुल्ला वकालत से अधिक कुछ नहीं हैं।

अमरीकी राजनीति के कतिपय अध्येता राज्य-नीति के क्रियान्वयन की पद्धतियों एवं प्रविधियों को राजनीतिक शासन प्रणाली के मूल्यांकन की कसौटी के रूप में प्रस्तावित करते हैं। इसके आधार पर वे समस्त समकालीन सरकारों को 'राजनीतिक जनतंत्रों' एवं 'तानाशाही शासनों' में विभक्त करते हैं।

किसी भी आधुनिक राज्य का—चाहे वह समाजवादी हो, बूर्ज्वा अथवा विकासशील हो—विश्लेषण (यदि वह इसकी आर्थिक संरचना से कटा हुआ है अथवा राजनीतिक शासन प्रणाली अथवा विशिष्ट नीति को रूपायित करने वाले विभिन्न वर्गों के वास्तविक प्रभाव एवं तद्नुरूपता के अध्ययन से कटा हुआ है) फलदायी नहीं हो सकता तथा यह निश्चित है कि ऐसा विश्लेषण अध्येता को बंद गली में जाकर ही छोड़ेगा।

वस्तुत इस दृष्टिकोण को स्वीकार करने से विरोधी संरचनाओं वाले देश—जिनकी घरेलू एवं वैदेशिक नीतियां बुनियादी तौर पर भिन्न हैं—एक ही श्रेणी में आ जाते हैं। तानाशाही शासनों में 'शास्त्रीय' तानाशाहियां (जैसे च्यांग काई शेक का शासन), छद्म-क्रांतिकारी तानाशाहियां, अति-क्रांतिकारी तानाशाहियां (या जैसे वे लेबल लगाते हैं, साम्यवादियों की तानाशाही), तथा प्रति-क्रांतिकारी तानाशाहियां (राजनीति के अध्येताओं द्वारा फ्रांको की तानाशाही को दिया गया नाम)—ये सभी सम्मिलित हैं। इन अध्येताओं की समझ में इसमें कोई अंतर नहीं आता कि राजनीति शास्त्री शासन प्रणालियों के विवेचन में क्रांति के प्रति उनके दृष्टिकोण को भी महत्त्वपूर्ण मानते हैं, क्योंकि इनके लिए रूपवादी कसौटियां—जिन्हें भी सही तौर पर नहीं समझा गया है—ही प्रमुख स्थान रखती हैं। जैसाकि उपरोक्त शासन प्रणालियों की विशिष्ट नीतियों के

विश्लेषण से स्पष्ट है. प्रमुख कसौटियाँ आर्थिक, सामाजिक, विचारधारात्मक आदि हैं जिनका ये राजनीतिशास्त्री उल्लेख तक नहीं करते।

राज्य के क्रिया व्यापार का समाजशास्त्रीय विश्लेषण सरकार एवं विधि के उन पारंपरिक सम्प्रदायों से निश्चित रूप से एक कदम आगे है जो सांख्यिकीय आंकड़ों के माध्यम से शासन के रूपों के अध्ययन तक स्वयं को सीमित रखते हैं। फिर भी, मूल प्रश्न यह है कि इन समाजशास्त्रीय अध्ययनों के लक्ष्य क्या हैं तथा ये किनका हित साधन करते हैं। कुछ अपवादों को छोड़ भी दें तो इस तरह के अध्ययनों का मुख्य उद्देश्य वर्तमान पूंजीवादी व्यवस्था को बनाये रखने की दृष्टि से प्रभावी तरीकों की खोज होना है।

सोवियत साहित्य में राजनीतिक शासन प्रणाली को सामान्यतया राज-सत्ता की क्रियान्विति की पद्धतियों की व्यवस्था, जनतंत्रीय अधिकारों एवं स्वतंत्रताओं तथा राजसत्ता के क्रिया-व्यापार के न्यायिक आधारों के साथ इसके विभिन्न अवयवों के संबंधों की व्यवस्था के रूप में परिभाषित किया जाता है।

कुल मिलाकर यह सही है यद्यपि इसे अनुपूरित किये जाने की आवश्यकता है। राजनीतिक शासन प्रणाली के मूल्यांकन में जनतंत्र की मात्रा का कसौटी के रूप में चयन पूरी तरह तर्कसंगत एवं उचित है क्योंकि यदि हमारे दिमाग में शासक वर्ग के विभिन्न समूहों के प्रतिनिधियों के अधिकार एवं स्वतंत्रता से कोई सरोकार है, तो यह निश्चित रूप से प्रमुख कसौटी बन जाती है। यह इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है कि जनतंत्र विरोधी शासन प्रणालियों में भी शासक वर्ग के प्रतिनिधियों को एक हद तक स्वतंत्रता का बंदोबस्त होना है। अतः राजनीतिक शासन प्रणाली को समझने के लिए शासकीय रूपों—संवैधानिक एवं विधिक रूपों सहित—की तुलना वास्तविक राजनीतिक जीवन, घोषित लक्ष्यों तथा वास्तविक नीति से करनी चाहिए।

वर्त्तमान में, जबकि समाजवाद के प्रति राष्ट्रों का आकर्षण बेहद बढ़ गया है, बहुत से राज्य अपनी सत्ता, लक्ष्यों एवं दायित्वों को परिभाषित करने में समाज-वादी नारों का सहारा लेने लगे हैं—यही कारण है कि अभिव्यक्त नारों का वास्त-विक सामाजिक एवं राजनीतिक प्रक्रियाओं से मिलान करना बेहद महत्त्वपूर्ण बन गया है। राजनीतिक शब्दावली का उद्भव प्रक्रियाओं में से ही होना चाहिए। हिटलरवादी जर्मनी ने स्वयं को राष्ट्रीय समाजवाद का जामा बेशक पहना लिया हो, वह वस्तुत. आतंकवादी, श्रमिक वर्ग विरोधी तानाशाह राज्य था।

बूर्ज्वा समाज की राजनीतिक शासन प्रणाली को परिभाषित करने के लिए हमें निम्नलिखित बिंदुओं पर विचार अवश्य करना चाहिए : राज्य का नियंत्रण शासक वर्ग के किन समूहों के हाथ में है; प्रभुत्व के कौन से तरीके—प्रत्यक्ष एवं

अथवा दलो के संयुक्त मोर्चे शासकीय शक्ति बने हुए है; वे कौन सी सीमाएं हैं जिनके भीतर सामाजिक संघर्ष एवं दबाव के संगठनों—यानी विरोधी तथा क्रांतिकारी दलो, श्रमिक सघो तथा अन्य व्यावसायिक संगठनों—को काम करने की छूट है, राज्य मे व्यक्ति का क्या स्थान है, आदि।

समकालीन बूर्ज्वा राज्य की नियति पर विचार करने के लिए पश्चिमी दुनिया का राजनीतिक इतिहास बेहद दिलचस्प सामग्री उपलब्ध कराता है। इतिहास ने बूर्ज्वा जगत में राजनीतिक रूपों की विविधता को उजागर एवं प्रमाणित कर दिया है—एक छोर पर फ़ासिस्ट शासन प्रणालियां तथा दूसरे पर फ़िनलैंड जैसी बूर्ज्वा जनतंत्रीय व्यवस्था। प्रत्येक देश मे, अपने विकास की प्रत्येक अवस्था मे वर्गीय शक्तियों का अन्योन्याश्रय एवं संघर्ष किसी भी राजनीतिक व्यवस्था के चरित्र का प्रमुख निर्धारक तत्व होता है।

जैसा पहले भी कहा जा चुका है, राज्य के रूप की परिभाषा राजनीतिक गतिविज्ञान संबंधी विचार को आवश्यक मानकर चलती है। गतिविज्ञान* की अवधारणा राज्य की नीति की बुनियादी दिशाओ का संकेत देती है। पूंजीवादी देशो से संबंधित राजनीतिक साहित्य मे लंबे समय से 'आक्रामक' एवं 'शांतिकामी' जैसे विशेषण देखने मे आते रहे हैं। इस तरह के लाक्षणिक वर्णन बहुधा राजनीतिक शासन प्रणाली की परिभाषा से अधिक सारवान् होते हैं।

कुछ लोगों की यह मान्यता हो सकती कि राजनीतिक शासन प्रणाली मे इसकी राजनीति का चरित्र भी सन्निहित होता है। किंतु यह पूरी तरह सही नही है। दो फासिस्ट राज्यो जर्मनी एवं स्पेन, जिनमे 1930 के दशक के अंत तक राजनीतिक शासन प्रणाली के चरित्र की दृष्टि से कोई अंतर नही था—की वैदेशिक नीति का तुलनात्मक अध्ययन अत्यंत महत्त्वपूर्ण भिन्नताएं सामने लाता है। विभिन्न कारणों से, फ्रांको को अंतरराष्ट्रीय क्षेत्र में आक्रमण की नीति त्यागने को विवश होना पड़ा। लगभग तीन दशक तक स्पेन मे फ़ासिस्ट राज्य बना रहने के पीछे यह महत्त्वपूर्ण कारण है (अन्य फ़ासिस्ट राज्यो मे इन शक्तियों का शासन अल्पकालिक था)। परिणामस्वरूप, फ़ासिस्ट स्पेन की विशिष्टताओ पर विचार करते समय हमे, अन्य चीज़ो के अतिरिक्त, उसकी वैदेशिक नीति पर ग़ौर करना चाहिए। यह बात आधुनिक पूंजीवादी राज्यो पर भी लागू होती है।

उपरोक्त चिंतन के परिप्रेक्ष्य मे, बूर्ज्वा राज्यों का वर्गीकरण किस तरह किया जाय? राजनीतिक शासन प्रणालियो एवं राजनीतिक गतिविज्ञान के परिप्रेक्ष्य मे बूर्ज्वा राज्यों के निम्नलिखित बुनियादी समूहों को पृथक किया जा सकता है:

* किसी भी प्रक्रिया के लक्षणो के विवेचन के लिए गतिविज्ञान की अवधारणा का प्रयोग व्यापक अर्थ में होता है। प्रस्तुत संदर्भ मे इस शब्द का प्रयोग सीमित अर्थ में किया गया है।

तैयारी को समर्पित होती है। उनमे फासिस्ट राज्य के अन्य गुण भी अनिवार्य रूप से विद्यमान नहीं होते। सर्वसत्तावाद का अर्थ है बूर्ज्वा वर्ग—विशेषकर एकाधिकारी पूंजीवाद—के हितों की रक्षा की दृष्टि से सामाजिक एवं व्यक्तिगत जीवन मे राज्य का सीमाहीन हस्तक्षेप। प्रस्तुत सदर्भ में आर्थिक हस्तक्षेप की ओर संकेत नहीं है जोकि निर्विवाद रूप से पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के विकास मे सबद्ध न्यस्त स्वार्थों एव वर्गीय शक्तियो के अन्योन्याश्रय द्वारा निर्धारित होता है। यहां हमारा संकेत राज्य के सामाजिक संस्थाओ से निर्मित तत्र के गौण बना दिये जाने की ओर है जिसके अंतर्गत ससद, लोक प्रशासन के निकायो, बूर्ज्वा दलो, दक्षिणपथी श्रमिक संघों को बूर्ज्वा वर्ग द्वारा सामाजिक आधिपत्य की सस्थाओ में रूपांतरित कर दिया जाता है।

व्यक्ति सत्तावाद भी बूर्ज्वा राज्यों मे स्वयं को नये रूप मे प्रकट करता है। वर्तमान परिस्थितियों मे, व्यक्ति सत्तावाद का अर्थ है व्यक्तिगत सत्ता पर आधारित शासन की स्थापना; ससद एव अन्य जनतंत्रीय सगठनो के अधिकारों मे भारी कमी; एकाधिकार पूंजीवाद का वर्चस्व बनाये रखते हुए विभिन्न वर्गों को तिकड़मबाजी से नियंत्रित करना।

व्यक्ति सत्तावादी शासन की स्थापना एकाधिकारी बूर्ज्वा वर्ग द्वारा जनता के क्रांतिकारी आदोलन को दिया गया प्रत्युत्तर है विशेषकर तब जबकि ससद एवं अन्य राजनीतिक सस्थाओं मे सत्ता सतुलन एकाधिकारी पूंजीवाद के विरुद्ध एवं विपरीत खिसकने लगा हो। सरकारी अस्थिरता—प्रभावी नीति को क्रियान्वित करने की असमर्थता—को 'शक्तिशाली सत्ता' स्थापित करने के आधार के रूप मे प्रस्तुत किया जाता है।

व्यक्ति सत्तावादी शासन ससदीय एवं सर्वसत्तावादी शासनो से किस तरह भिन्न एवं पृथक है? ससदीय शासन की तुलना मे व्यक्ति सत्तावाद का अर्थ है; राज्याध्यक्ष, जो सरकार के प्रमुख रूप में काम करना भी प्रारंभ कर देता है, की शक्तियों मे यकायक वृद्धि; ससद, जो राज्य की नीति एवं सत्ता पर नियंत्रण रखने वाली सर्वोच्च सस्था है, को विशेषाधिकारो से प्रभावी रूप से वचित किया जाना; सरकारी नीति पर दबाव डालने वाली तथा सामाजिक सघर्ष को जारी रखने वाली सस्थाओं का कमजोर किया जाना; व्यक्ति सत्ता पर आधारित शासन की आवश्यकताओ एव आकांक्षाओं के अनुरूप चुनाव प्रणाली का अनुकूलन तथा यह भ्रम पैदा करने के लिए कि जनता और सत्ता एक ही है जनमत सग्रहों का आयोजन आदि। अपनी व्यावहारिक राजनीति मे, यह शासन राज्य की सापेक्ष स्वायत्तता (समाज एव प्रभुत्वशाली आर्थिक वर्ग—दोनो के संदर्भ मे) मे वृद्धि के सकेत देता है ताकि सामाजिक सरचना को सुरक्षित एव यथावत रखा जा सके।

सर्वसत्तावादी शासन से भिन्न, व्यक्ति सत्तावाद अनिवार्य रूप से राजनीतिक तंत्र (दलों, श्रमिक संघों एवं सामाजिक संगठनों सहित) को राज्य के अधीन गौण नहीं बनाता विपक्ष को कमजोर किया जाता है किन्तु वह सत्ता के विरुद्ध एकताबद्ध हो सकता है. संसदीय संस्थाएं अस्तित्व मे बनी रहती हैं तथा व्यक्तिसत्ता को उखाड़ फेंकने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती हैं। व्यक्तिसत्तावाद सर्वसत्तावादी शासनों की तुलना में सामाजिक आंदोलनों के विरुद्ध हिंसा का प्रयोग करने को कम प्रवृत्त होता है, यह जनप्रिय नारों तथा समझौते के प्रति अपना रुझान अधिक दिखाता है; यह राजनीति मे स्वेच्छाचारिता तथा तर्कशून्यता की ओर भी कम प्रवृत्त होता है।

अब तक फासिस्ट, अर्द्ध-फासिस्ट एवं व्यक्तिसत्तावादी शासनों का उदय ऐतिहासिक रूप से असामान्य परिस्थितियों में ही हुआ है। बूर्ज्वा राज्य का अत्यंत व्यापक रूप संसदीय शासन प्रणाली है। वर्तमान मे, अधिकांश विकसित पूंजीवादी राज्यों मे ऐसे शासन है जोकि समकालीन बूर्ज्वा राज्य की दोनों वस्तुगत प्रवृत्तियों को प्रतिबिंबित करते हैं : (1) सत्ता-संचालन मे इजारेदार पूंजीवाद की बढ़ी हुई भूमिका; (2) जनता के जनवादी आंदोलनों का विकास। संसदीय शासन से हमारा अभिप्राय बूर्ज्वा सत्ता के उस रूप से है जिसमें सार्वभौमिक मताधिकार के आधार पर चुनी हुई संसद सत्ता का सर्वोच्च अवयव होती है तथा जो विधि निर्माण तथा नीतियों को निर्णायक रूप से प्रभावित करने तथा सरकार पर नियंत्रण रखने की क्षमता से संपन्न होती है। इसे, हालांकि, संशोधित करने की आवश्यकता है क्योंकि हमारे समय के बूर्ज्वा राज्यों मे कार्यपालिका के पक्ष मे संसदीय संस्थाओं की भूमिका के न्यूनीकरण की उग्र प्रवृत्ति अभिव्यक्त होती है। इस पर हम आगे विचार करेंगे।

संसदीय शासन तीन रूपों मे व्यक्त हो सकता है : संसदीय गणराज्य जिनमे संसद सरकार तथा राज्याध्यक्ष (यदि उसका प्रावधान हो तो) का चुनाव करती है; अध्यक्षीय गणराज्य जिनमे संसद के साथ-साथ स्वायत्त अध्यक्षीय सत्ता का अस्तित्व होता है; संवैधानिक राजतंत्र। जहां तक दलीय प्रणाली का प्रश्न है, संसदीय शासन बहु-दलीय प्रणाली (इटली) तथा द्वि-दलीय प्रणाली (संयुक्त राज्य अमरीका) मे विभक्त हो सकते हैं।

संसदीय शासन की लाक्षणिक विशिष्टता रूपवादी विषमताओं—जो सत्ता की मात्र गौण विशेषताएं हैं—से अधिक महत्वपूर्ण हैं। ग्रेट ब्रिटेन मे संवैधानिक राजतंत्र का होना वहां के संसदीय शासन को पश्चिमी यूरोप के राज्यों के संसदीय शासनों से तात्विक रूप से भिन्न नहीं बनाता। संवैधानिक राजतंत्र होने का यह अर्थ कदापि नहीं कि ग्रेट ब्रिटेन का राजनीतिक संघटन कम जनतांत्रिक है; इसके विपरीत, यहां पर ही बूर्ज्वा जनतंत्र ने अपने विकसित रूपों को अर्जित किया तथा

उन्हें आज तक कायम रखा है। इसी तरह संसदीय एवं अध्यक्षीय गणराज्यों की भिन्नताएं उतनी महत्त्वपूर्ण नहीं हैं जितनी कि संसदीय एवं व्यक्ति सत्तावादी शासनों की भिन्नताएं हैं।

राजनीतिक शासन के विस्तृत विवेचन एवं विश्लेषण के लिए सामाजिक प्रभुत्व एवं सामाजिक संघर्ष की संस्थाओं (जो राज्य की संस्थाएं नहीं हैं) का विश्लेषण आवश्यक है। बहुत से विकसित पूंजीवादी देशों में लंबे समय से सामाजिक जनवादी दलों का शासन रहा है। ठोस एवं सटीक विश्लेषण से ही यह सिद्ध हो सकता है कि इसे राजनीतिक शासन की यथातथ्य अवधारणा का आधार बनाया जा सकता है अथवा नहीं।

यह एक निर्विवाद सत्य है कि किसी भी देश में सामाजिक जनवादियों ने—जहां भी वे सत्ता में हैं—सामाजिक आर्थिक व्यवस्था के आधारों को परिवर्तित नहीं किया है। सामाजिक जनवादी प्रशासन संपत्ति संबंधों तथा सामाजिक संबंधों की प्रकृति को बदल नहीं पाये है—इंग्लैंड, स्वीडन, आस्ट्रिया, फिनलैंड में कहीं नहीं। किन्हीं अवस्थाओं में छुटपुट परिवर्तनों को छोड़कर, ये अपनी घरेलू तथा वैदेशिक नीतियों में कोई आमूलचूल परिवर्तन नहीं कर पाये है। उदाहरण के लिए, युद्धोत्तर काल में आस्ट्रिया में कई सुधार किये गये · अर्थव्यवस्था के महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों का राष्ट्रीयकरण करके। स्वीडन में सामाजिक जनवादियों ने श्रमिक वर्ग के कतिपय हितों की रक्षा करने वाली कार्यवाहियां की है। किंतु, और यह रेखांकित करना आवश्यक है, इन देशों में पूंजीवादी सामाजिक संरचना के आधार अभी भी अविचलित एवं पक्के बने हुए हैं।

मोटे तौर पर एकदम यही बात राजनीतिक शक्ति के बारे में भी कही जा सकती है जो पहले की भांति संसदीय शासन के रूप में विद्यमान है। तो भी सामाजिक जनवादी शासन द्वारा प्रदत्त श्रमिक वर्ग को दबाव के, तथा अन्य कामगर लोगों को शासन के जनतांत्रीकरण, भौतिक परिस्थितियों में सुधार तथा घरेलू एवं वैदेशिक नीति में परिवर्तन की मांगों के पक्ष में दबाव बनाने तथा बढ़ाने के अवसरों पर अवश्य गौर किया जाना चाहिए। दार्शनिक एवं न्यायिक दृष्टि से इन पर विचार किया जाना महत्त्वपूर्ण न भी हो तो भी समाजशास्त्रीय एवं राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में बेहद महत्त्वपूर्ण है क्योंकि ये दोनों पद्धतियां बृहद् एवं सूक्ष्म दोनों ही प्रकार के कारकों पर गौर करती हैं।

हम बूर्ज्वा सत्ता के फ़ासिस्ट, अर्द्धफासिस्ट, व्यक्ति सत्तावादी एवं संसदीय शासनों के विशिष्टतापूर्वक लक्षणों पर दृष्टिपात कर चुके हैं। इन सब में सभी तत्त्व यह है कि ये राज्य के ऐसे रूप हैं जिनके अंतर्गत राजकीय इजारेदार पूंजीवाद का प्रभुत्व होता है। सत्ता के इन रूपों के अतिरिक्त, कुछ अन्य मध्यवर्ती रूप और हैं जोकि विभिन्न राजनीतिक शासनों के लक्षणों के योग से बनते हैं, अथवा

एक रूप से दूसरे रूप में संक्रमण की स्थिति को व्यक्त करते हैं।

राजनीतिक व्यवस्था के तत्वों के रूप में राज्य एवं उसके तंत्र की भूमिका के संबंध में जो प्रश्न उठता है वह यह कि समकालीन बूर्ज्वा समाज में राज्य की सापेक्ष स्वायत्तता की मात्रा व सीमा क्या है। मार्क्स एवं एंगेल्स ने विभिन्न दृष्टिकोणों से राज्य की स्वायत्तता के प्रश्न पर विचार किया था। उन्होंने राज्य तथा उसके तंत्र का समाज से अंतर तो स्पष्ट किया ही, यह भी निर्दिष्ट किया कि वह समाज के सेवक से समाज के स्वामी में परिवर्तित हो गया। जैसे-जैसे राज्य तंत्र तथा उसके सहायक अंग (जेल आदि) विकसित होते हैं तथा जैसे-जैसे राज्य की सत्ता में वृद्धि होती है वैसे ही राज्य में समाज से ऊपर उठने तथा समाज को अपने अधीन करने की प्रवृत्ति व्यक्त होने लगती है।

मार्क्स एवं एंगेल्स ने राज्य के दायित्वों एवं प्रकार्यों के निरंतर विस्तार में इसकी सापेक्ष स्वायत्तता की वृद्धि का कारण खोजा। समाज कुछ सामान्य प्रकार्यों को जन्म देता है जिनके बिना यह आगे नहीं बढ़ सकता। इन प्रकार्यों के लिए निर्दिष्ट व्यक्ति समाज के अंदर श्रम-विभाजन का एक नया क्षेत्र बना लेते हैं। वे लोग अधिकृत हितों के अतिरिक्त विशिष्ट हित अर्जित कर लेते हैं तथा स्वायत्त बन जाते हैं। इसी तरह राज्य का जन्म होता है। मार्क्स एवं एंगेल्स ने राज्य में न केवल वर्गीय दमन के प्रकार्य देखे, बल्कि स्वयं समाज की आवश्यकताओं व हितों से जुड़े दायित्व भी देखे।

हमारे समय में राज्य एवं उसका तंत्र किस सीमा तक स्वायत्त है? इसमें कोई संदेह नहीं कि समाज के संदर्भ में साम्राज्यवादी राज्य की स्वायत्तता बेहद बढ़ी है। समकालीन राज्य की आर्थिक, राजनीतिक एवं विचारधारात्मक शक्ति का विकास, इसके सामाजिक प्रकार्यों का विस्तार, विश्व राजनीति का इसके प्रकार्यों पर बढ़ा हुआ प्रभाव तथा अन्य विविध कारक इसे प्रमाणित करते हैं।

भिन्न राजनीतिक शासन व्यवस्थाओं में राज्य की भूमिका अलग-अलग रूपों में व्यक्त होती है : फ़ासिस्ट राज्य में समाज की दल एवं राज्य तंत्र के अधीनता से लेकर साम्राज्यवादी राज्य में अर्थव्यवस्था के नियमन तथा संसदीय शासन के अंतर्गत सामाजिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को व्यापक रूप से प्रभावित करने तक।

आधुनिक पूंजीवादी राज्य के प्रकार्यों एवं दायित्वों का विस्तार वस्तुगत कारकों—उत्पादन क्षमता में वृद्धि, सामाजिक जीवन की बढ़ती जटिलता, राजकीय-इजारेदार पूंजीवाद का विकास—से ही उत्पन्न नहीं हुआ है, बूर्ज्वा समाज की वर्गीय प्रकृति में भी इसके कारण निहित हैं।

आधुनिक जीवन ने यह सिद्ध कर दिया है कि विदेशी भूमि पर कब्जा करने तथा मातृभूमि की रक्षा करने तक ही राज्य के प्रकार्य सीमित नहीं रह सकते।

युत, वैदेशिक प्रकार्यों में विविध कार्यवाहियां सम्मिलित हैं जिनका संबंध ाजवादी देशों तथा विकासशील देशों के साथ संबंधों के विकास से जुड़े हुए थिक, राजनीतिक एवं विचारधारात्मक लक्ष्यों से, तथा पूंजीवादी दुनिया के ं के अंतर्विरोधों की समाप्ति से है।[3]

समकालीन बूर्ज्वा राज्य के घरेलू प्रकार्यों में भी वृद्धि हुई है जो सामान्य नियम-ता की अभिव्यक्ति है : सामाजिक जीवन के समस्त क्षेत्रों तथा व्यक्तिगत न के अधिकांश क्षेत्रों में राज्य द्वारा सक्रिय हस्तक्षेप में वृद्धि तथा राज्य-तंत्र माज से निरंतर बढ़ता हुआ अलगाव इस प्रवृत्ति के आधार हैं। आर्थिक न के प्रकार्य के साथ सामाजिक जीवन में हस्तक्षेप का प्रकार्य भी जुड़ गया ह वर्ग-विरोध कम करने, श्रम एवं पूंजी के संबंधों में पंच की भूमिका निभाने सामाजिक संबंधों के क्षेत्र में क़ानून बनाने के प्रयासों से जुड़ा हुआ है। जिक प्रकार्यों में वृद्धि अपने आप में, सर्वहारा तथा अन्य कामगार जनता के ारों एवं स्वतंत्रता के लिए वर्ग-संघर्ष (समाजवादी राज्यों की सामाजिक ति द्वारा उत्प्रेरित) की बूर्ज्वा राज्य द्वारा जवाबी कार्यवाही है।

मकालीन बूर्ज्वा राज्य का क्रिया-व्यापार निम्नलिखित दिशाओं में विक- ो रहा है :

. पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली, पूंजीवादी संपत्ति, संपूर्ण आर्थिक-सामाजिक संरचना तथा बूर्ज्वा राज्य के कानूनों एवं व्यवस्था की सुरक्षा।

. अर्थव्यवस्था का नियमन तथा एकाधिकार पूंजीवाद के पक्ष में उत्पादक शक्तियों का विकास।

. पूंजीपतियों एवं श्रमिकों के सामाजिक संबंधों में, सामाजिक विधि निर्माण के विस्तार, पंच फैसलों तथा अंतर्विरोधों को कम करने के अन्य ऐसे ही उपायों के माध्यम से तथा पूंजीवादी व्यवस्था को बनाये रखने के लिए, हस्तक्षेप।

समस्त आबादी को बूर्ज्वा विचारधारा एवं संस्कृति के प्रवाह में लाने के उद्देश्य से सामाजिक प्रभुत्व की संस्थाओं, जन-संचार माध्यमों (मास मीडिया)—प्रेस, रेडियो, दूरदर्शन, सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक प्रति-ष्ठानों—को प्रभावित करना।

अंतरराष्ट्रीय क्षेत्र में राज्य के आर्थिक एवं राजनीतिक हितों की रक्षा तथा अन्य राज्यों के साथ सहयोग संगठित करना।

---

[3] ० एन० इनोजेम्त्सेव : न्यू डिवेलपमेंट्स इन कॉन्ट्रैडिक्शन, मास्को, 1972, कार्ल० मार्क्स · लेनिन, द रिवोल्यूशन एंड अवर टाइम, मास्को, 1967, वी० वी. ... : वर्ल्ड रिवोल्यूशनरी प्रोसेस टुडे, मास्को, 1970 तथा ... एंड पार्टिसिपेशन इन डिवेलप्ड कैपिटलिस्ट कंट्रीज, मास्को, 1971।

6. साम्राज्यवाद विरोधी शक्तियों के साथ विचारधारात्मक-राज
आर्थिक एवं सैनिक संघर्ष।

समकालीन बूर्ज्वा राज्य के प्रकार्यों के भारी विस्तार का परिणाम
शाही का अकल्पित विकास है। इसने एक भीमकाय तंत्र का रूप ले लि
जिसके स्वयं के पदानुक्रम, व्यवहार के मानदंड, अनुशासन एवं विशेषा
हैं।

प्रश्न यह उठता है कि हम बूर्ज्वा राज्य की, समाज के संदर्भ में ही नहीं
शासक वर्गों के संदर्भ में भी, अंतिम विश्लेषण में वह जिनका हित साधन
है, सापेक्ष स्वायत्तता की किस सीमा तक चर्चा कर सकते हैं। इसका वि
विवेचन उपयुक्त ही होगा। समाज के अंदर श्रम की विशेषज्ञता को प्रति
करने वाले मानदंडों, नियमों एवं पूर्वाग्रहों की व्यवस्था द्वारा समाज से
किया गया राज्यतंत्र निर्विवाद रूप से स्वायत्तता एवं स्वतंत्रता की ओर झु
प्रदर्शित करता है।

विभिन्न कारक शासक वर्ग एवं राज्यतंत्र के संबंधों को मध्यस्थी बनाते
राज्य-एकाधिकारवादी पूंजीवाद का विकास, जिसके परिणामस्वरूप राज्य
आर्थिक प्रकार्यों का विस्तार होता है तथा एकाधिकारों का विरोध करने वाली
इनसे संघर्ष करने वाली वर्गीय शक्तियों का राज्य पर दबाव बढ़ता है, तथा
एवं इसकी अत्यंत विकसित अर्थव्यवस्था के संचालन तथा सामाजिक संघर्षों
जन-सक्रियता से संबद्ध समस्त प्रकार्यों की बढ़ती हुई जटिलता; तथा अंत
अंतर्राष्ट्रीय कारक—विशेषकर अंतर्राष्ट्रीय शक्ति संतुलन का समाजवा
जनतंत्र एवं शांति के पक्ष में झुकाव—भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। इन सबसे यह
निष्कर्ष निकलता है कि पूंजीवादी संरचना की रक्षा करते हुए भी राज्यतंत्र ए
सीमा तक स्वायत्तता अर्जित कर लेता है। इस स्थिति को मौजूदा राजनीति
सामाजिक संरचना की रक्षा के लिए 'राज्य के हाथों की मुक्ति' के रूप में भी
परिभाषित किया जा सकता है।

स्वायत्तता की ओर यह रुझान राज्य-तंत्र के आकार में निरंतर, आंशिक
रूप से अप्राधिक भी, वृद्धि में अभिव्यक्त होता है।* निर्णय लेने तथा नीति

---

* डी. मार्गरेट मार्टिनन ने अपने विद्वत्तापूर्ण [illegible] में "ग्लोरियस रिवल्यूशन, क्रांति का अनुष्ठान" में [illegible] तथा [illegible] रूप से यह सिद्ध किया है कि इंग्लैंड में [illegible] के प्रकार [illegible] का प्रयोजन की वास्तविक आवश्यकताओं से कोई संबंध नहीं है। उदा-हरण के लिए, [illegible] में 1911 में कर्मचारियों की संख्या 1661 (1911 में [illegible]) हो गयी, यद्यपि तब तक इंग्लैंड अपने अधिकांश उपनिवेश खो चुका था।

निर्धारण की अतिशय जटिल प्रक्रियाओं मे भी यह व्यक्त होता है।*

इसका यह अर्थ कदापि नही है कि बूर्ज्वा समाज मे नौकरशाही मध्यवर्ती शक्ति मे परिवर्तित हो रही है। किन्ही भी परिस्थितियो मे यह बूर्ज्वा समाज के आर्थिक एवं सामाजिक-राजनीतिक सरचना की रक्षा की ओर प्रवृत्त होती है।

मार्क्स एव एंगेल्स की मान्यता थी किन्ही खास ऐतिहासिक स्थितियों मे राज्य विरोधी वर्गों के मध्य युक्ति कौशल का प्रयोग करके कमाबेश स्वायत्त शक्ति के रूप मे उभर सकता है। इस प्रकार की स्थितियों के विश्लेषण से यह पता चलता है कि निम्नलिखित स्थितियो मे ऐसा होना सभव है : (1) अत्यत अविकसित वर्गीय एव राज्य सपत्ति के सबधों की स्थिति मे, खासकर यदि वहा प्रबल राष्ट्रीय आंदोलन हो (बिस्मार्क के काल का जर्मन साम्राज्य); (2) तीव्र वर्ग सघर्ष के काल में (नेपोलियन तृतीय के साम्राज्य के दौरान); (3) अपना सामाजिक आधार खो चुकने की स्थिति से उत्पन्न जीर्ण सत्ता-सकट की स्थिति मे (स्टोलिपिन विद्रोह के दौरान रूसी राजतंत्र); (4) तेजी से कमजोर पडती बूर्ज्वा सत्ता, जब श्रमिक वर्ग का बूर्ज्वा सरकार के समानांतर वास्तविक सत्ता उपयोग पर अधिकार हो, की स्थिति मे (केरेंस्की की अस्थायी सरकार)। परिणामस्वरूप, सैनिक—नौकरशाह तंत्र के रूप मे राज्य की स्वायत्तता, निरपवाद रूप से, असामान्य ऐतिहासिक परिस्थितियों से जुड़ी हुई है तथा यह सक्रमण की स्थितियो मे—संकट जिनका लक्षण होता है, अक्सर—व्यक्त होती है।

क्या वर्तमान मे ऐसी स्थितिया संभव है ? अनुभव बताता है कि यह सभव है। फासिस्ट जर्मनी का सैनिक नौकरशाह तंत्र, जो इजारेदार पूजी के सर्वाधिक आक्रामक एवं भयावह हितों को प्रतिबिंबित करता था, समूचे समाज पर सर्वसत्तावादी आधिपत्य की शक्ति भी था—विभिन्न वर्गों एवं सामाजिक समहों के बीच तिकड़म का प्रयोग करते हुए। इससे यह भी पता चलता है कि न केवल मध्यवर्ग मे बल्कि श्रमिक वर्ग मे भी नाज़ीवाद का सामाजिक आधार कैसे विस्तार पा गया।

जर्मनी मे जैसे-जैसे फासिस्ट सरकार मजबूत हुई, विपक्षी तत्त्वो का दमन

---

* राजनीति के अमरीकी अध्येताओं की मान्यता है कि सयुक्त राज्य में राजनीतिक चरित्र वाले कदम उठाने के लिए इन सबकी स्वीकृति आवश्यक है : (1) विभिन्न सरकारी विभागो के वरिष्ठ अधिकारियों की जोकि सबधित प्रश्न से जुड़े हुए हैं; (2) सबधित क्षेत्र से जुड़ी हुई प्रतिनिधि सभा की समिति की; (3) प्रतिनिधि सभा की नियम समिति का; (4) प्रतिनिधि सभा की, (5) ससद की, (6) राष्ट्रपति की (अथवा दोनो सदनो की दो-तिहाई बहुमत की; (7) सर्वोच्च न्यायालय की। निर्णय लेने की प्रक्रिया की यह जटिलता, जिसका प्रच्छन्न उद्देश्य नये प्रयोगो को अवरुद्ध करके यथास्थिति बनाये रखना होता है, नीति निर्धारण पर राज्य-तत्र के एकाधिकार की भी द्योतक है।

6. साम्राज्यवाद विरोधी शक्तियों के साथ विचारधारात्मक-
आर्थिक एवं सैनिक संघर्ष।

समकालीन बूर्ज्वा राज्य के प्रकार्यों के भारी विस्तार का परि
शाही का अकल्पित विकास है। इसने एक भीमकाय तंत्र का रूप
जिसके स्वयं के पदानुक्रम, व्यवहार के मानदंड, अनुशासन एवं वि
हैं।

प्रश्न यह उठता है कि हम बूर्ज्वा राज्य की, समाज के संदर्भ में ही
शासक वर्गों के संदर्भ में भी, अंतिम विश्लेषण में वह जिनका हित सा
है, सापेक्ष स्वायत्तता की किस सीमा तक चर्चा कर सकते हैं। इस
विवेचन उपयुक्त ही होगा। समाज के अंदर श्रम की विशेषज्ञता को
करने वाले मानदंडों, नियमों एवं पूर्वाग्रहों की व्यवस्था द्वारा समा
किया गया राज्यतंत्र निर्विवाद रूप से स्वायत्तता एवं स्वतंत्रता की अं
प्रदर्शित करता है।

विभिन्न कारक शासक वर्ग एवं राज्यतंत्र के संबंधों को मध्यस्थी
राज्य-एकाधिकारवादी पूंजीवाद का विकास, जिसके परिणामस्वरू
आर्थिक प्रकार्यों का विस्तार होता है तथा एकाधिकारों का विरोध करने
इनसे संघर्ष करने वाली वर्गीय शक्तियों का राज्य पर दबाव बढ़ता है
एवं इसकी अत्यंत विकसित अर्थव्यवस्था के संचालन तथा सामाजिक
जन-सक्रियता से संबद्ध समस्त प्रकार्यों की बढ़ती हुई जटिलता; तथ
अंतरराष्ट्रीय कारक—विशेषकर अंतरराष्ट्रीय शक्ति संतुलन का स
जनतंत्र एवं शांति के पक्ष में झुकाव—भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। इस स
निष्कर्ष निकलता है कि पूंजीवादी संरचना की रक्षा करते हुए भी राज्य
सीमा तक स्वायत्तता अर्जित कर लेता है। इस स्थिति को मौजूदा रा
सामाजिक संरचना की रक्षा के लिए 'राज्य के हाथों की मुक्ति' के रू
परिभाषित किया जा सकता है।

स्वायत्तता की ओर यह रुझान राज्य-तंत्र के आकार में निरंतर,
रूप से अतार्किक भी, वृद्धि में अभिव्यक्त होता है।* निर्णय लेने त

* सी. नार्थकोट पार्किंसन ने अपने विद्वत्तापूर्ण पैंफलेट में "पार्किंसन नियम, प्र
अनुष्ठान" में स्पष्टतया तथा तार्किक रूप से यह सिद्ध किया है कि इंग्लैंड में नौ
के प्रचंड उठान का प्रशासन की वास्तविक आवश्यकताओं से कोई संबंध नहीं है
हरण के लिए, उपनिवेश कार्यालय में 1954 में कर्मचारियों की संख्या 1661 (

निर्धारण की अतिशय जटिल प्रक्रियाओं में भी यह व्यक्त होता है।*

इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि बूर्ज्वा समाज में नौकरशाही मध्यवर्ती शक्ति में परिवर्तित हो रही है। किन्हीं भी परिस्थितियों में यह बूर्ज्वा समाज के आर्थिक एवं सामाजिक-राजनीतिक सरचना की रक्षा की ओर प्रवृत्त होती है।

मार्क्स एवं एंगेल्स की मान्यता थी किन्हीं खास ऐतिहासिक स्थितियों में राज्य विरोधी वर्गों के मध्य युक्ति कौशल का प्रयोग करके कमोवेश स्वायत्त शक्ति के रूप में उभर सकता है। इस प्रकार की स्थितियों के विश्लेषण से यह पता चलता है कि निम्नलिखित स्थितियों में ऐसा होना संभव है: (1) अत्यंत अविकसित वर्गीय एवं राज्य संपत्ति के संबंधों की स्थिति में, खासकर यदि वहां प्रबल राष्ट्रीय आंदोलन हो (बिस्मार्क के काल का जर्मन साम्राज्य); (2) तीव्र वर्ग संघर्ष के काल में (नेपोलियन तृतीय के साम्राज्य के दौरान); (3) अपना सामाजिक आधार खो चुकने की स्थिति से उत्पन्न जीर्ण सत्ता-संकट की स्थिति में (स्टोलिपिन विद्रोह के दौरान रूसी राजतंत्र); (4) तेज़ी से कमज़ोर पड़ती बूर्ज्वा सत्ता, जब श्रमिक वर्ग का बूर्ज्वा सरकार के समानांतर वास्तविक सत्ता उपयोग पर अधिकार हो, की स्थिति में (केरेंस्की की अस्थायी सरकार)। परिणामस्वरूप, सैनिक—नौकरशाह तंत्र के रूप में राज्य की स्वायत्तता, निरपवाद रूप से, असामान्य ऐतिहासिक परिस्थितियों से जुड़ी हुई है तथा यह संक्रमण की स्थितियों में—संकट जिनका लक्षण होता है, अक्सर—व्यक्त होती है।

क्या वर्तमान में ऐसी स्थितियां संभव हैं? अनुभव बताता है कि यह संभव है। फ़ासिस्ट जर्मनी का सैनिक नौकरशाह तंत्र, जो इजारेदार पूंजी के सर्वाधिक आक्रामक एवं भयावह हितों को प्रतिबिंबित करता था, समूचे समाज पर सर्व-सत्तावादी आधिपत्य की शक्ति भी था—विभिन्न वर्गों एवं सामाजिक समूहों के बीच तिकड़म का प्रयोग करते हुए। इससे यह भी पता चलता है कि न केवल मध्यवर्ग में बल्कि श्रमिक वर्ग में भी नाज़ीवाद का सामाजिक आधार कैसे विस्तार पा गया।

जर्मनी में जैसे-जैसे फ़ासिस्ट सरकार मज़बूत हुई, विपक्षी तत्वों का दमन

* राजनीति के अमरीकी अर्थशास्त्रियों की मान्यता है कि संयुक्त राज्य में राजनीतिक चरित्र वाले कदम उठाने के लिए इन सबकी स्वीकृति आवश्यक है: (1) विभिन्न सरकारी विभागों के वरिष्ठ अधिकारियों की जो कि संबंधित प्रश्न से जुड़े हुए हैं, (2) संबंधित क्षेत्र से जुड़ी हुई प्रतिनिधि सभा की समिति की; (3) प्रतिनिधि सभा की नियम समिति का, (4) प्रतिनिधि सभा की; (5) संसद की, (6) राष्ट्रपति की (अथवा दोनों सदनों की दो-तिहाई बहुमत की; (7) सर्वोच्च न्यायालय की। निर्णय लेने की प्रक्रिया की यह कल्पना, जिसका प्रच्छन्न उद्देश्य नये प्रयोगों को अवरुद्ध करके यथास्थिति बनाये रखना होता है, [illegible] है।

हुआ, दलीय तंत्र ने राज्य-तंत्र पर वर्चस्व बनाया, हिटलर की व्यक्तिगत तानाशाही पुख्ता हुई, वैसे-वैसे दल, राज्य एवं सैनिक सत्ता तंत्र की स्वायत्तता विकसित हुई। यही कारण था कि एकाधिकारवादी पूंजी, जिसने कि फ़ासिस्ट दैत्य को बोतल से बाहर निकाला था, उसे वापस बोतल में ठूसने में अक्षम थी। हिटलर को हटाने की उसमें सामर्थ्य नहीं थी हालांकि हिटलर का सैनिक दिवालियापन जगजाहिर हो चुका था। फासिस्ट जर्मनी के नौकरशाह-तंत्र की बढ़ी हुई स्वायत्तता शासक वर्गों—जो संघर्ष की संसदीय पद्धतियों में जनता के क्रान्तिकारी आंदोलन का प्रतिरोध करने में असमर्थ थे—के गंभीर संकट से जुड़ी हुई थी। यह तथ्य बेहद महत्त्वपूर्ण था कि हिटलरवाद को प्रथम विश्व युद्ध में जर्मनी की पराजय के परिणामों से उपजे की राष्ट्रीय उत्कंठा का दोहन करने का अवसर मिल गया।

फासिस्ट जर्मनी का अनुभव यह प्रदर्शित करता है कि इजारेदार बूर्ज्वा वर्ग द्वारा सैनिक-तानाशाही तंत्र को असाधारण शक्ति प्रदत्त किया जाना संकट को कम नहीं करता बल्कि इसके विपरीत उसे गहराता ही है; यह अलग बात है कि परिस्थिति विशेष में सर्वहारा क्रांति के आसन्न ख़तरे से इजारेदार बूर्ज्वावर्ग ऐसा करने में अपनी मुक्ति देखता हो। फ़ासिज्म का पतन न केवल अन्य राष्ट्रों के लिए बल्कि साम्राज्यवादी बूर्ज्वा वर्ग के लिए भी एक वस्तुगत सबक था।

जनरल द गाल का शासन स्वायत्त राजसत्ता की ओर अतिशय झुकाव का एक अन्य उदाहरण है। इस शासन का उदय फ्रांसीसी समाज एवं राज्य की संकटग्रस्तता के काल में हुआ; यह संकट बूर्ज्वा सत्ता को उखाड़ फेंकने की चुनौतियों से उत्पन्न नहीं हुआ था बल्कि आसन्न समस्याओं से जूझ पाने की सत्ता की असमर्थता एवं अक्षमता से उत्पन्न हुआ था (अल्जीरिया युद्ध, आर्थिक नीति, आदि)। द गाल शासन न केवल वामपंथी सरकार का विकल्प था, बल्कि ओ० ए० एस० (सक्रिय सैन्य सेवा) तथा पुजादी आंदोलन से भी मुक्ति था। इन परिस्थितियों में आबादी के व्यापक स्तरों के समक्ष राष्ट्रनायक के रूप में स्वयं की तस्वीर उभारने में द गाल सफल हुए। इसके पश्चात् उन्होंने अल्जीरिया संकट पर विजय प्राप्त करने के लिए यथार्थपरक कदम उठाकर, अमरीका पर फ्रांस की निर्भरता कम करके, तथा समाजवादी राज्यों से फ्रांस के संबंध सुधार कर, अपनी इस छवि को और अधिक पुख्ता किया। द गाल ने इस तरह अंतरराष्ट्रीय समस्याओं के समाधान की दिशा में समुचित प्रगति करके अपने नेतृत्व का मार्ग प्रशस्त किया।

राजसत्ता की स्वतन्त्रता के विशिष्ट उदाहरणों के रूप में फ्रांस में लोकप्रिय मोर्चा सरकार (1936) तथा 1945 व 47 के मध्य फ्रांस व इटली की मिली-जुली जनतंत्रीय सरकारों को लिया जा सकता है। इस काल में राजसत्ता, जो

वर्ग संघर्ष से प्रभावित थी, श्रमिक वर्ग एवं अन्य कामगर जनता के हितो पर गौर करने, व उनका ध्यान रखने मे समर्थ थी। उदाहरण के लिए, युद्ध के तुरत बाद इटली मे स्वीकृत संविधान मे, साम्यवादी प्रभाव के परिणामस्वरूप, श्रमिक वर्ग की बहुतेरी मागें—काम के अधिकार तथा जनता के हित मे बूर्ज्वा समाज के आर्थिक ढाचे मे श्रमिक सुधार के विचार जिसमे सम्मिलित थे—शामिल की गयी थी।

हालांकि इन परिस्थितियो मे भी राजसत्ता का बूर्ज्वा चरित्र बना हुआ था। यह दूसरी बात है कि वह बूर्ज्वा तथा सर्वहारा शक्तियो के वास्तविक परस्पर सबधो एव कामगर जनता के क्रांतिकारी सक्रियतावाद के उभार पर गौर करने को बाध्य थी। लोकप्रिय मोर्चा सरकार तथा द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् फ्रांस, इटली एव अन्य पश्चिमी यूरोपीय देशो की मिली-जुली जनतंत्रीय सरकारो के अनुभव बूर्ज्वा राजसत्ता द्वारा कतिपय महत्त्वपूर्ण सामाजिक-आर्थिक सुधार करने की सभावनाओं एवं सीमाओं के उपयोगी तथा दिलचस्प उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

बूर्ज्वा राज्य-नौकरशाही की बढ़ी हुई सत्ता नियमतः श्रमिक वर्ग एव अन्य कामगर जनता के हितों के विपरीत होती है : इस तरह की स्वायत्तता जनतंत्रीय अधिकारो, स्वतंत्रताओं एव संस्थाओं की कटौती से जुड़ी होने के कारण व्यक्तिसत्तावाद, सर्वसत्तावाद एव फासिज्म से जुड़ी होती है।

ऐसी सर्वाधिक प्रभावी पद्धतियो की युक्ति करने के लिए—जिनके माध्यम से कामगर जनता राज्य तत्र के तथा समूची राजनीतिक क्रिया व्यापार को प्रभावित कर सके—इस तत्र की प्रत्येक कड़ी तथा राजनीतिक शक्तियो द्वारा इसे प्रभावित करने की क्षमता की मात्रा का अध्ययन आवश्यक है।

मार्क्सवादी-लेनिनवादी समाजशास्त्र ने बहुत पहले एक मात्र राजनीतिक व्यक्तित्व से सम्पन्न अविभक्त इकाई के रूप मे राज्यतत्र की अवधारणाओं का खडन कर दिया था। समूचे बूर्ज्वा समाज की भाति, शासक वर्गों का हित साधन करने वाला राज्य-तत्र, विभिन्न मात्राओं मे विभिन्न राजनीतिक शक्तियों द्वारा प्रभावित विभिन्न स्तरों मे निर्मित होता है।

किन्ही खास उद्देश्यों के लिए राज्य-तंत्र की सरचनाओ को उर्ध्वाधर दृष्टि (इसके पदानुक्रमी सगठनों, जो पद एव पारिश्रमिक मे प्रतिबिंबित होते हैं, के आधार पर) तथा क्षैतिज दृष्टि (राज्य-तत्र के विशिष्ट अगों द्वारा किये गये सरचनात्मक प्रकार्यों के आधार पर) से देखा जा सकता है। राज्य-तंत्र के समाजशास्त्रीय विश्लेषण के लिए, इसके सदस्यों के सामाजिक उद्भव, उनके शिक्षास्तर, जीवन शैली व सामाजिक मनोविज्ञान का अध्ययन विशेष महत्त्व रखता है। उन पद्धतियों का—जिनसे कर्मचर-वर्ग तत्र मे तरक्की पाते हैं—नौकरशाहों

की राजनीतिक एवं विचारधारात्मक निष्ठाओं तथा समाज के विभिन्न स्तरों के साथ तंत्र के संबंधों का विश्लेषण किया जाना भी आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है।

तालिका 1 व 2 में संयुक्त राज्य एवं फ्रांस में समूचे राज्य-तंत्र व अलग-अलग संस्थाओं के विकास के आंकड़े दर्शाये गये हैं।

इन आंकड़ों में कुछेक सामान्य आकृतियां उभरती हैं। सरकारी तंत्र में नौकरशाहों एवं कर्मकवर्ग की संख्या में तीव्र एवं निरंतर वृद्धि का उल्लेख हम पहले ही कर चुके हैं। जाहिर है, यह वृद्धि राजकीय इजारेदार पूंजीवाद के विकास, राज्य के सामाजिक प्रकार्यों के विस्तार, समाज की, विशेषकर आधुनिक वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक क्रांति के दौर में समस्याओं की बढ़ती हुई जटिलता से जुड़ी हुई है। लेकिन यही सब कुछ नहीं है। आइये, संयुक्त राज्य से संबंधित सामग्री को देखें। रक्षा विभाग एवं तंत्र के कार्यकारी अंगों की वृद्धि तेजी से हो रही है। युद्धपूर्व काल की तुलना में, रक्षाविभाग के कर्मचारियों की संख्या चौगुनी हो गयी है। कार्यकारी अंगों एवं संघीय नौकरशाही में कार्यरत नौकर-

तालिका . 1

संयुक्त राज्य अमरीका की सरकार में रोजगार विभाजन

(हजारों में)*

वर्ष	समस्त कर्मचारी	संघीय सरकार	कार्यकारी	रक्षा विभाग	डाक विभाग	अन्य संस्थाएं	विधायी	न्यायिक
1919	2,676	—	—	—	—	—	—	—
1930	3,148	526	—	—	—	—	—	—
1940	4,202	996	997	251	326	400	17	0.2
1950	6,026	1,928	1,901.3	736.6	512.5	652.1	23.1	3.7
1960	8,353	2,270	2,242.6	940.6	586.7	715.3	22.6	4.9
1965	10,091	2,378	2,346.7	938.5	614.2	793 9	25.4	5.9
1968 फरवरी	12,136	2,697	2,662 6	1,091.5	707.1	864	27.6	6 5

* संयुक्त राज्य (1909-1968) की रोजगार एवं आय संबंधी सांख्यिकी, वाशिंगटन, 1968, पृष्ठ संख्या 818-22 से उद्धृत।

शाही की संख्या कई गुना बढ़ गयी है। रक्षा विभाग में हुई वृद्धि बढ़ी हुई सैनिक प्रवृत्तियों की ओर संकेत करती है जबकि दूसरे अंगों से संबंधित वृद्धि का औचित्य राज्य के बढ़े हुए आर्थिक क्रियाव्यापार का परिणाम है। ऐसा प्रतीत होता है कि राज्य-तंत्र में रोजगार की गतिशीलता सैन्यीकरण एवं नौकर-शाही करण—दोनों को ही प्रवृत्तियों को अभिव्यक्त करती है।

इसके विपरीत, ग्रेट ब्रिटेन में, जहां युद्धोत्तर काल में सैनिक प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति उतने व्यापक पैमाने पर नहीं हुई जितनी कि संयुक्त राज्य में, सेना विभाग में कर्मचारियों की संख्या में बढ़ोतरी एकदम धीमी रही है।

राज्य-तंत्र का क्रियात्मक विभेदीकरण काफी रोचक है। इसे निम्नलिखित बुनियादी समूहों में विभक्त किया जा सकता है।

1. विभिन्न प्रकार के आर्थिक विभाग। फ्रांस में इनमें कृषि मंत्रालय, निर्माण एवं आवास मंत्रालय, सहकारिता, आर्थिक मामलों, वित्त एवं उद्योग मंत्रालयों के अतिरिक्त कुछ अन्य मंत्रालय भी सम्मिलित हैं।
2. वित्तीय विभाग।
3. विभिन्न किस्म की सामाजिक सेवाएं—शिक्षा, विज्ञान, स्वास्थ्य, डाक, एवं अन्य।
4. वे विभाग जिनका तात्कालिक प्रकार्य दमन करना है (आंतरिक सुरक्षा एवं रक्षा विभाग)।
5. प्रचार एवं सूचना विभाग।
6. वैदेशिक मामलों से संबंधित विभाग।

जैसाकि तालिकाओं से स्पष्ट है, अर्थशास्त्र एवं संस्कृति के क्षेत्र में सबसे बड़ी संख्या में अधिकारियों को नियुक्ति मिली हुई है। स्वाभाविक है कि ये क्षेत्र भी, सामान्यतया एवं कुल मिलाकर, शासक वर्ग का हित साधन करते हैं। किंतु अपने क्रियात्मक चरित्र में ये, एंगेल्स के शब्दों में, श्रम के विभेदीकरण को प्रतिबिंबित करते हैं। इन विभागों के कर्मचारी प्रभुत्वशील राजनीतिक शक्तियों की इच्छा को क्रियान्वित करते हुए भी—इनके क्रियाव्यापार की प्रकृति के अनुरूप—वस्तुगत सामाजिक आवश्यकताओं की पूरी तरह अवहेलना नहीं कर सकते। कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि अर्थव्यवस्था के प्रशासन में संलग्न अधिकारी बहुधा अर्थव्यवस्था के सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार तथा सामाजिक विधि निर्माण को समर्थन देते हैं। जन स्वास्थ्य, शिक्षा एवं संस्कृति के क्षेत्र में नियुक्त विशेषज्ञों पर भी यह बात लागू होती है।

आइये, अब राज्य-तंत्र के क्षैतिज विभेदीकरण पर नजर डालें। कुछ हद तक यह अनगढ़ लग सकता है, फिर भी हम इसे उच्च, मध्यम एवं निचले स्तरों

तालिका : 2

फ्रांस के राज-तंत्र की कुछ शाखाओं में रोज़गार

(हज़ारों में)

मंत्रालय	1914	1941	1952	1956	1962	1967
सांस्कृतिक मामलों का मंत्रालय	—	—	—	—	4.7	5.2
वैदेशिक मामलों का मंत्रालय	1.1	0.8	5.8	7.8	6 0	9.1
कृषि एवं ग्रामीण विकास मंत्रालय	8.4	10 0	16.7	18.2	25.4	34.9
भूतपूर्व सैनिक एवं युद्ध पीड़ितों के लिए मंत्रालय	—	6.9	9.6	9.8	8.4	7.7
निर्माण एवं आवासन मंत्रालय	—	—	103 4	101.4	97.0	93.3
सहकारिता मंत्रालय	—	—	—	—	1.7	3 0
शिक्षा मंत्रालय	50.1	205.1	266.9	318.1	473.0	595.2
आर्थिक मामलों का तथा वित्त मंत्रालय	—	—	129.6	134.9	142.9	154.5
उद्योग, व्यापार एवं दस्तकारी मंत्रालय	0.9	2.0	3.04	3.8	3.7	3.9
रेडियो एवं दूरदर्शन	—	2.4	4.7	6.4	11.3	13 2
गृह मंत्रालय	1.8	31.2	70.2	74.8	89.1	84.5
न्याय मंत्रालय	14.9	13.8	17.0	15.6	18.5	19.2
डाक एवं दूरसंचार मंत्रालय	122.8	198.6	193.5	208.7	253.0	206.9
सामाजिक सुरक्षा मंत्रालय	—	—	14.2	15.1	18.0	25.1
प्रधानमंत्री कार्यालय	—	—	8.1	9.5	17.0	17.1
क्षेत्रीय विकास मंत्रालय	1.3	0.9	7.9	3.4	2.9	3.7
अन्य मंत्रालय	96.0	138.4	28.2	—	—	—
समस्त नागरिक मंत्रालय	301.3	471.7	916.8	927.5	1173.1	1366.5
युद्ध मंत्रालय						

विभक्त कर सकते हैं। नीचे दी गयी तालिका इन समूहों के परस्पर संबंधों को दर्शाती है :

तालिका : 3

संयुक्त राज्य में (1960 में) राज्य-तंत्र की व्यावसायिक संरचना

(दस लाखों में)

विशेषज्ञ	श्रमिक	कार्यालय कर्मक	व्यावसायिक कर्मक	सेवा कर्मक
0.4	0.7	1.2	0.4	0.6

यह तालिका राज्य-तंत्र की समस्त शाखाओं का सार प्रस्तुत नहीं करती है, अतः पूरा चित्र भी प्रस्तुत नहीं करती। तो भी, ये आंकड़े संकेत अवश्य देते हैं।

सत्ता तंत्र का सर्वोच्च स्तर—विशेषज्ञों की श्रेणी में—इसका सबसे छोटा अंश है। मध्यम स्तर—जिसमें अधिकांश विशेषज्ञ तथा कुछेक सफेद-कालर कर्मक सम्मिलित हैं—में लगभग पांच लाख व्यक्ति आते हैं। निचले स्तर पर कर्मचारियों की संख्या लगभग तीस लाख है। राज्य-तंत्र का सर्वाधिक संख्या वाला यह स्तर, पूंजीवादी व्यवस्था का विरोध करने वाली राजनीतिक शक्तियों से कमोवेश प्रभावित सामाजिक परिवेश कहा जा सकता है। यह राज्य-तंत्र के एक हिस्से का, समाज के क्रांतिकारी रूपांतरण के लिए, उपयोग करने के अतिरिक्त अवसर प्रदान करता है।

कार्यकारी, विधायी एवं न्यायिक शक्तियां राज्य की उपव्यवस्थाएं हैं। विकास की विभिन्न अवस्थाओं में इनके परस्पर संबंधों में भी हेर-फेर होता रहता है। समकालीन राज्य-एकाधिकारवादी पूंजीवाद की राजनीतिक व्यवस्था (इसका संसदीय रूप सम्मिलित है) द्वारा कार्यकारी सत्ता के पक्ष में झुकाव इसकी विशिष्टता है।

संयुक्त राज्य में, जहां कि पारंपरिक रूप से कार्यकारी सत्ता के विशेषाधिकार राष्ट्रपति के हाथों में *केंद्रीभूत हैं, राष्ट्रपति की स्थिति में अकल्पनीय मज़*बूती आयी है। फ्रांस में पांचवें गणराज्य के संविधान, जिसने 1950 के दशक के गंभीर संकट का अंत किया, में भी यही प्रक्रिया प्रतिबिंबित हुई थी।

ग्रेट ब्रिटेन एवं पश्चिमी जर्मनी में—जहां स्थिर द्विदलीय अथवा उससे मिलती-जुलती प्रणालियां हैं—इस प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति भिन्न प्रकार से हुई है। इस तरह की व्यवस्था के अन्तर्गत, कार्यकारी सत्ता के गठन में दो रूप भेद दिखाई पड़ते हैं। यदि एक दल संसद में बहुमत प्राप्त कर लेता है तो वह अपनी

स्थिरता को बढ़ावा देती है। द गाल के नेतृत्व में फ्रांस एवं एडिनावर के नेतृत्व में पश्चिम जर्मनी के अनुभवों को बहुधा इस प्रस्थापना के समर्थन में पेश किया जाता है।

जाहिर है, किन्हीं विशेष परिस्थितियों में, सरकार को पूरी तरह स्वतंत्र छोड़ने के बड़े फ़ायदे हो सकते हैं। संकट काल में, युद्ध के दौरान, यह बात विशेष रूप से खरी उतरती है, किन्तु दूरगामी दृष्टि से, विधायी-नियंत्रण में कटौती सत्तातंत्र की बनावट की संकटग्रस्तता का लक्षण ही होती है।

तथापि, राजकीय-इजारेदार पूंजीवाद के अंतर्गत, जबकि राज्य-तंत्र अतिविस्तृत एवं अतिपुष्ट हो चुका है, संसद न तो पूर्ववर्ती-नेतृत्व प्रणाली का स्मृति-चिन्ह है और न सहज-भ्रमित लोगों को मूर्ख बनाने का छद्म है। इसके प्रकार्य बेहद महत्त्वपूर्ण होते हैं।

शासक वर्ग के लिए संसद राजनीतिक एवं नौकरशाह विशिष्ट वर्गों, जो निर्णय करने की स्वायत्तता के आकांक्षी होते हैं, पर नियंत्रण का एक प्रमुख रूप है। जैसाकि फ़ासिज़्म ने प्रदर्शित किया था, इस रूप की अवहेलना का परिणाम यह हो सकता है कि ये विशिष्ट वर्ग सहयोगी की भूमिका को त्याग कर तथा अपने स्वयं के हितों से संचालित होकर शासक वर्ग के हितों को ही भयानक आघात पहुंचाने लगें।

संसद सदा से एक ऐसा अखाड़ा रहा है जहां कि शासक वर्ग के विभिन्न समुदायों एवं गुटों के संबंध खुलकर सामने आते हैं तथा जो उनके सत्ता-संतुलन एवं हितों को सूक्ष्म रूप में व्यक्त करने के साथ-साथ उनके समझौतों को भी प्रकट करता है। शासक वर्ग के बढ़ते हुए विभेदीकरण, जो पूंजीवादी विकास की वर्तमान अवस्था का विशिष्ट लक्षण है, की दृष्टि से संसद की इस भूमिका के महत्त्व में वृद्धि हो रही है।

जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है, संसदवाद के संकट के गहराने के साथ-साथ, सैद्धांतिक प्रश्नों पर पर्दे के पीछे निर्णय करना प्रारंभ हो जाता है। बहरहाल, संसदीय क्षेत्र के पूर्ण लोप का परिणाम यह होता है कि शासक वर्ग के कुछेक गुट सत्ता-तंत्र से अपनी निकटता का दोहन करके, शासक वर्ग में अपनी स्थिति के अनुपात में, अधिक प्रभाव-शक्ति अर्जित कर लेते हैं। अतः शासक वर्ग का एक महत्त्वपूर्ण भाग संसदीय रूपों को सुरक्षित रखने में स्थायी रुचि प्रदर्शित करता है।

जनता को नियंत्रित करने की यंत्रविधि के संघटक तत्त्व के रूप में संसद की भूमिका और भी महत्त्वपूर्ण है। संसदीय बहसें राजनीतिक विरक्ति का माध्यम बनती हैं, जोकि प्रभु-वर्गों के हितों के पक्ष में है—इस दृष्टि से संसद एक ऐसा अस्त्र है जिसने शताब्दियों से अपनी उपयोगिता प्रमाणित कर रखी है। बूर्ज्वा

समद्रें वास्तविक निर्णय लेने के स्थान पर मात्र विचार-विमर्श एवं बहस की अनुमति देती हैं। ये जनता के दिमाग में राजनीतिक नेतृत्व में भागीदारी का भ्रम उत्पन्न करती है। एक ऐसे जन-समाज की परिकल्पना को सत्य मान कर जहाँ एक विस्तृत एवं व्यापक सामाजिक आधार के बिना सत्ता की कोई प्रणाली प्रभावशील न हो सके, शासक वर्गों के लिए यह और महत्त्वपूर्ण रूप है।

संसद के प्रभाव की अवमानना करने अथवा इसमें विश्वास कम करने का अपरिहार्य परिणाम ऐसी प्रक्रियाओं का प्रारंभ होता है जोकि संसदवाद की सीमाओं का अतिक्रमण कर जाती हैं। परिणामस्वरूप विरोध पक्ष का कार्यक्षेत्र संसद के बाहर आ जाता है। यही कारण है कि संसदीय व्यवस्था के बुर्ज्वा वर्ग (विशेषकर इसके प्रमुख तत्वों) को होने वाली असुविधाओं, तथा प्रभावशाली क्रांतिकारी सर्वहारा दलों के अस्तित्व में इस वर्ग के लिए व्यक्त चुनौतियों के बावजूद, यह व्यवस्था पूंजीवादी सत्ता की यंत्रविधि की महत्वपूर्ण कड़ी बनी रहती है।

विधायी अंगों की देख-रेख करने से संबंधित प्रकार्यों के न्यूनीकरण का एक परिणाम राज्य यंत्रविधि के क्रिया-व्यापार की प्रभावशीलता का ह्रास भी होता है। निचले स्तरों से आने वाले दबाव—चाहे वह दबाव पूर्णतया व्यक्त नहीं होता हो—पर घटी हुई निर्भरता के कारण व्यवस्था ऊपर से प्राप्त निर्देशों की अनुपालन कर्ता मात्र बनकर रह जाती है। इन निर्देशों के प्रति निष्ठा यंत्रविधि के क्रिया-व्यापार के मूल्यांकन की कसौटी बनती है। परिणामस्वरूप, नेतृत्व के स्थान पर गुलामी, फलोत्पादकता के स्थान पर नकली उत्साह तथा परिणामों के स्थान पर बेकार की डींग देखने को मिलती है। क्रमशः यंत्र की निरर्थकता एवं प्रभावहीनता उजागर होने लगती है।

इसका अर्थ है कि कार्यकारी सत्ता की बढोतरी एवं संसद की तुलना में नौकरशाही तंत्र को दी जाने वाली वरीयता (जो समकालीन विकसित पूंजीवाद का निहितार्थ है) पूंजीवाद के लिए गंभीर चुनौतियां प्रस्तुत करती है।

स्वाभाविक ही है कि पूंजीवादी समाज में इन प्रवृत्तियों के अनियंत्रित विकास को बाधित करने वाले कारक भी विद्यमान हैं। इन कारकों में प्रमुख है संगठित श्रमिकों का क्रांतिकारी एवं जनवादी आंदोलन। तथापि सामाजिक आवश्यकताओं एवं राजनीतिक प्रशासन यंत्र की असंगति इतनी तीक्ष्ण हो जाती है कि सत्ता यंत्र की सहज क्रिया-विधि लड़खड़ाने लगती है। ऐसी स्थितियों में, संरचना की गहराइयों में एक अवधि तक दबा-छुपा सामाजिक-राजनीतिक संकट उभर कर सतह पर आ जाता है।

राजनीतिक व्यवस्था की एक प्रमुख संस्था के रूप में दल उभरते हैं, जो एक-दूसरे से ि

य

अंतर्वस्तु एवं राजनीतिक लक्ष्य तथा इनसे निसृत होने वाली विचारधारा के आधार पर तथा उनके सामाजिक आधार एवं सामाजिक संबंधों, राजनीतिक व्यवस्था में उनके स्थान एवं भूमिका तथा उनकी संरचना, आंतरिक शासन एवं क्रिया-व्यापार की पद्धतियों के आधार पर एक-दूसरे से अलग होते हैं।

राजनीतिक जीवन में दलों की बदलती हुई भूमिकाओं को ध्यान में रखकर राजनीति के पश्चिमी अध्येता दल व्यवस्थाओं तथा दलीय प्रतिरूपों के अपने विश्लेषणों का आधार अक्सर सापेक्ष रूप से ग़ैर-अनिवार्य गुणधर्मों को बनाते हैं। यद्यपि वे राजनीतिक जीवन की गतिशीलता की समझ के लिए राजसत्ता की संरचना की तुलना में दलों को अधिक अर्थवान् कारक के रूप में देखते हैं, उनका सारा ध्यान दलों की आंतरिक संरचना पर केंद्रित होता है।

सामान्यतया उनके द्वारा प्रस्तुत वर्गीकरण बुनियादी दलीय संगठनों की संरचना की असमानताओं, उनकी सामान्य संरचना एवं सदस्यता के स्वरूप तथा दल के भीतर नेतृत्व वर्ग के चुनाव की पद्धति पर आधारित होता है। इससे वे दलों की चार श्रेणियां क़ायम करते हैं। पहली श्रेणी में विकेंद्रित दल—जिसका स्रोत 19वीं शताब्दी के दलीय समूहों को माना जाता है तथा आज भी पश्चिमी यूरोप एवं संयुक्त राज्य के रूढ़िवादी एवं उदार दलों के रूप में विद्यमान हैं—आते हैं। दूसरी श्रेणी में यूरोप के (महाद्वीपीय) समाजवादी दल आते हैं जोकि केंद्रीयतावादी तथा बहुजनीय दल हैं जिनके लिए, पहली श्रेणी के दलों की तुलना में, विचारधारात्मक सिद्धांत अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। तीसरी एवं चौथी श्रेणियों के दल एकदम केंद्रीयतावादी हैं तथा ये अपनी ऊर्ध्वपक्षीय संबंधों की व्यवस्था के कारण निचले स्तर के तत्त्वों के आपसी अलगाव को सुनिश्चित बनाते हुए कठोर, अर्ध-सैनिक अनुशासन की गारंटी भी करते हैं। बाद की दो श्रेणियों में फ़ासिस्ट एवं कम्युनिस्ट—दोनों—दलों को पटक दिया गया है। इसी से दलों के वर्गीकरण की आधारहीनता प्रमाणित हो जाती है।

मार्क्सवादी दृष्टि से दलों के स्वरूप निर्धारण की बुनियादी कसौटी उनका सामाजिक एवं वर्गीय सार तत्त्व होता है। यह कसौटी विचारधारा, कार्यक्रम एवं राजनीतिक लक्ष्यों से भी निर्मित होती है। इन कसौटियों का प्रयोग करके दलों की संरचना, उनके संघटन, एवं काम-काज के तरीक़ों का सार्थक अध्ययन किया जा सकता है। इस परिप्रेक्ष्य में दलों के सांगठनिक रूपों, नेतृत्व-चयन, दल के कर्त्ता-धर्त्ताओं की स्थिति, दलों की राजनीतिक एवं न्यायिक हैसियत आदि का विश्लेषण उनके वर्गीय लक्षणों के विश्लेषण को संपुष्ट भी करेगा तथा उसे गहराई भी प्रदान करेगा।

राजनीतिक दलों को उनके सार तत्त्व के आधार पर बूर्ज्वा, निम्न मध्य-वर्गीय, सर्वहारा एवं अर्ध-सर्वहारा की संज्ञा दी जा सकती है। विचारधारा एवं

राजनीतिक मतों की दृष्टि से उन्हें अति-दक्षिणपंथी (फ़ासिस्ट), रूढ़िवादी, बूर्ज्वा-उदारवादी, सामाजिक जनवादी, वामपंथी समाजवादी एवं साम्यवादी आदि में विभक्त किया जा सकता है। आन्तरिक संरचना दृष्टि से उन्हें केन्द्रीकृत, स्वेच्छाचारी, जनवादी आदि में श्रेणीबद्ध किया जा सकता है। उनके काम-काज तथा व्यवस्था में उनकी स्थिति की दृष्टि से उन्हें शासक अथवा विरोधी दल की संज्ञा दी जा सकती है। कसौटियों का यह समुच्चय विभिन्न दलीय संस्थाओं के सटीक एवं पूर्ण वर्णन—उनकी सामाजिक अन्तर्वस्तु, जो सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारक है, को नजरंदाज किये बिना—को संभव एवं सुगम बनाता है।

दल व्यवस्थाओं का निर्माण विभिन्न कारकों से निर्धारित होता है। बूर्ज्वा दुनिया में समाज की वर्गीय संरचना को पूरी तरह प्रतिबिंबित करने वाली दल-व्यवस्था नहीं होती। इसी तरह 'विशुद्ध' वर्गीय दल भी अपवाद मात्र होते हैं क्योंकि प्रत्येक दल अपने जनाधार को विस्तृत करने के प्रयास करता है, अपने विरोधी वर्गों के प्रतिनिधियों को आकर्षित करके भी। अतः दल व्यवस्थाएं न केवल आबादी की वर्गीय संरचनाओं द्वारा, बल्कि ऐतिहासिक परंपराओं, जनता की राजनीतिक संस्कृति, आबादी के राष्ट्रीय विन्यास, धार्मिक दृष्टिकोणों आदि द्वारा भी निर्धारित होती हैं। चुनाव प्रणाली का स्वरूप भी दल-व्यवस्था को प्रभावित करता है—समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली बहुदलीय प्रणाली के अनुकूल होती है जबकि मतदान के एक दौर में बहुमतीय प्रतिनिधित्व द्वि-दलीय प्रणाली से संबंधित होता है।

पूंजीवादी समाज की राजनीतिक शासन व्यवस्थाओं में दलों की भूमिका एक समान नहीं होती। फ़ासिस्ट शासन का अर्थ है राज्य के ऊपर उठे हुए अकेले फ़ासिस्ट दल का वर्चस्व, जोकि एकाधिकारवादी शक्तियों का प्रत्यक्ष एवं तात्कालिक अस्त्र होता है एवं इनके शासन के जनाधार को सुनिश्चित बनाता है। वस्तुतः अन्य दलों को राजनीतिक जीवन से बाहर कर दिया जाता है तथा क्रांतिकारी एवं विपक्षी दलों को भंग कर दिया जाता है तथा उन्हें यातना दी जाती है। राज्य को दल यंत्र के अधीन किया जाना, राज्यतंत्र एवं नाज़ी दल का मिश्रण एवं जीवन के समस्त क्षेत्रों में फ़ासिस्ट दल का हस्तक्षेप फ़ासिज़्म के विशिष्ट लक्षण हैं।

अर्द्ध-फ़ासिस्ट शासनों में भी फ़ासिस्ट अथवा अर्द्ध-फ़ासिस्ट दल अथवा सैनिक समूह—जोकि इजारेदार पूंजी के हितों को अभिव्यक्ति देते हैं—का ग़ैर संवैधानिक वर्चस्व कायम रहता है यद्यपि कुछ अन्य मरणासन्न राजनीतिक समूहों का अस्तित्व भी बना रहता है। इस शासन में दल-तंत्र आवश्यक रूप से न तो राज्य-तंत्र के ऊपर उठा होता है और न उसमें मिला हुआ। शासक वर्ग राज्य के अंगों के माध्यम से ही अपनी शक्ति का उपयोग कर पाने में सक्षम होते हैं।

एकाधिकारी शासन की विशिष्टता नेता का, जिसका उसे समर्थन देने वाले दल पर पूरा नियंत्रण होता है तथा जो इस दल के साथ अपनी सत्ता का जनाधार निर्मित करने के प्रयास करता है, वर्चस्व होता है तथा यह जनता से सीधे संवाद अथवा अन्य साधनो से कायम होता है। इस व्यवस्था मे विरोधी एवं क्रांतिकारी दलो समेत अन्य दल जीवित तो रहते हैं हालांकि संसदीय संस्थाओ के महत्त्व की अवमानना एवं चुनाव प्रणाली के रूपांतरण के कारण उनकी भूमिका एकदम नगण्य हो जाती है।

पूंजीवादी समाज मे दल-प्रणाली के स्वरूप को विभिन्न कारक निर्धारित करते हैं: बुनियादी सामाजिक समूहों मे वर्ग-चेतना की परिपक्वता, वर्गीय-शक्तियों के अंत संबंध, ऐतिहासिक परंपराएं, शासक वर्गों के अंत संघर्षों के रूप एवं पद्धतियां, एकाधिकार पूंजीवाद के शासन की विधियां आदि इनमे प्रमुख हैं। परिणामस्वरूप, दल प्रणाली मे वर्गों के अंतर्विरोधों के साथ-साथ वर्गों के भीतर स्पर्द्धात्मक संघर्षों एवं अंतर्विरोधों की भी अभिव्यक्ति देखने को मिलती है।

यहां दल-प्रणाली के विकास—जोकि उस सामान्य प्रक्रिया मे जुड़ा हुआ है जिसके माध्यम से पूंजीवादी समाज का सत्तायंत्र संशोधित होता है—पर गौर करना उपयुक्त होगा। यह प्रक्रिया काफी पहले, प्रथम विश्व युद्ध के तत्काल बाद मे, प्रारंभ हुई थी, जबकि यह स्पष्ट रूप से अनुभव किया गया था कि अबाधित एवं अमर्यादित स्पर्द्धा को अभिव्यक्त करने वाली समाज के राजनीतिक प्रशासन की पूर्ववर्ती प्रणाली बेअसर होने लगी थी। अर्थव्यवस्था के संचालन की विधियों एवं अर्थव्यवस्था की वस्तुगत जरूरतों के बीच असंगति बढ़ने लगी थी तथा तीव्र एवं विध्वंसात्मक आर्थिक संकटों मे व्यक्त हो रही थी। इजारेदारों की शक्ति की बढ़ोतरी ने बूर्ज्वा राज्य की समाज-विरोधी भूमिका को उजागर कर दिया था। इजारेदारों की बढ़ती शक्ति का परिणाम यह हुआ कि राजनीतिक क्षेत्र मे संस्थागत जनतंत्र इजारेदारों की जाहिर इच्छाशक्ति के सामने निरंतर घुटने टेकता गया।

इससे, सामाजिक संरचना के उपरोक्त वर्णित परिवर्तनों के परिणामस्वरूप भी, उस जनाधार की अवमानना हुई जिस पर पूंजीवादी समाज की राजनीतिक एवं प्रशासनिक प्रणाली आश्रित थी तथा इसके परिणामस्वरूप वर्ग-संघर्ष का राजनीतिकरण—कामगार जनता द्वारा मौजूदा सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था को उखाड़ फेंकने के प्रयासों का विकास—प्रारंभ हुआ।

बूर्ज्वा संसदीय व्यवस्था को ऐसी स्थितियों मे काम करना पड़ा है जिनमे श्रमिक वर्ग—जो राजनीतिक दृष्टि से जनसंख्या का सर्वाधिक सक्रिय हिस्सा है—बूर्ज्वा समाज से कटा हुआ होने के कारण व्यवस्था के पुराने नियमों मे आस्था खो चुका है। श्रमिक दलों के एक हिस्से द्वारा संसदीय संस्थानों के विरोध का अर्थ यही है

युद्ध की त्रासदी द्वारा समाज के विभिन्न स्तरों पर पोषित धार्मिक रुझानों से इसे बल मिला।

ईसाई जनवादी दलों को श्रमिक वर्ग का सापेक्ष रूप से व्यापक समर्थन प्राप्त होता है जैसा कि इटली का ईसाई जनवादी दल प्रदर्शित करता है। विभिन्न स्वतन्त्र अध्ययनों ने यह सिद्ध किया है कि लगभग एक-चौथाई श्रमिक वर्ग का समर्थन इस दल को आमतौर पर मिलता है।

यह परिस्थिति याजकीय दलों को अनुकूलन, युक्तिचालन के लिए तथा जनता को रियायतें देने को बाध्य करती है ताकि इनका प्रभाव बरकरार रहे। दूसरी ओर आम ईसाई जनवादी सदस्यों को अपने पक्ष में प्रभावित करने के अवसर साम्यवादियों को भी उपलब्ध होते हैं। वैचारिक आदान-प्रदान तथा बहस-मुबाहिसों के माध्यम से इटली एवं पश्चिमी यूरोप के अन्य देशों में साम्यवादियों एवं कैथलिक ईसाइयों के मध्य विकसित संपर्क में इसका साक्ष्य खोजा जा सकता है।

व्यापक आधार वाले ग़ैर-याजकीय बुर्ज्वा दल—जो श्रमिक वर्ग व निम्न मध्य वर्ग पर आश्रित हैं—भी अस्तित्व में आये हैं। मौजूदा दलों के सामाजिक आधार का विस्तार इस प्रक्रिया का चलनशील तत्व है। इसका एक उदाहरण संयुक्त राज्य की डेमोक्रेटिक पार्टी है जो एक जमाने में विरोधी तत्वों का मिश्रण हुआ करती थी—दक्षिण में दासों के मालिक किसान तथा पूर्वी एवं उत्तर पश्चिमी राज्यों में सर्वहारा वर्ग के लोग इसके सदस्य हुआ करते थे। पिछले दशक में, लंबे समय तक विरोध पक्ष में रहने के परिणामस्वरूप, इस दल ने निम्न मध्यवर्ग में अपना प्रभाव बढ़ाया। श्रमिकों के मतों का बहुमत भी इसे ही प्राप्त होता है।

सारणी 4 डेमोक्रेटिक तथा रिपब्लिकन दलों जिनके पास अमरीकी समाज के विभिन्न स्तरों से प्राप्त समर्थन से निर्मित स्थायी सामाजिक आधार हैं, के सामाजिक आधार को दर्शाती है। किसान, प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित श्रमिक डेमोक्रेटिक पार्टी को अधिक पसंद करते हैं।

इंगलैंड में, आज तक, श्रमिक जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा कंज़र्वेटिव दल के साथ है। जनमत संग्रहों पर आधारित सारणी 5 कमोबेश संपूर्ण चित्र पेश करती है। जैसाकि स्पष्ट है, युद्धोत्तर दो दशकों में 43 से 47% श्रमिकों ने घोषित बुर्ज्वा दलों के पक्ष में मतदान किया।

राष्ट्रीय जनमत संस्थान द्वारा एकत्र किये गये आंकड़ों के अनुसार 34% कुशल एवं 31% अकुशल श्रमिकों ने 1964 में कंज़र्वेटिव प्रत्याशियों का साथ दिया; 1956 में 32.4% व 26.3% का अनुपात था; 1970 में 34.6% व 26.3% का अनुपात था। दफ्तरों में काम करने वाले कर्मचारियों में से 1964 में 60.7% ने, 1966 में 58.8% ने तथा 1970 में 59.2% ने कंज़र्वेटिव दल का साथ दिया।

कि समाज के वास्तविक सामाजिक स्वभाव को वे समुचित रूप से प्रतिबिं नहीं कर पाये हैं। इसके परिणामस्वरूप मिली-जुली स्थाई ममदीय सरकारों गठन और अधिक कठिन हो गया है तथा अस्थायी सरकारें बाहता बन गई साथ ही, क्रांतिकारी आकांक्षाओं में वृद्धि के कारण अत्यधिक विकसित पूंजी राज्यों मे बूर्ज्वा वर्ग को अपना शासन बनाये रखने के फौरी सवाल से जूझना है। यही कारण है कि उदारवाद की नीति मे हट कर, जनता को एक व्यव अंतर्गत एकात्मक करने की नीति पर जोर दिया गया है। संकट की स्थि नीति के इस परिवर्तन ने व्यवस्था के जनतांत्रीकरण को जन्म नहीं दिया है जनता के साथ घात करने की विकसित पद्धतियो को संभव बनाया है।

द्वितीय विश्वयुद्ध तथा फ़ासिस्ट गुट के विघटन के पश्चात्, बुनियादी बू युद्धकाल के दौरान से अधिक—सामाजिक जनवादी दलों को व्यवस्था संग्रथित करने की रही है ताकि व्यवस्था को एक विस्तृत आधार मिल सके कालीन बूर्ज्वा राज्यो में सामाजिक-जनवादी दलों के विशेष स्थान का यही है। पिछले कई दशकों में इन दलों की शक्ति में श्लाघनीय वृद्धि वर्तमान में इन दलों में 1 करोड़ 30 लाख से अधिक सदस्य हैं। 7 करो उनके पक्ष मे मत देते हैं। इन दलों का सामाजिक आधार श्रमिकवर्ग के दफ्तरों में काम करने वाले कर्मचारियों, निम्न मध्यवर्ग, कारीगरों तथा म मझले स्तरो द्वारा निर्मित होता है।

श्रमिक आंदोलन के माध्यम से विकसित सामाजिक-जनवादी सामाजिक बनावट तथा आम सामाजिक-जनवादियों की उत्कट आकांक्षाएं कम्युनिस्ट दलों द्वारा क्रांतिकारी प्रभाव तथा श्रमिक वर्ग के हिफ़ाजत के लिए, शांति एवं समाजवाद के लिए वामपंथी दलों की अवसर प्रस्तुत करती हैं।

वस्तुतः, अभी भी शासक वर्ग मूलतः अपने निकट की बूर्ज्वा शक्तियों पर निर्भर करना पसंद करता है। बूर्ज्वा राज्य मे सामाजिक दलों द्वारा सत्ता प्राप्ति बूर्ज्वा दलों के संकट से जुड़ी होती है। यही कार द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् व्यापक आधार वाले बूर्ज्वा-सुधारवादी दल इजारेदारी मंत्र एवं व्यापक सामाजिक समूहों के मध्य सचालन की अस्तित्व मे आये। जनसंख्या के उस हिस्से को राजनीतिक दृष्टि से सा पर सर्वाधिक जोर था जो कि याजकीय संगठनो के प्रभाव मे था। इस यह कतई आश्चर्यजनक नहीं है कि युद्धोत्तर काल मे अधिकांश पूंजीवा देशों में याजकीय किस्म के राजनीतिक दलों का उदय हुआ तथा उन्हों वादी कार्यक्रम प्रस्तुत किये। इटली, पश्चिम जर्मनी, आस्ट्रिया एवं

द्ध की त्रासदी द्वारा समाज के विभिन्न स्तरों पर पोषित धार्मिक रुझानों से इसे ल मिला।

ईसाई जनवादी दलों को श्रमिक वर्ग का सापेक्ष रूप से व्यापक समर्थन प्राप्त ता है जैसा कि इटली का ईसाई जनवादी दल प्रदर्शित करता है। विभिन्न तन्त्र अध्ययनों ने यह सिद्ध किया है कि लगभग एक-चौथाई श्रमिक वर्ग का र्थन इस दल को आमतौर पर मिलता है।

यह परिस्थिति याजकीय दलों को अनुकूलन, युक्तिचालन के लिए तथा जनता रियायतें देने को बाध्य करती है ताकि इनका प्रभाव बरकरार रहे। दूसरी र आम ईसाई जनवादी सदस्यों को अपने पक्ष में प्रभावित करने के अवसर म्यवादियों को भी उपलब्ध होते हैं। वैचारिक आदान-प्रदान तथा बहस-मुबा- ने के माध्यम से इटली एवं पश्चिमी यूरोप के अन्य देशों में साम्यवादियों एव लिक ईसाइयों के मध्य विकसित सपर्क में इसका साक्ष्य खोजा जा सकता है।

व्यापक आधार वाले ग़ैर-याजकीय बूर्ज्वा दल—जो श्रमिक वर्ग व निम्न वर्ग पर आश्रित हैं—भी अस्तित्व में आये हैं। मौजूदा दलों के सामाजिक र का विस्तार इस प्रक्रिया का चलनशील तत्व है। इसका एक उदाहरण त राज्य की डेमोक्रेटिक पार्टी है जो एक जमाने में विरोधी तत्वों का मिश्रण करती थी—दक्षिण में दासों के मालिक किसान तथा पूर्वी एव उत्तर पश्चिमी ो में सर्वहारा वर्ग के लोग इसके सदस्य हुआ करते थे। पिछले दशक में, लंबे तक विरोध पक्ष में रहने के परिणामस्वरूप, इस दल ने निम्न मध्यवर्ग में प्रभाव बढ़ाया : श्रमिकों के मतों का बहुमत भी इसे ही प्राप्त होता है।

ारणी 4 डेमोक्रेटिक तथा रिपब्लिकन दलों जिनके पास अमरीकी समाज के न स्तरों से प्राप्त समर्थन में निर्मित स्थायी सामाजिक आधार है, के सामा- आधार को दर्शाती है। किसान, प्रशिक्षित एव अप्रशिक्षित श्रमिक डेमोक्रेटिक ो अधिक पसंद करते हैं।

ग्लैंड में, आज तक, श्रमिक जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा कंज़र्वेटिव दल है। जनमत सग्रहों पर आधारित सारणी 5 कमोबेश संपूर्ण चित्र पेश ै। जैसाकि स्पष्ट है, युद्धोत्तर दो दशकों में 43 से 47% श्रमिकों ने बूर्ज्वा दलों के पक्ष में मतदान किया।

ष्ट्रीय जनमत संस्थान द्वारा एकत्र किये गये आकड़ों के अनुसार 34% व 31% अकुशल श्रमिकों ने 1964 में कंज़र्वेटिव प्रत्याशियों का साथ 1956 में 32.4% व 26.3% का अनुपात था; 1970 में 34.6% % का अनुपात था। दफ्तरों में काम करने वाले कर्मचारियों में से 1964 % ने, 1966 में 58.8% ने तथा 1970 में 59.2% ने कंज़र्वेटिव दल दिया।

श्रमिक वर्ग के बड़े हिस्से को एकताबद्ध करने तथा उसका नेतृत्व करने वाले दलों के माध्यम से सत्ता का उपयोग करने पर लगाया हुआ दाव राज्य द्वारा सचालित युक्ति व्यवस्था तथा जनसख्या की विभिन्न श्रेणियों को दी जाने वाली रियायतों को निर्धारित करता है।

मार्क्स की दृष्टि में, नौकरशाही समाज की प्रक्रियाओं की पहचान करने के साथ-साथ सदैव उस वर्ग को भी पहचान करती है जिसके हितों का वह प्रतिनिधित्व करती है। साथ ही इन हितों के साथ वह अपने विशिष्ट हितों को जोड़ती है। नौकरशाही सामाजिक आवश्यकताओं को अनदेखा करती है। जैसे-जैसे नौकरशाही तत्र के कार्यों एवं क्षेत्र का विस्तार होता है वैसे ही ये प्रवृत्तियां सर्वग्राही होने लगती है। नौकरशाही की तानाशाही, तमाम नियत्रणो से मुक्त होने की प्रचड इच्छा का वर्चस्व होने की स्थिति मे, का खतरा प्रबल होने लगता है।

इन प्रवृत्तियों को काट करने के लिए, शासक वर्ग समाज विज्ञानो की मदद से अपनी नीति को प्रभावी बनाता है। समाजशास्त्रियो एव राजनीतिशास्त्रियो की सख्या में वृद्धि तथा सत्ता यत्र को उनसे होने वाले लाभ का यह प्रमुख कारण है। उदाहरणार्थ सयुक्त राज्य मे हजारों व्यक्ति समाजशास्त्र एव राजनीति विज्ञान के क्षेत्र मे विशेष दक्षता प्राप्त कर रहे हैं।

समस्त अमरीकी विश्वविद्यालयों मे (अन्य पूजीवादी देशो की भांति) समाजशास्त्र विभाग है। सरकारी सस्थाए जनमत सग्रहो का उपयोग जनमानस के अध्ययन के लिए ही नहीं अपितु जनमत को प्रभावित करने के लिए भी करती है।

समाजशास्त्री सूचना एकत्रित करके व उसका विश्लेषण करके, आर्थिक, सामाजिक एव राजनीतिक प्रक्रियाओं की भविष्यवाणी करके प्रशासन तत्र की मदद करते हैं तथा शासक मडली द्वारा निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए समुचित साधनों का पता लगाते है।

समाज विज्ञानों की प्रगति के सत्ता सचालन मे उपयोग के परिणाम विरोधाभास पूर्ण होते हैं। एक ओर तो इन सुस्पष्ट पद्धतियों के प्रयोग से पूजीवादी व्यवस्था की सुरक्षा व मजबूती असदिग्ध होती है। दूसरी ओर, पश्चिमी देशो में समाजशास्त्र एव राजनीति विज्ञान के विकास से नि.सृत वस्तुनिष्ठ विश्लेषण एव विवेकवाद के तत्त्व ऐसे धारक का रूप भी लेते हैं जिनका श्रमिक आदोलन मे उपयोग हो सके, खासकर तात्कालिक लक्ष्यों के लिए सघर्ष मे—आर्थिक स्थिति का सुधार, सामाजिक विधि निर्माण का विकास, जनतत्रीय सुधारो की क्रियान्विति के लिए। यह इसलिए संभव है क्योंकि पश्चिमी समाजशास्त्र एव राजनीति विज्ञान में मुखर यथास्थितिवादी धारा के समानान्तर प्रगतिशील धारा भी लक्षित होती है।

विकसित पूजीवादी देशों मे राजनीतिक व्यवस्था की सस्थाओं का विरोध

जनतंत्र एवं सामाजिक प्रगति की दिशा में तीव्र परिवर्तन भी लाती है।

इस दृष्टि से जो प्रश्न अत्यंत महत्त्वपूर्ण है वह साधनों एवं तरीकों का है जिनका उपयोग करके—श्रमिक जनता तथा उनका हिरावल दस्ता—श्रमिक वर्ग-व कम्युनिस्ट पार्टी राज्यतंत्र तथा समूची राजनीति व्यवस्था की ओर कार्यवाही को प्रभावित कर सकने में समर्थ हो। साम्यवादी दलों द्वारा संसदीय एवं संसदेतर संघर्ष, विभिन्न प्रकार के संगठनों एवं दबाव समूहों का गठन; समाचार पत्रों, रेडियो, टेलीविजन द्वारा प्रभाव, हड़तालों, सभाओं एवं प्रदर्शनों द्वारा प्रभाव; राज्यतंत्र एवं सेना में प्रवेश आदि तरीकों का अध्ययन मात्र सैद्धांतिक महत्त्व का नहीं है अपितु व्यावहारिक दृष्टि से भी बेहद महत्त्वपूर्ण है। बुर्ज्वा देशों के राजनीतिक जीवन पर आलोचनात्मक एवं विरोधपूर्ण जनमत का गहरा प्रभाव पड़ सकता है। बड़ी संख्या में पूंजीवादी देशों में साम्यवादी समाचार पत्रों (प्रेस) का वैधानिक अस्तित्व है। जनतंत्रीय प्रेस का व्यापक विस्तार है। हालांकि शासक-वर्ग का हित साधन करने वाले समाचार पत्र, रेडियो, टेलीविजन सर्वत्र प्रभावशाली है तो भी इन देशों में राजनीति पर विरोध पक्ष के समाचार पत्रों का प्रभाव समाचार पत्रों की दुनिया में उसके प्रभाव से कहीं अधिक है।

जनमत प्रभावित करना उन प्रमुख माध्यमों में से है जिनका उपयोग करके साम्यवादी दल पूंजीवादी देशों में जनतंत्रीय सुधारों की स्थितियों का निर्माण कर सकते हैं।

प्रशासन एवं संघटन

राजनीतिक व्यवस्था नेतृत्व तथा समाज के ऊपर प्रशासन के माध्यम से कार्य करती है। विकसित पूंजीवादी देशों में प्रशासनिक कामकाज एक स्वतंत्र अध्ययन-क्षेत्र है अतः पृथक अध्ययन का अधिकारी है। हम यहां इस विधा की कुछेक प्रवृत्तियों की ही चर्चा करेंगे जो कि वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक क्रांति के प्रभाव में विकसित हुई है तथा जो प्रस्तुत विषय राजनीतिक व्यवस्था के तत्त्वों के रूप में राजनीतिक संस्थाओं—से संबंधित हैं।

प्रशासनिक प्रक्रिया के व्यवस्थापरक विश्लेषण में लक्ष्यों, विकल्पों, निर्णय लेने एवं क्रियान्वित करने के पक्ष, देख-रेख एवं सुधार-संशोधन पर ज़ोर दिया जाता है।

हमारी दृष्टि में, इस तरह के विश्लेषण की पहली शर्त प्रशासन के विशिष्ट लक्षणों को 'अपने समूचे जीवन-व्यवहार को अपनी संकल्प शक्ति एवं चेतना का 'विषय'[1] बनाने की विशिष्ट मानवीय क्षमता की अभिव्यक्ति के रूप में पृथक

[1] कार्ल मार्क्स : इकनामिक एंड फिलासाफीकल मैन्युस्क्रिप्ट्स आफ 1844, मास्को, 1959, पृ० 75

किया था, फिर भी उन्होंने इजारेदारों की उतनी ही प्रत्यक्ष एवं सुची सेवा की जितनी कि करोड़पति परिवार में जन्मे केनेडी ने की।

पश्चिमी जनतंत्र के पक्षधर अपने प्रचार में इस तथ्य का व्यापक उपयोग करते हैं कि राज्यतंत्र में इजारेदारों को नहीं बल्कि विभिन्न प्रकार के विशेषज्ञों को नियुक्त किया जाता है। इस संबंध में वे 'व्यवस्थापकों की क्रांति', राजनीतिक जीवन पर पूंजी की ढीली होती पकड़ आदि की भी चर्चा करते हैं। किंतु इस तरह के तर्क वैज्ञानिक रूप से निराधार हैं। राज्य के नेतृत्व के समस्त अथवा अधिकांश उत्तोलक इजारेदारों अथवा उनके साथ राजनीतिक सत्ता का साझा करने वाले मध्य वर्गों के समूहों के हाथ में होते हैं।

बूर्ज्वा राज्यों के विकास के संकट की घड़ियों में, जब इजारेदार सामाजिक जीवन की मूल समस्याओं के समाधान में प्रत्यक्ष दखल देने लगते हैं, स्पष्ट रूप में देखा जा सकता है। इस तरह की कार्यवाही का अन्यतम उदाहरण 1933 में जर्मन उद्योगपतियों की हिंडेनबर्ग को एक खास पत्र में दी गयी हिदायत थी कि शासन की बागडोर हिटलर को सौंप दी जाय। शांत क्षणों में इजारेदार पर्दे के पीछे खड़ा रहना पसंद करते हैं, इससे उनकी चालाकी एवं दक्षता तो प्रमाणित एवं सम्मानित होती है किंतु पूंजीवादी राज्यों में आर्थिक एवं राजनीतिक सत्ता पर उनकी गिरफ्त कम नहीं होती। व समाज का नेतृत्व अपने हाथों में सुरक्षित रखते हैं। यह दूसरी बात है कि वे सत्ता का उपयोग राज्य-तंत्र के कर्मचारियों की फौज, संसद एवं स्वशासी सामाजिक संगठनों के मार्फत करते हैं तथा वैकल्पिक सामाजिक-राजनीतिक निर्णयों तक पहुंचने के लिए प्रचार तंत्र एवं बूर्ज्वा पांडित्य का इस्तेमाल करते हैं।

लेनिन के शब्दों में, "नौकरशाही वह विशिष्ट स्तर है जिसके हाथों में सत्ता होती है। इस अंग तथा बूर्ज्वा वर्ग का प्रत्यक्ष एवं घनिष्ठ संबंध—जिसका आधुनिक समाज पर आधिपत्य है—इतिहास (नौकरशाही सामंतशाही के खिलाफ तथा कुल मिलाकर संपूर्ण कुलीन व्यवस्था के खिलाफ बूर्ज्वा वर्ग का पहला राजनीतिक हथियार था तथा इसके उदय से राजनीतिक भूमिका की परिधि में, बड़े जमींदारों को पीछे छोड़कर सामान्य ध्वनि, मध्य वर्ग—के अभ्युदय का शुभारंभ हुआ) एवं इस वर्ग की रचना एवं चयन-पद्धति (जो कि जनता की बूर्ज्वा संतति को वरीयता देती है तथा जो बूर्ज्वा वर्ग के साथ हजारों मजबूत कड़ियों से जुड़ी हुई है) दोनों में ही लक्षित की जा सकती है।"[5]

हमारी राय में नेतृत्व एवं प्रशासन का मूल अंतर सत्ता के प्रदत्त किये जाने की सीमा में निहित है। नेतृत्व का अर्थ है इसके पात्रों को प्रभावित करके अपनी

---

5. व्ला० ई० लेनिन : संकलित रचनाएं, खंड 1, पृ० 419-20

कार्य शासन का क्रियान्वित करने की सामर्थ्य। यह सही है कि नेतृत्व किन्हीं विशिष्ट कार्य-व्यापारों एवं सत्ता-सामर्थ्य से जुड़ा होता है किंतु इसे सत्ता-प्रान्वयन में घटित नहीं किया जा सकता। नेतृत्व एकांतिक रूप से नैतिक सत्ता अनुयायियों की इस स्वीकृति पर कि नेतृत्व के इस तरह के कार्य-व्यापार का ज्ञान है) पर भी आधारित हो सकता है। इसका सीधा-सा उदाहरण शिष्यों पर का प्रताप है। यह कतई आवश्यक नहीं है कि गुरु की शक्ति को सत्ता एवं शासन का समर्थन प्राप्त हो, इसके लिए मात्र यह आवश्यक है कि यह अनिवार्य स्तरीय सामर्थ्य एवं मान्यता से सपन्न है।

नेतृत्व एवं प्रशासन के विभेदीकरण को स्पष्ट करने के लिए यह जोड़ा जाना आवश्यक है कि यहा हम प्रशासन का प्रयोग उसके सीमित अर्थ में ही कर रहे व्यापक अर्थ में इसका प्रयोग आत्म नियामक, स्व-प्रशासित, ऊँचे रूप में ठित तथा अंत ग्रथित व्यवस्थाओं—जीवित अवयव सस्थानों, साइबरनेटिक स्थाओं तथा मानव समाज—को भी निर्दिष्ट कर सकता है।

'नियंत्रण' एवं 'प्रभाव' जैसी अवधारणाएं या तो व्यापक अवधारणाओं (जैसे त्व', 'प्रशासन') के तत्त्व हैं अथवा सत्ता एवं प्रशासन में भागीदारी की मात्रा संकेत देती है। आम तौर पर 'नियंत्रण' का प्रयोग उन सामाजिक समूहों के र किया जाता है जो समय-समय पर कतिपय राजनीतिक कार्य-व्यापार को दित करते हैं (जैसे पूजीवादी देशों में चुनाव) जबकि 'प्रभाव' का प्रयोग ही व्यक्तियों अथवा समूहों की अनौपचारिक शक्तियों का वर्णन करने के लिए ा जाता है।

वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक क्रांति तथा उत्पादन के प्रबंध एवं जीवन के अन्य ों के वैज्ञानिक आधुनिकीकरण संबंधी इसकी शर्तें का समूचे प्रशासन क्षेत्र पर ा प्रभाव पड़ता है। 18वीं शताब्दी की औद्योगिक क्रांति के विपरीत सम-ीन वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक क्रांति (चाहे उसका उत्स विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी ी हो) की प्रकृति व्यापक एवं सर्वग्राही है। यह अर्थशास्त्र, संस्कृति, प्रशासन—ी सामाजिक जीवन में समस्त पक्षों को प्रभावित करता है। सामाजिक श्रम ाजन, सामाजिक सरचना, संस्कृति तथा जनता की आवश्यकताओं एवं हितों रिवर्तनों से इसकी सामाजिक अतर्वस्तु निर्मित होती है।

प्रशासन के तकनीकी आधार में होने वाले परिवर्तनों में वैज्ञानिक एवं ोगिक क्रांति की प्रथम व स्पष्ट गूंज सुनाई पड़ती है। यहां हमारा सकेत सनिक समस्याओं के हल के लिए कम्प्यूटर प्रौद्योगिकी के प्रयोग में गुणोत्तर की ओर है। सयुक्त राज्य में उत्पादन प्रबंध के क्षेत्र में कम्प्यूटर प्रयोग में घुथ वृद्धि इसका सटीक प्रमाण है।

संयुक्त राज्य : आधुनिक प्रबंध विधियां' अमरीकी प्रबंध में वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक क्रांति के आक्रमण की भविष्यवाणियों के बारे में उपयोगी सामग्री प्रस्तुत करती है। अमरीकी विशेषज्ञों की मान्यता है कि कंप्यूटरों का वास्तविक शासन अभी प्रारंभ ही हो रहा है। उनका मत है कि उद्योग के क्षेत्र में कंप्यूटर विश्लेषण, प्रबंध एवं निर्णय लेने का प्रमुख अस्त्र है। एक दशक में कम्प्यूटर उद्योग, पेट्रोलियम एवं स्वचालित वाहनों के बाद विश्व का तीसरा बड़ा उद्योग बन जायेगा। अमरीकी अर्थव्यवस्था में कंप्यूटर का पहले ही न केवल सूचना एकत्रित एवं संशोधित करने में बल्कि वित्त, विपणन, आयोजना एवं नियंत्रण के विश्लेषण में भी प्रयोग हो रहा है। यहां हिसाब-किताब के क्षेत्र का जिक्र करने की तो आवश्यकता ही नहीं है जहां कम्प्यूटर प्रौद्योगिकी का लंबे समय से सार्थक प्रयोग होता रहा है।

संयुक्त राज्य में प्रबंध के क्षेत्र में कम्प्यूटर का प्रयोग मुख्यतया प्रबंध एवं संगठनात्मक समस्याओं के समाधान के लिए किया जाता है। अंतर्बंधित प्रबंध व्यवस्थाओं, जो आधुनिक प्रौद्योगिकी तथा सूचना संसाधन एवं अनुकूलतम निर्णय लेने की आधुनिक विधियों पर आश्रित होंगी, के निर्माण की अवस्था अधिक जटिल होगी। इससे उत्पादन एवं प्रबंध के स्वचालन के स्तरों के बीच की खाई को पाटने में सहायता मिलेगी।

'साइबरनेटिक क्रांति' एवं 'सूचना उद्योग' आदि ऐसे साधारण एवं रोजमर्रा के शब्द हैं जो वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक क्रांति द्वारा लाये जा रहे परिवर्तनों के सूचक हैं। कम्प्यूटर के प्रयोग ने नव व्यवसायों (आयोजकों एवं अन्य विशेषज्ञों) को [illegible] दिया है।

राजकीय इजारेदार पूंजीवाद तथा वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक क्रांति की शत के प्रभाव मे प्रबंध एवं संघटन सिद्धांत में मुखर विचलन हुआ है। प्रबंध के समाज शास्त्रीय एवं सामाजिक-मनोवैज्ञानिक अध्ययनो का आर्थिक सिद्धांतों के समकक्ष आ जाना इसे प्रदर्शित करते हैं।

फ्रेडरिक टेलर—जो प्रयोग के रास्ते सिद्धांत की ओर आये-को पश्चिम मे औद्योगिक प्रबंध के विज्ञान का जनक माना जाता है। उन्होंने बढती हुई आर्थिक कुशलता के परिप्रेक्ष्य में संघटन सिद्धांत को एकदम आत्यतिक रूप से देखा मानवीय संबंधों का प्रश्न उनके दायरे के बाहर था। उनकी रुचि उत्प्रेरकों तथ नतीजों के आकलन में थी। उनके परिवर्तियों—गिल्बर्ट एवं एमर्सन—ने बाद मे अभियांत्रिक मनोविज्ञान के रूप मे जानी जाने वाली विद्या का सूत्रपात किया किंतु प्रबंध सिद्धांत का तीव्र विकास कंप्यूटरों के प्रयोग के श्रीगणेश के बाद हैं हुआ। टेलरवाद की आलोचना का आधार उनकी दृष्टि की संकीर्णता में निहित था जिसके कारण वह पसीने की आखिरी बूंद तक को निचोड़न वाली तथ उत्पादन संबंधों ने सामाजिक पक्ष को अनदेखा करने वाली व्यवस्था ही दे पाये यही नहीं, टेलरवाद मे राज्य, सेना, चर्च एवं अन्य संगठनों के अध्ययन से भी को सरोकार व्यक्त नहीं होता। इसके कारण सामाजिक संगठनो के सामान्य सिद्धांत के निरूपण में बाधाएं उत्पन्न हुई।

पश्चिमी विद्वानों में मैक्स वेबर ने संगठन के अध्ययन की दिशा का सूत्रपा किया, विशेषतया मरणोपरांत 1921 में प्रकाशित अपनी पुस्तक "इकनॉमी एं सोसायटी"[7] के माध्यम से। आदर्श नौकरशाही संबंधी उनका सिद्धांत तकनीक 'विशेषज्ञता के माध्यम से तर्कपूर्ण शासन पर आधारित था। वेबर के दृष्टिको में पदानुक्रम, तार्किकता, व्यवस्था एवं वस्तुनिष्ठता का भी सहारा लिया गय था।

वेबर ने यह प्रस्तावित किया था कि नौकरशाही के क्रियाकलाप स्पष्ट नियमों से संचालित हों, इन नियमों से प्रत्येक असम्भ स्थिति में विशिष्ट निर्दे जारी करने की अनिवार्यता स्वतः समाप्त हो जाती। जाहिर है इस दृष्टिकोण को स्वीकृति मिलने से प्रशासनतंत्र में काम करने वाले व्यक्ति चुनाव के माध्यम से नहीं अपितु नियुक्ति के माध्यम से आते। वेबर का तर्कपूर्ण नौकरशाही का सिद्धांत पश्चिमी प्रबंध सिद्धांत के प्रबल वेग का आधार रहा है तथा इसने बूर्ज्वा प्रशासनतंत्र द्वारा समकालीन परिस्थितियों के अनुकूलन की प्रक्रिया पर महत्व-पूर्ण प्रभाव छोड़ा है।

संगठनात्मक सिद्धांत मे तुलनात्मक रूप से एक नयी प्रवृत्ति सामाजिक

---

7 मैक्स वेबर : इकनामी एंड सोसायटी, एन आउटलाइन आफ इंटरप्रेटिव सोशियालाजी, न्यू यार्क 1968।

संयुक्त राज्य : आधुनिक प्रबंध विधियां[6] अमरीकी प्रबंध में वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक क्रांति के आक्रमण की भविष्यवाणियों के बारे में उपयोगी सामग्री प्रस्तुत करती है। अमरीकी विशेषज्ञों की मान्यता है कि कम्प्यूटरों का वास्तविक आगमन अभी प्रारंभ ही हो रहा है। उनका मत है कि उद्योग के क्षेत्र में कंप्यूटर विश्लेषण, प्रबंध एवं निर्णय लेने का प्रमुख अस्त्र है। एक दशक में कंप्यूटर उद्योग पेट्रोलियम एवं स्वचालित वाहनों के बाद विश्व का तीसरा बड़ा उद्योग बन जायेगा। अमरीकी अर्थव्यवस्था में कम्प्यूटर का पहले ही न केवल सूचना एकत्रित एवं संशोधित करने में बल्कि वित्त, विपणन, आयोजना एवं नियंत्रण के विश्लेषण में भी प्रयोग हो रहा है। यहां हिसाब-किताब के क्षेत्र का जिक्र करने की तो आवश्यकता ही नहीं है जहां कम्प्यूटर प्रौद्योगिकी का लंबे समय से सार्थक प्रयोग होता रहा है।

संयुक्त राज्य में प्रबंध के क्षेत्र में कम्प्यूटर का प्रयोग मुख्यतया प्रबंध एवं संगठनात्मक समस्याओं के समाधान के लिए किया जाता है। अंतर्ग्रथित प्रबंध व्यवस्थाओं, जो आधुनिक प्रौद्योगिकी तथा सूचना संसाधन एवं अनुकूलतम निर्णय लेने की आधुनिक विधियों पर आश्रित होंगी, के निर्माण की आवश्यकता अधिक जटिल होगी। इससे उत्पादन एवं प्रबंध के स्वचालन के स्तरों के बीच की खाई को पाटने में सहायता मिलेगी।

'साइबरनेटिक क्रांति' एवं 'सूचना उद्योग' आदि ऐसे साधारण एवं रोजमर्रा के शब्द हैं जो वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक क्रांति द्वारा लाये जा रहे परिवर्तनों के सूचक है। कंप्यूटर के प्रयोग ने नये व्यवसायों (आयोजकों एवं अन्य विशेषज्ञों) को जन्म दिया है।

वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक क्रांति द्वारा प्रशासन के क्षेत्र में लाया गया पहला, एक मात्र नहीं, परिवर्तन है। व्यवस्था-विश्लेषण का आर्थिक एवं सामाजिक प्रक्रियाओं की आयोजना एवं भविष्यवाणी के लिए किया जाने वाला प्रयोग एक अन्य प्रवृत्ति—जो आनुषंगिक नहीं है—को लक्षित करता है। तीसरा एवं अंतिम अर्थ-व्यवस्था में विज्ञान, प्रौद्योगिकी एवं संगठन सिद्धांत की उपलब्धियों के प्रभावी इस्तेमाल के माध्यम से प्रशासन के संगठनात्मक रूपों में परिवर्तनों पर परिलक्षित होती है। यह नयी स्थिति प्रशासकों से नयी अपेक्षाएं रखती है तथा निर्देश एवं [illegible] को अनिवार्य बनाती है ताकि वे व्यवस्था-विश्लेषण तथा [illegible] गणितीय एवं [illegible] प्रविधियों का प्रयोग कर सकें।

---

6. [illegible], 1971, पृ० 10। [illegible], 1971, पृ० 93-101 [illegible]।

राजकीय इजारेदार पूंजीवाद तथा वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक क्रांति की श
प्रभाव में प्रबंध एवं संघटन सिद्धांत में मुखर विचलन हुआ है। प्रबंध के समा
शास्त्रीय एवं सामाजिक-मनोवैज्ञानिक अध्ययनों का आर्थिक सिद्धांतों के समव
ा जाना इसे प्रदर्शित करते हैं।

फ्रेडरिक टेलर—जो प्रयोग के रास्ते सिद्धांत की ओर आये-को पश्चिम में
औद्योगिक प्रबंध के विज्ञान का जनक माना जाता है। उन्होंने बढ़ती हुई आर्थिक
कुशलता के परिप्रेक्ष्य में संघटन सिद्धांत को एकदम आत्यंतिक रूप से देखा।
मानवीय संबंधों का प्रश्न उनके दायरे के बाहर था। उनकी रुचि उत्प्रेरकों तथा
गतीशों के आकलन में थी। उनके परवर्तियों—गिल्बर्ट एवं एमर्सन—ने बाद में
अभियांत्रिक मनोविज्ञान के रूप में जानी जाने वाली विद्या का सूत्रपात किया।
किंतु प्रबंध सिद्धांत का तीव्र विकास कंप्यूटरों के प्रयोग के श्रीगणेश के बाद ही
हुआ। टेलरवाद की आलोचना का आधार उनकी दृष्टि की संकीर्णता में निहित
था जिसके कारण वह पसीने की आखिरी बूंद तक को निचोड़ने वाली तथा
उत्पादन संबंधों में सामाजिक पक्ष को अनदेखा करने वाली व्यवस्था ही दे पाये।
यही नहीं, टेलरवाद में राज्य, सेना, चर्च एवं अन्य संगठनों के अध्ययन से भी कोई
सरोकार व्यक्त नहीं होता। इसके कारण सामाजिक संगठनों के सामान्य सिद्धांतों
के निरूपण में बाधाएं उत्पन्न हुईं।

पश्चिमी विद्वानों में मैक्स वेबर ने संगठन के अध्ययन की दिशा का सूत्रपात
किया, विशेषतया मरणोपरांत 1921 में प्रकाशित अपनी पुस्तक "इकनॉमी एंड
सोसायटी"[7] के माध्यम से। आदर्श नौकरशाही संबंधी उनका सिद्धांत तकनीकी
विशेषज्ञता के माध्यम से तर्कपूर्ण शासन पर आधारित था। वेबर के दृष्टिकोण
में पदानुक्रम, तार्किकता, व्यवस्था एवं वस्तुनिष्ठता का भी सहारा लिया गया
था।

वेबर ने यह प्रस्तावित किया था कि नौकरशाही के क्रियाकलाप स्पष्ट
नियमों से संचालित हों, इन नियमों से प्रत्येक अलग स्थिति में विशिष्ट निर्देश
जारी करने की अनिवार्यता स्वतः समाप्त हो जाती। जाहिर है इस दृष्टिकोण को
स्वीकृति मिलने से प्रशासनतंत्र में काम करने वाले व्यक्ति चुनाव के माध्यम से
नहीं अपितु नियुक्ति के माध्यम से आते। वेबर का तर्कपूर्ण नौकरशाही का
सिद्धांत पश्चिमी प्रबंध सिद्धांत के प्रबल वेग का आधार रहा है तथा इसने बुर्ज्वा
प्रशासनतंत्र द्वारा समकालीन परिस्थितियों के अनुकूलन की प्रक्रिया पर महत्त्व-
पूर्ण प्रभाव छोड़ा है।

संगठनात्मक सिद्धांत में तुलनात्मक रूप से एक नयी प्रवृत्ति सामाजिक

7. मैक्स वेबर, इकनॉमी एंड सोसायटी, एन आउटलाइन आफ इंटरप्रेटिव सोशियालजी,

मनोविज्ञान से प्रस्फुटित हुई है। इसकी शुरुआत 1920 के दशक में संगठनों के भीतर छोटे समूहों के अध्ययन के साथ हुई। बाद में, और अधिक विकसित होने पर, इस धारा को 'मानवीय संबंधों' के सिद्धांत की संज्ञा दी गयी।

यह धारा तथाकथित हॉथोर्न प्रयोग (बाद में बहुचर्चित) से संबद्ध थी। संयुक्त राज्य की हॉथोर्न कर्मशाला में कार्यरत एक शोध समूह ने एक विचित्र तथ्य का उद्घाटन किया कि श्रमोत्पादकता श्रम संबंधों—श्रमिकों, प्रशासकों इंजीनियरों आदि के संबंधों—की वृत्ति है। शोधकर्मियों ने दो बिंदुओं—काम के समय अनुकूल सामाजिक वातावरण का निर्माण एवं देख-रेख की विधियों—पर अपना ध्यान केंद्रित किया। उन्होंने यह पता लगाया कि आधुनिक औद्योगिक श्रमिक की मूलभूत समस्या सामाजिक संपर्क-बोध से वंचित होना तथा उद्यम-प्रशासन में आस्था की कमी है। श्रमोत्पादकता बढ़ाने के लिए सामाजिक कड़ियों को पुनर्स्थापित करने के प्रयास किये गये। दूसरे शब्दों में, पहले से रेखांकित आर्थिक उत्प्रेरकों (हर हांडी में मुर्ग़ मसल्लम) की अनिवार्यता से हटकर मनुष्य को केंद्र में रखा गया।

फ्रैंकलिन रूज़वेल्ट का "न्यूडील" नामक सामाजिक विधान कम से कम आंशिक रूप से इन सिद्धांतों की उपज था। इस तरह के कानूनों का उद्देश्य श्रमिक का स्तर ऊपर उठाना, सामाजिक अनुबंधों की भूमिका को सम्मान देना तथा श्रमिक संघों को कुछेक अधिकार देना था। बहुत से उद्यमियों ने इन विचारों पर उत्साह से अमल करना प्रारंभ किया; उन्होंने अनुभव किया कि काम के दौरान श्रमिक के साथ मधुर संबंध बनाये रखकर वे मजदूरी बढ़ाने—और उसके परिणाम स्वरूप मुनाफ़े का उसके साथ बटवारा करने—की बनिस्बत अधिक लाभ कमा सकते थे। श्रमिक के लिए इस सिद्धांत का कोई व्यावहारिक महत्त्व नहीं है तथापि इस प्रकार पैदा किये गये सामाजिक-भावनात्मक भ्रम काफी महत्त्वपूर्ण हैं।

संयुक्त राज्य में, हाल ही में, व्यवस्था-विश्लेषण के प्रभाव में संगठनात्मक रूपों एवं प्रशासनिक संरचना के अध्ययन को समर्पित एक नयी धारा का उदय हुआ है। इस संदर्भ में अंतिम सत्य के रूप में, संगठन के पारस्परिक क्रियात्मक अथवा रेखाकार क्रियात्मक रूपों का विरोध करके प्रशासनिक संरचना को सूचना सिद्धांत की उपलब्धियों से जोड़ने के प्रयासों को प्रभावी बताया जा रहा है।

इस दृष्टिकोण के समर्थकों को क्रियात्मक संरचना में ढेर सारी कमियां नज़र आती हैं। उनका मत है कि क्रियात्मक पद्धति समूचे संगठन की क़ीमत पर व्यक्ति तत्त्व को गुरुत्वाकर्षण केंद्र के रूप में प्रस्तुत करती है। इसका अर्थ है कि किसी भी क्रियात्मक संरचना का मुखिया अपने कार्यों को प्रमुख मानते हुए यह नहीं देखता कि वे संगठन के लक्ष्यों से ही निर्धारित हो रहे हैं। समकालीन अमरीकी सिद्धांत-कारों की दृष्टि में प्रभागों का अप्रभावी तालमेल, क्षैतिज कड़ियों की कमी (जिनमें

आयोजना एवं नियंत्रण कठिन हो जाते हैं), प्रत्येक सरचनात्मक इकाई की आत्म-सुरक्षा की प्रवृत्ति आदि, क्रियात्मक संघटन की प्रमुख कमियां हैं।

1960 के दशक के मध्य से, अद्यतन संघटन सिद्धांतों के प्रभाव में, संयुक्त राज्य में विशिष्ट कार्यक्रमों को अंजाम देने के लिए लचीली संघटनात्मक संरचनाएं निर्मित करने के निरंतर प्रयास होते रहे हैं। संघटन का कार्यक्रम अथवा परियोजना सिद्धांत अंतर्विभागीय स्वरूप वाले, कमोबेश सार्वभौमिक संरचनात्मक उप खंडों के सृजन को आवश्यक मानता है ताकि विशिष्ट लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके अथवा कार्यक्रम को क्रियान्वित किया जा सके। इसका उद्देश्य क्षैतिज, अंतर्क्रियात्मक कड़ियों को मजबूत बनाना तथा आंशिक लक्ष्यों पर सामान्य लक्ष्यों की वरीयता कायम करना है।

व्यवहार में, इन सिद्धांतों को क्रियान्वित करने के प्रयासों से इनके अत्यंत उत्साही समर्थकों का उत्साह भी ठंडा पड़ गया है। सरचनात्मक अस्थिरता, समुचित कर्मक विशेषज्ञता का अभाव, क्रियात्मक परस्पर व्यापन, दीर्घावधि आयोजना संबंधी कठिनाइयां आदि उलझनें उजागर होने लगी हैं। तथापि इस सिद्धांत की दृष्टि (संरचना पदानुक्रम का तालमेल नहीं अपितु विशिष्ट समस्याओं के समाधान की प्रक्रिया है) को लगभग सभी समकालीन अमरीकी सिद्धांतकार उपयोगी मानते हैं।

आजकल अमरीका में तथाकथित लागत-लाभ विश्लेषण का व्यापक प्रयोग किया जा रहा है। इसका सबसे पहले रक्षा विभाग में प्रयोग किया गया था तथा बाद में अन्य विभागों में भी इसे अपना लिया गया, 1970 में संघीय परियोजनाओं के 60% का लागत-लाभ विश्लेषण किया गया। इसका उद्देश्य निर्णय करने वाले अधिकारियों को सामाजिक संसाधनों के प्रभावी इस्तेमाल में सहायता देना है।

लागत-लाभ विश्लेषण के प्रवर्तकों एवं समर्थकों में रॉबर्ट मैकनमारा, जो अमरीकी रक्षा मंत्री के रूप में काफी बदनाम भी हुए तथा जिन्हें आमतौर पर मानव कम्प्यूटर के रूप में जाना जाता था, प्रमुख थे। अमरीकी विशेषज्ञों का मत है कि इस पद्धति के लागू किये जाने से अकेले रक्षा विभाग ने 1964-1968 में 1400 करोड़ डालर बचाये थे। फिर भी मैकनमारा तथा कैनेडी-जॉनसन प्रशासन के विरोधियों ने इस पद्धति की कड़ी आलोचना की थी।

इसके बावजूद सत्ता प्राप्त करने के पश्चात् निक्सन प्रशासन ने इस पद्धति को और अधिक विकसित करना आवश्यक समझा। राष्ट्रपति द्वारा पर्यावरण सुधार, शहरी समस्याओं एवं ग्रामीण मामलों से संबंधित विभिन्न आयोगों का गठन किया गया। इन पर कार्यक्रम निर्धारित करने की वैज्ञानिक पद्धतियों की खोज करने की जिम्मेदारी डाली गयी। और अंत में 1969 में राष्ट्रीय लक्ष्यों को निर्धारित करने

के लिए हुडसन हाउस टास्क फोर्स स्थापित किया गया। इसे आर्थिक एवं समाज के विकास के दीर्घकालिक परिणामों की संभावनाओं एवं मूल्यांकन, वैकल्पिक प्रस्तावों की विवेचना, आवश्यकताओं एवं संभावनाओं के तुलनात्मक अध्ययन तथा देश में जारी शोध के परिणामों को एकत्रित करने के प्रश्नों पर विचार करने को कहा गया।

संयुक्त राज्य में प्रशासनिक संगठन का सुधार एक बड़े व्यापार का रूप ले चुका है। 1970 में लगभग 150 सलाहकार कंपनियां कम्प्यूटर सेवा के क्षेत्र में विशेषज्ञता प्रदान कर रही थी। इन कंपनियों की सेवाओं का लगभग 20000 कंपनियों द्वारा उपयोग किया गया।

प्रशासनिक प्रक्रिया के आधुनिक विश्लेषण में निर्णय लेने के सिद्धांत, राजनीतिक-आर्थिक-सामाजिक लक्ष्यों के निर्धारण, सूचना एकत्रित एवं समाधित करने की प्रक्रिया, विकल्पों की पहचान एवं निर्धारण, निर्णयों के श्रेष्ठीकरण, निर्णयों के समन्वय पर ज़ोर दिया जाता है।

कार्यक्रमों का क्रियान्वयन प्रशासनिक प्रक्रिया की एक अत्यंत महत्वपूर्ण अवस्था है। सत्ता प्राप्त करना, उसे बनाये रखना, विस्तार देना तथा मजबूत करना; सत्ता के आधार आर्थिक-सामाजिक संरचना की रक्षा करना तथा राज्य द्वारा बल प्रयोग के एकाधिकार पर आधारित समाज का केंद्रीकृत प्रशासन इस नीति के लक्ष्य हैं। सत्ता नीति का लक्ष्य भी है तथा सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं अन्य कार्यों को संपादित करने का साधन भी है।

ये सब इस नीति के सामान्य लक्ष्य हैं, किंतु इस नीति के कुछ सीमित लक्ष्य भी हैं जो कि आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक माल को नियंत्रित करने, प्राप्त करने एवं वितरित करने तथा वर्ग विशेष के पक्ष में उपयुक्त घरेलू एवं अंतरराष्ट्रीय परिस्थितियाँ तैयार करने, सत्ता के सामाजिक आधार को मजबूत करने, आदि से जुड़े हुए हैं। उपयुक्त परिस्थितियों का निर्माण करना अथवा कम कीमत पर खतरनाक परिस्थितियों से उबरना आदि मध्यवर्ती लक्ष्य हैं।

राजनीतिक लक्ष्य—आधारभूत एवं मध्यवर्ती—का निर्धारण शासक वर्गों तथा निरूपण राजनीतिक नेताओं एवं विचारधारा विशेषज्ञों द्वारा किया जाता है। ये लक्ष्य भिन्न मात्रा में यथार्थवादी अथवा भ्रामक, तार्किक अथवा अतार्किक, प्राप्य अथवा अप्राप्य हो सकते हैं। सत्ता संचालन की कुशलता, इसके परिणाम-स्वरूप, लक्ष्य-निर्धारण से जुड़ी होती है।

राजनीति में वर्ग, व्यक्ति एवं समूह के हितों में भेद करना आवश्यक है। प्रमुख लक्ष्य अनिवार्यतः शासक वर्ग के संयुक्त हितों को प्रतिबिंबित करते हैं। वे जारी सामाजिक एवं संपत्ति संबंधों से निर्मित समाज के आधार की हिफाजत [illegible] राज-
करने को समर्[illegible]

नीतिक व्यवस्था की मूलभूत सस्थाओं मे मूर्त होते हैं। दूसरी ओर, राजनीति
आशिक अथवा मध्यवर्ती लक्ष्य बहुधा समूह अथवा व्यक्ति के हितों को प्रतिबिंबि
करते हैं। उदाहरण के लिए, पूंजीवादी समाजों मे अस्त्रो की होड़ सैनिक-और
गिक गठबधन को लाभ पहुंचाती है जबकि सह-अस्तित्व की नीति उन इजारेद
घरानो को लाभ पहुचाती है जिनकी रुचि समाजवादी देशो के साथ व्यापारि
सबध रखने मे है।

राजनीतिक लक्ष्यो को विविध एव विरोधी शक्तियो—प्रभाव बढाने के लि
स्पर्द्धारत् वर्गों एव समूहों—के भीषण सघर्षों के दौरान आकार दिया जाता है
राजनीतिक अध्ययन का एक प्रमुख लक्ष्य किसी भी राजनीतिक योजना, नीति
अथवा परियोजना के स्रोतों की तलाश करना भी है।

सामान्यतया राजनीतिक लक्ष्यों की प्रकृति ही उन्हे प्राप्त करने के साधन
तथा निर्णयों को क्रियान्वित करने की विधियो को पूर्व निर्धारित करती है। राज
नीतिक लक्ष्यो के विवेचन मे अपनायी जाने वाली समस्त विधियों एव तरीको क
विश्लेषण करना यहां हमारा अभीष्ट नहीं है। हम इस विस्तृत विषय पर विचार
करने के लिए बुनियादी महत्व के बिंदुओं की चर्चा भर करना चाहेंगे। ये बिंदु हैं
नीति के विकास मे तार्किकता की मात्रा तथा स्वतःस्फूर्ति एवं सचेतनता के परस्प
संबध; विवादो—जो कि राजनीतिक विकास की पर्णप्रक्रिया हैं—के निराकरण के
तरीके, वैकल्पिक निर्णयो के बीच चयन सुविधा, राजनीतिक गलतियों के परिणाम
एवं महत्व; राजनीतिक परिस्थितियों के पूर्वानुमान की वैज्ञानिक विधियां, राज
नीति का यथार्थवाद, स्वप्नदर्शिता एव अतार्किकता। जाहिर है, ये सभी समस्याए
स्वतंत्र विश्लेषण की मांग करती हैं।

निर्णय लेने का प्रश्न भी इससे घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ है। प्रशासन विज्ञान
एवं राजनीति सिद्धांत का यह एक प्रमुख तत्व है। 'निर्णय लेने का सिद्धांत' का
सर्व प्रथम प्रयोग बीसवी शताब्दी के मध्य मे हुआ था तथा बहुत शीघ्र ही विभिन्न
संप्रदायों के समाजशास्त्रियो एव राजनीतिशास्त्रियो द्वारा व्यापक रूप से अपना
लिया गया था। निर्णय लेने का सिद्धांत सभी समाज विज्ञानो पर लागू होता है
क्योंकि यह सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रो में जारी प्रक्रियाओं को प्रतिबिंबित
करता है। राजनीतिक निर्णयो का विशेष गुणधर्म यह है कि ये राजनीतिक सत्ता
केन्द्र मे जन्म लेते हैं तथा इसके कामकाज की किसी अवस्था को व्यक्त करते हैं।

निर्णय लेने के सिद्धान्त मे निम्न घटकों का अध्ययन समाहित है : लिया गया
निर्णय, इसे जन्म देने वाली सामाजिक-ऐतिहासिक परिस्थितियां, मध्यवर्ती तत्व
जिसके माध्यम से निर्णय आगे बढ़ता है। सामाजिक-ऐतिहासिक परिस्थितियों मे
विशिष्ट स्थिति, व्यवस्था की दशा, संभाव्य वैकल्पिक निर्णय, सत्ता तंत्र से परे,
प्रस्तावित वैकल्पिक निर्णयों की प्रतिक्रिया, निर्णय को बदलने के सामाजिक एव

तकनीकी आग्रह, निर्णय लागू किये जाने का दायरा, इसकी प्रभावशीलता
पारस्परिक परिणाम आदि सम्मिलित होते हैं।

निर्णय लेने वाली राजनीतिक शक्तियों के प्रभावित किये जाने के तरीके
अध्ययन भी कम रोचक नहीं है (यह भाग सामाजिक-ऐतिहासिक स्थिति
निर्धारित होता है)। कठिन घड़ियों में निर्णय लेने की सामर्थ्य के आधार प
राजनीतिक व्यवस्थाओं को क्रांतिकारी अथवा रूढ़िवादी (रूपांतरण में अक्षम)
संज्ञा दी जाती है।

यदि व्यवस्था में प्रदत्त सामाजिक व्यवस्था के लक्ष्यों एवं मूल्यों में परि
की सामाजिक अपेक्षाएं तथा इन्हें अभिव्यक्ति देने वाले समूहों का अस्तित्व है
यदि सत्ता के अंग समूचे अथवा आंशिक समाज द्वारा मांगे गये परिवर्तन को
में असमर्थ (अथवा अनिच्छुक) हैं तो क्रांतिकारी अथवा संकट की परिस्थि
उत्पन्न होती है। इस परिस्थिति के संभाव्य परिणाम ये हैं .

1. अधिकारी गण युक्तिपूर्वक काम करके अधूरे मन से उठाये गये क़दमों
मांगों को स्वीकार करने का आभास देकर व्यवस्था को औपचारिक
से पुनर्संगठित करें जिससे कि सार रूप से वे समस्याएं, जो कि सिर उ
चुकी थीं, हल न हो पायें;
2. सत्ता के अंग ऐसे निर्णय करें कि सामाजिक व्यवस्था का तात्विक पु
संगठन हो सके;
3. सत्ता समाज की सामाजिक आकांक्षाओं के प्रति आंख मूंद कर बैठ जा
तथा इसके परिणामस्वरूप संकट की स्थिति पूरे समाज में व्याप्त ह
जाये। अस्तु, निर्णय लेने का सिद्धांत समाज के क्रांतिकारी पुनर्संगठन
मूलभूत उत्तरदायित्वों से गुथा हुआ है।

निर्णय लेने के सिद्धांत के कतिपय अनुभववादी अध्ययनों—जिनमें गणिती
पद्धतियों का इस्तेमाल किया गया है—के परिणाम ध्यान देने योग्य हैं। हर्ब
साइमन[8] द्वारा इस समस्या पर 1960 में कई अध्ययन प्रकाशित किये गये
ज्ञातव्य है साइमन मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक प्रक्रियाओं के प्रतिरूप निर्माण के
क्षेत्र में कम्प्यूटर प्रौद्योगिकी के प्रयोग के अग्रणी अमरीकी विशेषज्ञ हैं।

साइमन, जिन्होंने पुनर्गठन एवं प्रबंध की समस्याओं पर 200 से अधिक
प्रबंध अथवा लेख अकेले या अन्य व्यक्तियों के साथ लिखे हैं, स्वचालन की तकनीकी
संभावनाओं के संबंध में अपने विचारों के आधार पर स्वयं को क्रांतिकारी मानते
हैं तथा सामाजिक-आर्थिक संभावनाओं के मूल्यांकन के संबंध में रूढ़िवादी मानते
हैं। वह वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक प्रगति की अपार क्षमताओं का गुणगान करते हैं

8. हर्बर्ट ए॰ साइमन : द न्यू साइंस आफ मैनेजमेंट डिसीजन, न्यू यार्क, 1960

किंतु समाज के भविष्य के बारे में अध्येताओं के भयों की वास्तविकता को स्वीकार करते हुए, इन भयों को दूर करने की हर संभव कोशिश करते हैं तथा विविध सीमित सुधार प्रस्तावित करते हैं .

निर्णय लेने के सिद्धांत पर गणितीय पद्धतियों के प्रयोग की सीमा निर्धारित करने का प्रयास काफी रोचक है। वह निर्णय लेने की प्रक्रिया की तीन अवस्थाओं को अलग करके देखते हैं : (1) जिन समस्याओं पर निर्णय लिये जाते हैं उनकी खोज अथवा 'सूचनात्मक' कार्यवाही , (2) निर्णय लेने के संभावित तरीकों की खोज अथवा 'गठनात्मक' कार्यवाही , (3) विशिष्ट निर्णय का चयन अथवा 'वैकल्पिक' कार्यवाही। साइमन सभी निर्णयों को दो श्रेणियों में रखते हैं—(कम्प्यूटर द्वारा) संयोजित अथवा असंयोजित।

संयोजित निर्णय सामान्यतया व्यक्ति द्वारा सृजनात्मक निवेश की अपेक्षा नहीं करते जबकि इसके विपरीत असंयोजित निर्णय व्यक्ति की सृजनात्मक, बौद्धिक क्षमताओं पर आधारित होते है। संयोजित निर्णय लेने की विधियां नियमों एवं प्रक्रियाओं के विस्तृत अध्ययन पर आधारित होती है। साइमन की दृष्टि में, निर्णय लेने की आधुनिक तकनीक की आवश्यक शर्त आंकड़ों के संसाधन के लिए समस्त उपलब्ध गणितीय पद्धतियों एवं कम्प्यूटर का प्रयोग है।

असंयोजित निर्णय लेने की पारंपरिक विधियां व्यक्ति के चिंतन, उसके अनुभव एवं अंतर्दर्शन पर जोर देती हैं। उदाहरणार्थ युद्ध के दौरान रणनीति संबंधी निर्णय तथा प्रशासनिक नेतृत्व के क्षेत्र के सभी निर्णय असंयोजित होते है। इस प्रकार के निर्णयों के संदर्भ में प्रभावी गणितीय प्रतिरूपों का निर्माण बड़ी सत्ता-सूचक एवं औपचारिक कठिनाइयों से भरा होता है। इन गंभीर कार्यों को गणितीय हल के समायोजित करने का अर्थ यह भी हो सकता है कि समस्या इतनी सरल लगने लगे कि यथार्थ से उसकी कोई समानता ही न रहे। गणितीय पद्धतियों को रामबाण मानने वालों को चेतावनी देते हुए साइमन का कथन है कि बेशक निर्णयों की बड़ी एवं निरंतर विस्तृत होती परिधि में गणित का प्रयोग किया जा सकता है किंतु फिर भी यह निर्णय लेने के संपूर्ण क्षेत्र को व्याप्त नहीं करता।

कुल मिलाकर साइमन सामाजिक-राजनीतिक अध्ययन के क्षेत्र में गणितीय पद्धतियों एवं अन्य रूढ़िबद्ध सिद्धांतों के प्रश्न को सही ढंग से प्रस्तुत करते हैं। सामाजिक घटनाक्रियाओं के गणितीय एवं साइबरनेटिक विश्लेषण में सावधानी बरतने के उनके आह्वान से सहमत हुए बिना नहीं रहा जा सकता क्योंकि सामाजिक-राजनीतिक प्रक्रियाएं बुनियादी तौर पर असंयोजित कठिन कार्यों के समाधान से संबंधित हैं।

अंत में, संगठन सिद्धांत के आगे विकास के बारे में भी दो शब्द कहना

है क्योंकि संगठनों के माध्यम से ही वर्ग एवं अन्य सामाजिक समूह अपने लक्ष्य प्राप्त करते हैं तथा अपने हितों को पूरा करते हैं।

विदेशी समाजशास्त्र में संगठन को एक ऐसी सामाजिक इकाई (अथवा व्यक्तियों के समूह) के रूप में माना जाता है जो कि विशिष्ट लक्ष्यों को क्रियान्वित करने के लिए गठित किया जाता है। संगठनों में दल, सेनाएं, विद्यालय, अस्पताल, चर्च, जेलें आदि सम्मिलित होते हैं। जनजातियों, वर्गों, जातीय समूहों, मैत्री समूहों, परिवारों एवं अन्य सामाजिक समुदायों को संगठन की संज्ञा नहीं दी जाती। संगठनों को सामान्यतया श्रम-विभाजन, विशिष्ट लक्ष्यों की प्राप्ति को प्रोत्साहित करने हेतु सत्ता एवं संचार आदि की अवधारणाओं के माध्यम से व्यक्त किया जाता है। लक्ष्य प्राप्ति की दिशा में एक या एक से अधिक सत्ता केंद्रों द्वारा संगठन को संचालित किया जाना, संगठन की सरचना तथा इसकी प्रभावशीलता बढाने की विधियां; सदस्यता एव इन्हें बदलने की विधियां भी इसे व्यक्त करती हैं।

पिछले कुछ दशको मे पूंजीवादी समाज मे हुए आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक परिवर्तनों बूर्ज्वा राजनीतिक व्यवस्था में कुछ नये प्रयोगों को आवश्यक बना दिया है। खासतौर पर प्रगतिशील नारों—जिनके तहत सामाजिक एव राजनीतिक संघर्ष चलाया जा रहा है—को दुर्बल करने के प्रयासों की ओर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। पहले कभी से ज्यादा निश्चयात्मकता के साथ जन-आदोलनों द्वारा चाहे गये सुधार लागू किये जाते हैं किंतु इन सुधारों का उपयोग सरकारी इजारेदार पूंजीवाद को अभेद्य बनाने के लिए भी किया जाता है।

साथ ही, शासक वर्गों द्वारा संकट के क्षणों में वहशियाना शक्ति के प्रयोग को भी नजरंदाज नहीं किया जा सकता। बूर्ज्वा राजनीतिक व्यवस्था सत्ता की क्रियान्वयन विधियां देश विशेष की विशिष्ट परंपराओं, सामाजिक-राजनीतिक संकट की भयावहता, राजनीतिक शक्ति संतुलन, शासक वर्गों की विशिष्ट ऐतिहासिक स्थितियों, इजारेदार पूंजी के अभ्युदय के खिलाफ़ जन-आदोलनों द्वारा जारी संघर्ष से निर्धारित होती है और होती रहेगी।

विकसित समाजवाद की राजनीतिक व्यवस्था

विकसित समाजवाद एवं जन-राज्य

अब हम सोवियत संघ की राजनीतिक व्यवस्था की पड़ताल करेंगे, इस बात पर आम सहमति है कि अन्य समाजवादी देशों की तुलना में सोवियत संघ में अर्थव्यवस्था, सामाजिक संबंध एवं राजनीति अधिक उन्नत हैं।

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के 24वें अधिवेशन के दस्तावेजों तथा पार्टी के अन्य राजनीतिक दस्तावेजों में हमें विकसित समाजवादी समाज की राजनीतिक व्यवस्था तथा इसके विकास की मूल दिशाओं का आधारभूत वर्णन मिलता है। 24वें अधिवेशन में प्रस्तुत केंद्रीय समिति के प्रतिवेदन में कहा गया है कि "अपनी राजनीतिक व्यवस्था के अतिरिक्त विकास की समस्याएं प्रस्तुत करने एवं उनका समाधान करने तथा विचारधारात्मक प्रश्न उठाने में केंद्रीय समिति का प्रस्थान बिंदु यह है कि पार्टी की नीति वांछित फल तब ही देगी जबकि वह समूची जनता तथा विभिन्न वर्गों एवं सामाजिक समूहों के हितों पर ध्यान देकर उन्हें एक ही सरणि में प्रवर्तित करे।"[1]

यहां न केवल राजनीतिक व्यवस्था की अवधारणा का उपयोग किया गया है बल्कि समूची जनता तथा इसके हिस्सों—वर्गों एवं सामाजिक समूहों—के हितों के अनुरूप इसे विकसित करने की आवश्यकता का संकेत भी दिया गया है। हमारी समस्या के प्रति समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण का यह सार-तत्त्व है।

समाजवादी समाज की राजनीतिक व्यवस्था के विकास को प्रभावित करने वाले कारकों में प्रमुख ये हैं

1. समाज द्वारा विपुल समाधनों—आर्थिक, भौतिक एवं बौद्धिक—का सृजन,
2. समाजवादी समाज में सामाजिक-वर्गीय परिवर्तन;
3. शिक्षा का ऊंचा हुआ स्तर,

1. [illegible] 24वें [illegible] सी पी एस यू, मास्को, 1971, पृ० 87

4. वैज्ञानिक एव प्रौद्योगिक क्रांति का फैलाव तथा प्रशासन के क्षेत्र में इसका उपयोग;

5. अन्य समाजवादी देशों, पूंजीवादी तथा तीसरी दुनिया के देशों के साथ विस्तारित सहयोग;

6. अतरराष्ट्रीय क्षेत्र में वैचारिक संघर्ष।

ये सभी कारक महत्वपूर्ण हैं, किंतु आंतरिक व्यवस्था से संबंधित कारक—विशेषतया आर्थिक, वैज्ञानिक एव प्रौद्योगिक, बौद्धिक, श्रमिक संसाधनों का संचयन, विकसित समाजवाद की सामाजिक संरचना में आये परिवर्तन तथा वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक क्रांति का फैलाव—ही अततः निर्णायक बनते हैं।

समाजवादी समाज के विकास की अलग-अलग अवस्थाएं, दौर एव मात्राएं है। अक्तूबर क्रांति की सफलता के बाद के सरकारी दस्तावेजों में श्रमिक वर्ग द्वारा राजनीतिक सत्ता हासिल करने का उल्लेख मिलता है, 1930 के दशक में समाजवादी समाज की नींव रखी गयी तथा तत्पश्चात् समाजवादी समाज के आधार उभरने लगे; 1950 के दशक में समाजवाद के निर्माण का कार्य पूरा हुआ, तथा अंत में, 1970 के दशक में उन्नत समाजवादी समाज तो क़ायम हुआ ही साम्यवाद के भौतिक एवं तकनीकी आधार के निर्माण का भी सूत्रपात हुआ।

24वें अधिवेशन में प्रस्तुत केंद्रीय समिति के प्रतिवेदन में कहा गया है, "1918 में लेनिन ने अपने देश के भविष्य के रूप में जिस विकसित समाजवादी समाज की ओर संकेत किया था, सोवियत जनता के निःस्वार्थ श्रम द्वारा उसका निर्माण कार्य पूरा कर दिया गया है। पार्टी कार्यक्रम—पिछले अधिवेशनों में निर्धारित—द्वारा साम्यवाद के भौतिक एव तकनीकी आधार निर्मित करने के दुष्कर कार्य में इससे हमें बेहद सहायता मिली है।"[2]

1930 के दशक तक गांवों एवं शहरों में समाजवादी संबंध कायम हो गये थे। उद्योगों एव कृषि के क्षेत्रों में सामाजिक संपत्ति मजबूती के साथ स्थापित हो चुकी थी तथा श्रमिक वर्ग, किसानों तथा बुद्धिजीवी वर्ग के सम्मिलन से नयी सामाजिक संरचना उभरी थी।

किंतु अब की तुलना में तब समाजवादी रूप कम विकसित थे। केवल भौतिक एव तकनीकी आधार ही नहीं अपितु संपूर्ण समाज ही तब भिन्न अवस्था में था। पिछले 40 वर्षों में भौतिक एव बौद्धिक विकास की दृष्टि से समाज एक लंबी दूरी तय कर चुका है। विकसित समाजवाद पुराने समाजवादी समाज की गुणात्मक रूप से नयी अवस्था है। यह अल्पकालिक कार्यों एवं लक्ष्यों को परिभाषित करने का प्रस्थान बिंदु तो प्रस्तुत करता ही है, आर्थिक एव सामाजिक विकास की

2

योजनाएं भी प्रस्तुत करता है।

विकसित समाजवाद की परिभाषा के विभिन्न दृष्टिकोण हैं। ऐसे लोग भी हैं जो विकसित समाजवादी समाज के औद्योगिक उत्पादन के एकदम सही मात्रात्मक आकडे चाहते हैं कि इतना कोयला पैदा हुआ, इतनी बिजली, तेल, गैस तथा प्रति व्यक्ति इतनी मोटर गाड़िया तथा टेलीविजन सैट्स आदि।

यह दृष्टिकोण, प्रौद्योगिक निर्धारणवादी होने के कारण सही नहीं है। इसमें सामाजिक प्रक्रिया की सामाजिक, सांस्कृतिक, सामाजिक-मनोवैज्ञानिक उपलब्धियों—जो कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं— पर विचार के लिए कोई गुजाइश नहीं है। हमारी दृष्टि मे, मात्र औद्योगिक विकास के आकडे सामाजिक विकास को व्यक्त नहीं करते। हमें उन गुणात्मक परिवर्तनों की ओर भी ध्यान देना होगा जिनका कम-से-कम मौजूदा स्थिति में मात्रात्मक माप संभव नहीं है।

दूसरी ओर, उन लोगों से भी सहमत नहीं हुआ जा सकता जो कि मात्रात्मक विवेचन को पूरी तरह नजरदाज करते हैं। पहले दृष्टिकोण पर यदि पांडित्य-प्रदर्शनवाद का आरोप लगाया जा सकता है तो इस दूसरे दृष्टिकोण को मात्र आरेखीय कहा जा सकता है। मात्रात्मक कसौटियां, निर्विवाद रूप से, आर्थिक विकास के स्तर पर एव सामाजिक परिवर्तनों को परिभाषित करने की दृष्टि से बेहद महत्त्वपूर्ण एव उपयोगी होती हैं। इसका स्पष्ट अर्थ है कि विकसित समाजवाद की व्याख्या मात्रात्मक एव गुणात्मक, दोनों ही, रूपों में की जानी चाहिए। समाजवादी समाज के अतीत एव वर्तमान की तुलना तो की ही जानी चाहिए विकसित पूजीवादी देशों के उत्पादन तथा विकास से भी इसकी तुलना की जानी चाहिए।

विकसित समाजवाद साम्यवाद के संक्रमण की एक स्वतंत्र एव दीर्घकालिक अवस्था है—एक ऐसी अवस्था जिसमें स्वयं समाजवाद मे निहित परिवर्तन घटित होते हैं तथा जिसमें वैज्ञानिक-प्राविधिक क्रांति की उपलब्धियां समाजवादी सामाजिक व्यवस्था के लाभों के साथ गुथ जाती हैं। सोवियत समाज ने वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक क्रांति के दौर मे हाल में ही प्रवेश किया है, अत स्वाभाविक है कि उक्त क्रांति पर आधारित सामाजिक जीवन के सभी पक्षों के विकास मे लंबा समय लगेगा।

विकसित समाजवाद की धारणा साम्यवाद की ओर यात्रा मे 'छलांगों' तथा 'कम्यूनों' संबंधी माओवादी अवधारणाओं की विरोधी है क्योंकि ये माओवादी अवधारणाएं इस तथ्य को नजरंदाज करती हैं कि लबे समय तक समाजवाद को अपने आधार पर ही विकसित करते रहना चाहिए। साथ ही ये अवधारणाएं आर्थिक एव सामाजिक जीवन के समाजवादी रूपों की काट-छांट की वकालत करती हैं जिसके परिणाम होते हैं छद्म साम्यवादी (तथा व्यवहार में निम्न मध्य-

वर्गीय एवं अर्द्ध-सामनी) सुधार।

सोवियत अर्थव्यवस्था की उपलब्धियों के विशद विवेचन की यहां आवश्यकता नहीं है। 24वें अधिवेशन में उद्धृत आंकड़ों को प्रस्तुत करना ही काफ़ी होगा: सोवियत अर्थव्यवस्था एक दिन में इतना सामाजिक उत्पादन करती है जिसका मूल्य 200 करोड़ रूबल होता है तथा जो 1930 के दशक के अंत में होने वाले दैनिक उत्पादन से दस गुना अधिक है। ऐसे समय में जबकि अर्थव्यवस्था के सामने समाज की नयी-नयी मांगें आ रही हैं, उत्पादक शक्तियों के विकास के नये अवसर भी, इस परिवर्तित स्थिति द्वारा, प्रस्तुत किये जा रहे हैं। अर्थव्यवस्था अधिक संतुलित एवं तादात्म्यपूर्ण तरीक़े से विकसित हो रही है तथा जनता की ओर से सांस्कृतिक एवं भौतिक उत्पादन की मांग निरंतर बढ़ रही है।

जहां तक गुणात्मक अभिसूचकों का प्रश्न है, हमें ध्यान रखना चाहिए कि सामाजिक जीवन में ऐसी प्रमुख सामाजिक-राजनीतिक अवधारणाएं निहित होती हैं जो कि घटना क्रियाओं की प्रकृति का सार व्यक्त करने के साथ-साथ समाज के लिए महत्त्वपूर्ण प्रश्नों का आधार प्रस्तुत करती हैं। उदाहरण के लिए, जन-राज्य, वैज्ञानिक-प्रौद्योगिक क्रांति, आर्थिक सुधार, सघन अर्थव्यवस्था, सामाजिक एकीकरण, वैज्ञानिक प्रबंध आदि ऐसी अवधारणाएं हैं। विकसित समाजवाद की धारणा विशेष महत्त्व की है: यह सोवियत समाज के आर्थिक, सामाजिक-राज-नीतिक एवं बौद्धिक विकास का समकालीन अवस्था की सार्वभौमिक एवं अत्यंत विशाल चित्रण प्रस्तुत करती है।

इस अवधारणा का केंद्रीय अर्थ यह है कि एक अकेली प्रणाली में उपरिवर्णित समस्त प्रमुख सामाजिक-राजनीतिक अवधारणाओं को समाहित करती है तथा आर्थिक एवं सामाजिक नीति का सैद्धांतिक आधार प्रस्तुत करती है। समाज परिपक्वता का वह स्तर प्राप्त कर चुका है जहां पहुंचकर विस्तृत आर्थिक विकास के स्थान पर सघन आर्थिक विकास, संगतिपूर्ण श्रम तथा राष्ट्रीय समृद्धि का स्तर उठाने के लिए निर्णयों का श्रेष्ठीकरण अपनी ओर ध्यान खींचता है। लेनिन की भविष्यवाणी सर्वविदित ही है कि नये समाज के निर्माण के दौर में ऐतिहासिक अवस्थाएं, काल तथा क़दम होंगे।

साथ ही विकसित समाजवाद राज्य, जनतंत्र एवं समाज के प्रशासन के विकास की एक नयी अवस्था है। कम्प्यूटर प्रौद्योगिकी का व्यापक प्रयोग, विज्ञान की अद्यतन उपलब्धियां (विशेषकर निर्णय लेने में व्यवस्था-विश्लेषण के उपयोग से संबंधित) का प्रयोग, अंतर्ग्रंथित सामाजिक-आर्थिक नियोजन एवं भविष्य का पूर्वानुमान, प्रशासन एवं उसके पर्यवेक्षण में सक्रिय सामाजिक कार्यकर्ताओं एवं समस्त श्रमिक वर्ग की भागीदारी इस नयी अवस्था की विशिष्ट पहचान बनाती है।

प्रशासनिक प्रक्रिया का अध्ययन वृहत् समूहों—श्रमिक वर्ग, किसान वर्ग, बुद्धिजीवी वर्ग—के परिप्रेक्ष्य में तो किया ही जाता है, विभिन्न सूक्ष्म समूहों एवं स्तरों के परिप्रेक्ष्य में भी किया जाता है। इस मायने में 24वें अधिवेशन में इस किस्म के सामाजिक समूहों—महिलाओं, युवाओं तथा अवकाश प्राप्त व्यक्तियों की भूमिकाओं का विश्लेषण मार्क्सवादी चिंतन के विकास के लिए सैद्धांतिक महत्त्व का है। यह विश्लेषण सोवियत समाज की सामाजिक संरचना तथा इसके विकास की प्रवृत्तियों के गहनतर एवं अधिक परिष्कृत विश्लेषण का मार्ग प्रशस्त करता है।

सामाजिक संरचना को विभिन्न दृष्टिकोणों—सामाजिक-वर्गीय, सामाजिक-जनसंख्या शास्त्रीय, सामाजिक-सांस्कृतिक, आदि—से देखा जा सकता है। यहां हम मात्र उन परिवर्तनों का अध्ययन करेंगे जो कि राज्य एवं प्रशासन के दायित्वों की समझ के लिए विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण हैं।

सामाजिक विकास की दृष्टि से सोवियत समाज का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पक्ष उसकी बढ़ती हुई सामाजिक एकरूपता है। यह कहने की आवश्यकता है कि दुर्भाग्यवश अब तक इस प्रक्रिया का समुचित अध्ययन नहीं किया गया है, जबकि विकसित समाजवाद की अवस्था में सामाजिक विकास के समस्त लक्षण यही अपने आपको अत्यंत स्पष्ट रूप में व्यक्त करते हैं। वर्गों का अभिसरण तथा सामाजिक विरोधों की अनुपस्थिति प्रशासन में जनवादी शक्तियों के विकास तथा समस्त कामगर लोगों की विचार-विमर्श एवं निर्णयों के पर्यवेक्षणों में भागीदारी के लिए सर्वोत्तम स्थिति है।

समाज की नेतृत्वकारी सामाजिक-राजनीतिक शक्ति के रूप में श्रमिक वर्ग का समाज की विविध प्रक्रियाओं पर बढ़ता हुआ प्रभाव—जो कि विकसित समाजवाद का एक अन्य लक्षण है—भी काफी महत्त्वपूर्ण है। 1971 के प्रारंभ में श्रमिक वर्ग, जो कि सोवियत संघ की रोजगारयाफ्ता जनसंख्या का 55% था, अब संख्या की दृष्टि से समाज का सबसे बड़ा वर्ग है, इसकी संख्या में निरंतर वृद्धि हो रही है क्योंकि समाज के अन्य स्तरों—विशेषकर किसानों के बीच से—के लोग इसमें प्रवेश कर रहे हैं।

"किसानों का श्रमिक वर्ग के वातावरण में यों तो प्रवेश पहले भी हो चुका था। वर्तमान में, और खासकर भविष्य में, वे पहले की भांति श्रमिक वर्ग एवं कर्मचारी वर्ग के आकार में वृद्धि करेंगे। किसानों का सामाजिक पक्ष भी व्यावहारिक रूप में नवरोन्मुख हो चुका है। गांवों में ऐसे समूहों-जैसे कृषि कर्मियों के गायब—का उदय हो चुका है जो कि श्रम के स्वरूप, जीवन शैली एवं मनोविज्ञान की दृष्टि से श्रमिकों से भिन्न नहीं है।

श्रमिक वर्ग द्वारा सम्पूर्ण समाज का नेतृत्व श्रमिक वर्ग की विचारधारा के

वर्गीय एवं अर्द्ध-मापनी) सुधार।

सोवियत अर्थव्यवस्था की उपलब्धियों के विशद विवेचन की यहां आवश्यकता नहीं है। 24वें अधिवेशन में उद्धृत आंकड़ों को प्रस्तुत करना ही काफी होगा. सोवियत अर्थव्यवस्था एक दिन में इतना सामाजिक उत्पादन करती है जिसका मूल्य 200 करोड़ रूबल होता है तथा जो 1930 के दशक के अंत में होने वाले दैनिक उत्पादन से दस गुना अधिक है। ऐसे समय में जबकि अर्थव्यवस्था के सामने समाज की नयी-नयी मांगें आ रही हैं, उत्पादक शक्तियों के विकास के नये अवसर भी, इस परिवर्तित स्थिति द्वारा, प्रस्तुत किये जा रहे हैं। अर्थव्यवस्था अधिक संतुलित एवं तादात्म्यपूर्ण तरीके से विकसित हो रही है तथा जनता की ओर से सांस्कृतिक एवं भौतिक उत्पादन की मांग निरंतर बढ़ रही है।

जहां तक गुणात्मक अभिसूचकों का प्रश्न है, हमें ध्यान रखना चाहिए कि सामाजिक जीवन में ऐसी प्रमुख सामाजिक-राजनीतिक अवधारणाएं निहित होती हैं जो कि घटना क्रियाओं की प्रकृति का सार व्यक्त करने के साथ-साथ समाज के लिए महत्त्वपूर्ण प्रश्नों का आधार प्रस्तुत करती हैं। उदाहरण के लिए, जन-राज्य, वैज्ञानिक-प्रौद्योगिक क्रांति, आर्थिक सुधार, सघन अर्थव्यवस्था, सामाजिक एकीकरण, वैज्ञानिक प्रबंध आदि ऐसी अवधारणाएं हैं। विकसित समाजवाद की धारणा विशेष महत्त्व की है : यह सोवियत समाज के आर्थिक, सामाजिक-राजनीतिक एवं बौद्धिक विकास का समकालीन अवस्था को सार्वभौमिक एवं अत्यंत विशाल चित्रण प्रस्तुत करती है।

इस अवधारणा का केंद्रीय अर्थ यह है कि एक अकेली प्रणाली में उपरिवर्णित समस्त प्रमुख सामाजिक-राजनीतिक अवधारणाओं को समाहित करती है तथा आर्थिक एवं सामाजिक नीति का सैद्धांतिक आधार प्रस्तुत करती है। समाज परिपक्वता का वह स्तर प्राप्त कर चुका है जहां पहुंचकर विस्तृत आर्थिक विकास के स्थान पर सघन आर्थिक विकास, संगतिपूर्ण श्रम तथा राष्ट्रीय समृद्धि का स्तर उठाने के लिए निर्णयों का श्रेष्ठीकरण अपनी ओर ध्यान खींचता है। लेनिन की भविष्यवाणी सर्वविदित ही है कि नये समाज के निर्माण के दौर में ऐतिहासिक अवस्थाएं, काल तथा क़दम होंगे।

साथ ही विकसित समाजवाद राज्य, जनतंत्र एवं समाज के प्रशासन के विकास की एक नयी अवस्था है। कंप्यूटर प्रौद्योगिकी का व्यापक प्रयोग, विज्ञान की अद्यतन उपलब्धियां (विशेषकर निर्णय लेने में व्यवस्था-विश्लेषण के उपयोग से संबंधित) का प्रयोग, अंतर्ग्रथित सामाजिक-आर्थिक नियोजन एवं भविष्य का पूर्वानुमान, प्रशासन एवं उसके पर्यवेक्षण में सक्रिय सामाजिक कार्यकर्त्ताओं एवं समस्त श्रमिक वर्ग की भागीदारी इस नयी अवस्था की विशिष्ट पहचान बनाती है।

प्रशासनिक प्रक्रिया का अध्ययन बृहत् समूहों—श्रमिक वर्ग, किसान वर्ग, बुद्धिजीवी वर्ग—के परिप्रेक्ष्य मे तो किया ही जाता है, विभिन्न सूक्ष्म समूहों एव स्तरों के परिप्रेक्ष्य में भी किया जाता है। इस मायने मे 24वें अधिवेशन में इस किस्म के सामाजिक समूहों—महिलाओं, युवाओ तथा अवकाश प्राप्त व्यक्तियों की भूमिकाओं का विश्लेषण मार्क्सवादी चिंतन के विकास के लिए सैद्धांतिक महत्त्व का है। यह विश्लेषण सोवियत समाज की सामाजिक सरचना तथा इसके विकास की प्रवृत्तियों के गहनतर एव अधिक परिष्कृत विश्लेषण का मार्ग प्रशस्त करता है।

सामाजिक सरचना को विभिन्न दृष्टिकोणों—सामाजिक-वर्गीय, सामाजिक-जनसख्या शास्त्रीय, सामाजिक-सांस्कृतिक, आदि—से देखा जा सकता है। यहा हम मात्र उन परिवर्तनों का अध्ययन करेंगे जो कि राज्य एव प्रशासन के दायित्वों की समझ के लिए विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण हैं।

सामाजिक विकास की दृष्टि से सोवियत समाज का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पक्ष उसकी बढ़ती हुई सामाजिक एकरूपता है। यह कहने की आवश्यकता है कि दुर्भाग्यवश अब तक इस प्रक्रिया का समुचित अध्ययन नही किया गया है, जबकि विकसित समाजवाद की अवस्था मे सामाजिक विकास के समस्त लक्षण यहीं अपने आपको अत्यंत स्पष्ट रूप मे व्यक्त करते हैं। वर्गों का अभिसरण तथा सामाजिक विरोधों की अनुपस्थिति प्रशासन मे जनवादी शक्तियों के विकास तथा समस्त कामगार लोगों की विचार-विमर्श एव निर्णयों के पर्यवेक्षणों मे भागीदारी के लिए सर्वोत्तम स्थिति है।

समाज की नेतृत्वकारी सामाजिक-राजनीतिक शक्ति के रूप में श्रमिक वर्ग का समाज की विविध प्रक्रियाओं पर बढ़ता हुआ प्रभाव—जो कि विकसित समाजवाद का एक अन्य लक्षण है—भी काफी महत्त्वपूर्ण है। 1971 के प्रारम्भ मे श्रमिक वर्ग, जो कि सोवियत सघ की रोजगारयाफ्ता जनसख्या का 55% था, अब सख्या की दृष्टि से समाज का सबसे बड़ा वर्ग है, इसकी सख्या मे निरंतर वृद्धि हो रही है क्योंकि समाज के अन्य स्तरों—विशेषकर किसानों के बीच से—से लोग इसमे प्रवेश कर रहे हैं।

'किसानों का श्रमिक वर्ग के वातावरण मे यों तो प्रवेश पहले भी हो चुका था। वर्तमान मे, और खासकर भविष्य मे, वे पहले की भांति श्रमिक वर्ग एवं कर्मचारी वर्ग के आकार मे वृद्धि करेंगे। किसानों का सामाजिक पक्ष भी चमत्कारिक रूप से तब्दील हो चुका है। गांवों में ऐसे समूहों-जैसे कृषि यत्रों के चालक—का उदय हो चुका है जो कि श्रम के स्वरूप, जीवन शैली एव मनोविज्ञान की दृष्टि से श्रमिकों से भिन्न नहीं है।

श्रमिक वर्ग द्वारा समूचे समाज का नेतृत्व श्रमिक वर्ग की विचारधारा के

अनुरूप संपूर्ण सामाजिक-आर्थिक संरचना के रूपांतरण तथा शहरों व गांवों मे सामाजिक सपत्ति की स्थापना में व्यक्त होता है। श्रमिक वर्ग का सामाजिक एवं नैतिक आदर्श—साम्यवाद का निर्माण—समूचे समाज के मूलभूत लक्ष्यों को निर्धारित करता है। दल एव राज्य जैसी बुनियादी सामाजिक-राजनीतिक संस्थाएं सार्वभौमिक स्वरूप अर्जित कर चुकने के बाद भी अपनी सामाजिक-वर्गीय अंतर्वस्तु को सुरक्षित रखे हुए हैं।

विकसित समाजवाद का एक अन्य विशिष्ट लक्षण वह प्रक्रिया है जिसे समाज के सतत् बौद्धिकीकरण की संज्ञा दी जा सकती है। हाल ही के दशकों में समाज के शैक्षणिक ढांचे में बेहद महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। 1939 मे उच्च माध्यमिक अथवा माध्यमिक शिक्षा प्राप्त लोगों की संख्या 1 करोड 59 लाख थी, जबकि 1977 मे ऐसे लोगों की सख्या 12 करोड़ 61 लाख हो गयी। इसी काल मे माध्यमिक शिक्षा प्राप्त श्रमिकों की संख्या 30 गुना बढ़ गयी। 1941 एवं 1977 के मध्य राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था मे सलग्न कर्मचारियों के बीच विशेषज्ञों की सख्या मे दस गुना वृद्धि हुई।

सोवियत समाज मे बुद्धिजीवी वर्ग का प्रभाव किस रूप मे बढ़ा है? 1939 में सोवियत संघ मे पूर्ण उच्च शिक्षा प्राप्त लोगों की सख्या 12 लाख थी जो कि बढ़कर 1959 में 38 लाख तथा 1970 मे 83 लाख व 1977 तक 1 करोड़ 25 लाख हो गयी। 1977 मे 3 करोड़ 50 लाख व्यक्ति बुद्धिजीवी वर्ग के संघटक तत्व थे। 1973 मे सर्वोच्च सोवियत के छठे सत्र मे पारित जन शिक्षा अधिनियमों मे वैज्ञानिक एव प्रौद्योगिक क्रांति के दौर में समाज के लिए संस्कृति एवं ज्ञान के स्तरों का ऊंचा उठना प्रतिबिंबित होता है।

बुद्धिजीवी वर्ग की रोजगार संरचना का रूपांतरण भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। इसे अभिनवीकरण बेशक कहा जाये, जटिल बौद्धिक श्रम को दो मुख्य धाराओं मे विभक्त किया जा सकता है—सृजनात्मक एव प्रायोगिक। पहली श्रेणी मे नये वैज्ञानिक एव कलात्मक मूल्यों का सृजन तथा सामाजिक जीवन एवं संगठन आते है तथा दूसरी मे भौतिक मूल्यों के सृजन तथा सामाजिक पालन-पोषण, शिक्षा एव जन स्वास्थ्य के क्षेत्र मे गतिविधि की परिकल्पना की प्रस्तुति आती है। यद्यपि यह विभाजन सर्वविदित है तथापि उक्त सामाजिक कोटि के गुणात्मक परिवर्तनों की पहचान के अवसर प्रदान करता है।

जाहिर है, सामाजिक-राजनीतिक प्रक्रियाओं तथा सांस्कृतिक एवं विचारधारात्मक कार्य के सोद्देश्य प्रबंधन के लिए वृहद संरचना का विशद विवेचन ही पर्याप्त नहीं है बल्कि अलग-अलग सामाजिक समूहों के आंतरिक परिवर्तनों, संपूर्ण संरचना में प्रत्येक समूह के स्थान एवं इनकी सामाजिक मनोवैज्ञानिक विशिष्टताओं पर विचार करना भी आवश्यक है।

देश के भीतर विभिन्न राष्ट्रीयताओं की एकता का मजबूत होना तथा सोवियत जनता का एक नये समुदाय के रूप में क्रमिक गठन सोवियत राज्य के विकास की अत्यंत महत्वपूर्ण अनिवार्यता है। राज्य तथा सोवियत संघ की संघात्मक संरचना के रूप में मजबूत बनाने वाले व्यावहारिक रूपों में यह प्रक्रिया प्रतिबिंबित होती है।

समाजवादी जनतंत्र तथा प्रशासन के विकास की दृष्टि से सामाजिक-राजनीतिक सक्रियतावादियों का उदय विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। इनमें वे व्यक्ति सम्मिलित हैं जिनका सामाजिक दृष्टि से महत्वपूर्ण निर्णय लेने एवं क्रियान्वित करने पर सापेक्ष रूप से अधिक प्रभाव होता है।

श्रमिक वर्ग का सर्वाधिक सक्रिय, प्रगतिशील एवं सचेतन अंश—जैसा कि सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के नियमों में कहा गया है—तथा जिसकी संख्या 1 करोड़ 60 लाख है सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी का अंग है। इसके अतिरिक्त 20 लाख से अधिक व्यक्ति सोवियतों के चुने हुए प्रतिनिधि हैं। श्रमिक संघों, कोम्सोमोल (युवा कम्युनिस्ट संघ) तथा अन्य संगठनों में भी सक्रिय तत्वों का वर्चस्व है। यहां यह रेखांकित करना आवश्यक है कि ये सक्रिय तत्व किन्हीं विशिष्ट वर्गविशेषों से संबद्ध नहीं हैं बल्कि ये सभी वर्गों तथा श्रमिक वर्ग, सामूहिक खेतों पर कार्यरत किसानों एवं बुद्धिजीवी वर्ग के सभी स्तरों से आते हैं।

समाज के अधिक प्रगतिशील तथा सामाजिक-राजनीतिक दृष्टि से अधिक सक्रिय हिस्से—खासकर श्रमिक वर्ग के सर्वाधिक सचेतन हिस्से—पर किया गया भरोसा शेष जन संख्या को प्रभावित करने की श्रेष्ठ क्षमता सुरक्षित करता है। ऐसे विशेष उपायों का किया जाना आवश्यक है जो कि वैज्ञानिक-प्रौद्योगिक क्रांति की अपेक्षाओं के अनुरूप जनसंख्या के समस्त स्तरों की प्रगति की गति को तेज कर सकें।

सामाजिक उत्पादन में बौद्धिक श्रम के निरंतर बढ़ते हुए अनुपात का अर्थ है बोझिल समान अप्रशिक्षित श्रम व कठिन कठोरता तथा अन्ततः समाप्ति। उद्योगों व कृषि में समस्त ऐसे श्रम की मांग घटती जाएगी तथा प्रशिक्षित श्रम अधिक बढ़ेगी। अभी तक यह प्रवृत्ति क्षीण रही है इसका कारण मात्र यह है कि वैज्ञानिक—प्रौद्योगिक क्रांति की अपेक्षाएं पूरी तरह दृष्टिगत नहीं हो पाई हैं।

विकसित समाजवाद की अवस्था में घटित होने वाले सामाजिक परिवर्तनों के क्रम में राज्य एवं प्रशासन को ही अब गंभीर एवं जटिल समस्याओं का सामना करना होता है। पहली है समाजवादी जनतंत्र का विकास—सामाजिक-राजनीतिक सक्रियतावादियों की संख्या में निरंतर वृद्धि तथा विभिन्न स्तरों के एवं स्तरों पर प्रशासन एवं पर्यवेक्षण में निरंतर बढ़ती संख्या में जनता की भागीदारी। प्रबन्ध-[illegible] की बढ़ती जटिलता तथा प्रशासन के [illegible]

उठाना दूसरी समस्या है।

इस समस्या का समाधान समस्त सामाजिक स्तरों एवं वर्गों की राजनीतिक संस्कृति को ऊंचा उठाकर, तथा उन्हें प्रत्येक स्तर पर—कार्यशालाओं, संयत्रों एवं राष्ट्रीय स्तर पर—प्रस्तावित निर्णय संबंधी बहस में शामिल करके तथा उनके हितों एवं मांगों का अध्ययन-विश्लेषण करके ही किया जा सकता है।

सामाजिक परिवर्तन एवं प्रशासनिक सुधार के ये कुछ सामान्य लक्षण हैं जो पहले ही प्रकट होते रहे हैं। अर्थव्यवस्था के विकास तथा आर्थिक क्षेत्रों के अन्तःसंबंधों की बढ़ती हुई जटिलता के माध्यम से प्रशासन मे परिवर्तन एवं सुधार आ रहे हैं, क्योंकि प्रशासन समाज की उदीयमान बौद्धिक क्षमताओं पर आश्रित होता है। उत्पादन एवं नियंत्रण, दोनों मे ही, समस्त सामाजिक स्तरों एवं समूहों की सक्रिय भागीदारी अनिवार्य होती है।

सोवियत राजनीतिक व्यवस्था के विकास की वर्तमान अवस्था की व्याख्या के लिए विकसित समाजवाद की अवधारणा के अतिरिक्त जन-राज्य की धारणा भी प्रारंभिक बिंदु का काम कर सकती है। लेनिन ने समाजवाद की विजय के पश्चात् राज्य को बनाये रखने का सैद्धांतिक औचित्य प्रस्तुत किया तथा इसके सामाजिक आधार में परिवर्तनों की दिशा निर्दिष्ट की। सर्वहारा की तानाशाही को उन्होंने *अल्पमत पर बहुमत की सत्ता देते हुए उन्होंने कहा कि समाजवाद कायम हो जाने पर राज्य एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग के दमन का अस्त्र नहीं रहेगा बल्कि समूचे समाज, सपूर्ण श्रमिक वर्ग की सत्ता का साधन बन जायेगा।* लेनिन समाजवादी राज्य के राष्ट्रीय स्वरूप का उल्लेख (चाहे विस्तार से नहीं) करते हैं: 'राज्य एवं क्रांति' में उन्होंने लिखा कि समाजवाद के अतर्गत "सभी नागरिक एक देश-व्यापी सिंडीकेट मे कार्यरत कर्मचारी एव श्रमिक बन जाते हैं।[3]

सोवियत राज्य के प्रथम सरकारी दस्तावेजों मे इस विचार को व्यक्त किया गया था। लेनिन के नेतृत्व मे लिखित एवं स्वीकृत 1918 के संविधान मे कहा गया था कि सर्वहारा की तानाशाही का उद्देश्य सिर्फ़ संक्रमण काल में बना रहना है—जिस काल मे बुर्ज्वा वर्ग को पूरी तरह दबा दिया जायेगा, मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण को समाप्त कर दिया जायेगा तथा समाजवाद का निर्माण पूरा हो जायेगा। युक्रेन सोवियत के 1918 के संविधान मे, जो कि लेनिन के निर्देशों पर ही आधारित था, मे इस बात पर जोर दिया गया था कि सर्वहारा की तानाशाही का दायित्व है कि *वह समाजवादी सुधारों, तथा शक्तिशाली वर्गों के प्रति* क्रांतिकारी मनोवेगों के सुव्यवस्थित दमन के माध्यम से बुर्ज्वा व्यवस्था का समाजवादी व्यवस्था में रूपांतरित करे, इन दायित्वों के पूरा होने पर तानाशाही

3. वी० आई० लेनिन : कलेक्टेड वर्क्स 473

विलीन हो जाती है जैसे कि अगली व्यवस्था—साम्यवादी—के पूर्ण निर्माण के परिणामस्वरूप राज्य भी विलीन हो जायेगा।

इन विचारों को विकसित करते हुए मिखाइल कालिनिन ने लिखा था, "जैसे जैसे पूंजीवादी संबंधों एवं पूंजीपतियों से मुक्ति मिलती जायेगी तथा जैसे जैसे समाजवादी निर्माण जीत हासिल करता जायेगा वैसे ही क्रमिक रूप से सर्वहारा-राज्य नये अर्थ एवं अंतर्वस्तु (साम्यवाद की आकांक्षाओं) से सपन्न सपूर्ण राष्ट्र के राज्य के रूप मे परिवर्तित होता जायेगा।"[4]

उद्योग एवं कृषि के क्षेत्रों मे समाजवाद क़ायम होने के बाद 1930 के दशक के मध्य मे राजनीतिक रूपो के विकास की ओर विशेष ध्यान दिया गया। 1936 के सविधान से संबंधित बहस के दौरान सर्वहारा की तानाशाही को बनाये रखने के बारे मे प्रश्न उठाया गया। इस प्रश्न का निर्णायक उत्तर तब नही दिया जा सका किंतु यह बात ध्यान देने योग्य है कि स्वयं सविधान सर्वहारा की तानाशाही को अतीत की चीज मानते हुए सोवियत राज्य को श्रमिकों एवं किसानों के राज्य के रूप में परिभाषित करता है। यह राज्य समाजवादी जनतन्त्र में भी कायम रहता है। सोवियत सविधान पार्टी को 'साम्यवादी समाज के निर्माण के सघर्ष मे श्रमिक वर्ग का हिरावल दस्ता"[5] मानता है।

द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के तत्काल के बाद सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के नये कार्यक्रम पर अमल प्रारंभ हुआ। 1947 के नये कार्यक्रम दस्तावेज मे स्पष्ट रूप से कहा गया कि सोवियत सघ मे सर्वहारा की तानाशाही समूचे राष्ट्र के राज्य के रूप मे परिवर्तित हो चुकी है।

सोवियत राज्य—जो कि समूची जनता का राजनीतिक संगठन है—आज भी सर्वहारा के वर्गीय आदर्शों को क्रियान्वित कर रहा है किंतु अब ये आदर्श समस्त कामगर जनता की साझी सपत्ति बन गये हैं। अब ये साम्यवाद निर्मित करने के आदर्श बन गये है। इसी प्रकार यह कहना कि सर्वहारा की पार्टी समस्त जनता की पार्टी बन गयी है यह संकेत नही देता कि इसका वर्गीय चरित्र समाप्त हो गया है बल्कि यह प्रदर्शित करता है कि इसका सामाजिक आधार विस्तृत हो गया है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि साम्यवाद के लिए सघर्ष समूची जनता का सरोकार बन गया है।

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी का कार्यक्रम राष्ट्रीय राज्य का निम्नलिखित विश्लेषण प्रस्तुत करता है

"जनता के सकल्प को व्यक्त करते हुए इसे साम्यवाद के निर्माण के भौतिक एवं

4. एम॰ आई॰ कालिनिन . सिलेक्टेड वर्क्स, खंड 2, मास्को, 1960 पृ॰ 35 (रूसी में)

तकनीकी आधार के निर्माण तथा समाजवादी संबंधों के साम्यवादी रूपांतरण को सयोजित करना है। यह अत्यत आवश्यक है कि राज्य काम एव उपभोग की मात्रा को नियंत्रित करे, जन कल्याण को प्रोत्साहित करे, सोवियत नागरिकों के अधिकारों एवं स्वतत्रताओ तथा समाजवादी कानून व्यवस्था एवं सोवियत संपत्ति की हिफ़ाजत करे। राज्य का दायित्व है कि वह जनता में श्रम के प्रति सचेतन अनुशासन व साम्यवादी दृष्टिकोण पनपाये, देश की सुरक्षा की गारंटी करे, समाजवादी देशों के साथ भाईचारे के सहयोग को बढावा दे, शान्ति का समर्थन करे तथा सभी देशों के साथ सामान्य संबंधों कायम करे।"[6]

समूचे राष्ट्र के राज्य के चरित्र—विशिष्ट गुण-धर्मों एव लक्ष्यों को समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम उस राज्य से इसकी तुलना करें जिसमें कि सर्वहारा की तानाशाही कायम है। संपूर्ण जनता का राज्य निर्विवाद रूपसे बुनियादी रूप से सर्वहारा की तानाशाही का उत्तराधिकारी है। सर्वहारा की तानाशाही में, इसके स्थापित होने के क्षण से ही, सपूर्ण जनता के राज्य के लक्षण निहित होते हैं क्योंकि उसमें श्रमिक वर्ग के ही नहीं अपितु कामगर, किसानों एव बुद्धिजीवी वर्ग के हितो को भी अभिव्यक्ति मिलती है। उसका लक्ष्य समाजवादी आदर्शों के अनुरूप समाज का रूपातरण करना तथा अततः साम्यवाद में संक्रमण की परिस्थिति एवं आधार का निर्माण करना होता है। व्यापक जनतत्र एव समाजवादी व्यवस्था के अनुरूप राजनीतिक संस्थाओं का विकास सर्वहारा राज्य की लाक्षणिक विशेताएं होती हैं। साथ ही उसमें जनता के राज्य की कई विशिष्टताएं निहित होती हैं।

पहला, समूची जनता के राज्य की स्थापना से समाजवादी राज्य—जिसका नेतृत्व श्रमिक वर्ग के हाथ में होता है—का सामाजिक आधार विस्तृत होता है तथा वह समस्त कामगर जनता की वर्गीय एकता का यत्र तथा राष्ट्रीय संकल्प का अस्त्र बन जाता है।

दूसरा, जबकि सर्वहारा की तानाशाही का प्रयोजन समाजवाद का निर्माण होता है, जनता के राज्य का मूल उद्देश्य विकसित समाजवाद को मजबूत करना, साम्यवादका निर्माण करना तथा सामाजिक आत्म-प्रशासन के रूपों को विकसित करना होता है। राज्य के प्रकार्य भी तदनुरूप परिवर्तित होते हैं।

तीसरा, सामाजिक कार्य-व्यापार की विधियों में तात्विक परिवर्तन एवं सुधार हो रहे हैं। सर्वहारा राज्य समाज के भीतर वर्ग-संघर्ष का अस्त्र था, अतः समझाने-बुझाने व शिक्षा की विधियों के साथ-साथ आवश्यकता पड़ने पर विरोधी शोषक वर्गों के खिलाफ़ वर्गीय दबाव एव तानाशाही की विधियों का भी प्रयोग

6. द रोड टू कम्युनिज्म, मास्को, 1[illegible]

किया जाता था। सपूर्ण जनता के राज्य का कार्य-व्यापार जनतात्रिक शिक्षा एव समझाने-बुझाने पर आधारित होता है तथा यद्यपि दबाव को बनाये रखा जाता है किसी वर्ग अथवा सामाजिक स्तर के खिलाफ़ इसे जारी नही रखा जाता। तथापि अतरराष्ट्रीय स्तर पर जनता का राज्य वर्ग-सघर्ष का अस्त्र बना रहता है। अतः यह सेना, गुप्तचर एव प्रति-गुप्तचर सेवाओ जैसे दमन एव प्रतिरक्षा के अस्त्रों को न केवल बनाये रखता है बल्कि उन्हें शक्तिशाली भी बनाता है। इनका प्रयोग साम्राज्यवाद के खिलाफ भी किया जाता है।

विकसित समाजवादी समाज का राजनीतिक व्यवस्था के तत्त्व ये हैं. 1. राजनीतिक सगठन, 2. राजनीतिक एव न्यायिक मानदड, 3. राजनीतिक सबंध, 4. राजनीतिक चेतना।

राजनीतिक सगठन निम्नलिखित उप तत्त्वो से मिल कर निर्मित होते हैं।

1. जन प्रतिनिधियों की सोवियतें जो सोवियत सघ की राजनीतिक नीव निर्मित करती हैं।
2. मार्ग-दर्शक एव नेतृत्वकारी शक्ति के रूप मे सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी।
3 श्रमिक सघ, युवा कम्युनिस्ट लीग, अन्य जन संगठन तथा सामूहिक कार्यशालाए।
4. सोवियत राज्य की आर्थिक-प्रबध सस्थाए।
5. सामाजिक विकास-प्रबध तथा विज्ञान एव सस्कृति के क्षेत्र मे नेतृत्वकारी सस्थाए।
6 सोवियत सघ की विदेश नीति, वैदेशिक संबधों तथा सेना को दिशा निर्देश देने वाली सरकारी सस्थाए।
7. विधिक सस्थाए—पच फैसला, मुख्तारी, पर्यवेक्षण आदि।
8. प्रेस, प्रसारण एव दूरदर्शन सेवाए तथा अन्य जन-संचार माध्यम।

राजनीतिक व्यवस्था के सरचनात्मक तत्त्वो मे विभाजन, चाहे पारपरिक ही क्यों न हो, का सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक महत्त्व है। यह व्यवस्था की विशिष्टताओं—जो प्रत्येक तत्त्व समूह तथा इन समूहों की परिधि के भीतर के निकायो के लक्ष्यों, दायित्वो एव प्रकार्यों के विशिष्ट लक्षणों द्वारा निर्धारित होती हैं—के उद्घाटन मे सहायक होता है।

यह स्पष्ट अभिव्यक्ति लेनिन द्वारा 'वामपथी साम्यवाद : एक बचकाना उग्रवाद' मे वर्णित सोवियत सघ मे सर्वहारा की तानाशाही की राजनीतिक व्यवस्था की कार्य पद्धति मे निहित दृष्टिकोण से मेल खाती है।

लेनिन के अनुसार तानाशाही का उपभोग सर्वहारा वर्ग द्वारा किया जाता है

तकनीकी आधार के निर्माण तथा समाजवादी संबंधों के साम्यवादी रूपांतरण को संयोजित करना है। यह अत्यंत आवश्यक है कि राज्य काम एवं उपभोग की मात्रा को नियंत्रित करे, जन कल्याण को प्रोत्साहित करे, सोवियत नागरिकों के अधिकारों एवं स्वतंत्रताओं तथा समाजवादी कानून व्यवस्था एवं सोवियत संपत्ति की हिफाजत करे। राज्य का दायित्व है कि वह जनता में श्रम के प्रति सचेतन अनुशासन व साम्यवादी दृष्टिकोण पनपाये, देश की सुरक्षा की गारंटी करे, समाजवादी देशों के साथ भाईचारे के सहयोग को बढ़ावा दे, शान्ति का समर्थन करे तथा सभी देशों के साथ सामान्य संबंधों क़ायम करे।"[6]

समूचे राष्ट्र के राज्य के चरित्र—विशिष्ट गुण-धर्मों एवं लक्ष्यों को समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम उस राज्य में इसकी तुलना करें जिसमें कि सर्वहारा की तानाशाही कायम है। संपूर्ण जनता का राज्य निर्विवाद रूपसे बुनियादी रूप से सर्वहारा की तानाशाही का उत्तराधिकारी है। सर्वहारा की तानाशाही में, इसके स्थापित होने के क्षण से ही, संपूर्ण जनता के राज्य के लक्षण निहित होते हैं क्योंकि उसमें श्रमिक वर्ग के ही नहीं अपितु कामगर, किसानों एवं बुद्धिजीवी वर्ग के हितों को भी अभिव्यक्ति मिलती है। उसका लक्ष्य समाजवादी आदर्शों के अनुरूप समाज का रूपांतरण करना तथा अंततः साम्यवाद में संक्रमण की परिस्थिति एवं आधार का निर्माण करना होता है। व्यापक जनतंत्र एवं समाजवादी व्यवस्था के अनुरूप राजनीतिक संस्थाओं का विकास सर्वहारा राज्य की लाक्षणिक विशेताएं होती हैं। साथ ही उसमें जनता के राज्य की कई विशिष्टताएं निहित होती हैं।

पहला, समूची जनता के राज्य की स्थापना से समाजवादी राज्य—जिसका नेतृत्व श्रमिक वर्ग के हाथ में होता है—का सामाजिक आधार विस्तृत होता है तथा वह समस्त कामगर जनता की वर्गीय एकता का यंत्र तथा राष्ट्रीय संकल्प का अस्त्र बन जाता है।

दूसरा, जबकि सर्वहारा की तानाशाही का प्रयोजन समाजवाद का निर्माण होता है, जनता के राज्य का मूल उद्देश्य विकसित समाजवाद को मजबूत करना, साम्यवादका निर्माण करना तथा सामाजिक आत्म-प्रशासन के रूपों को विकसित करना होता है। राज्य के प्रकार्य भी तदनुरूप परिवर्तित होते हैं।

तीसरा, सामाजिक कार्य-व्यापार की विधियों में तात्विक परिवर्तन एवं सुधार हो रहे हैं। सर्वहारा राज्य समाज के भीतर वर्ग-संघर्ष का अस्त्र था, अतः समझाने-बुझाने व शिक्षा की विधियों के साथ-साथ आवश्यकता पड़ने पर विरोधी शोषक वर्गों के खिलाफ़ वर्गीय दबाव एवं तानाशाही की विधियों का भी प्रयोग

6. द रोड टु कम्युनिज़म, मास्को, 1962, पृ० 547-48

किया जाता था। सपूर्ण जनता के राज्य का कार्य-व्यापार जनतात्रिक शिक्षा एवं समझाने-बुझाने पर आधारित होता है तथा यद्यपि दबाव को बनाये रखा जाता है किसी वर्ग अथवा सामाजिक स्तर के खिलाफ इसे जारी नहीं रखा जाता। तथापि अतरराष्ट्रीय स्तर पर जनता का राज्य वर्ग-सघर्ष का अस्त्र बना रहता है। अतः यह सेना, गुप्तचर एव प्रति-गुप्तचर सेवाओ जैसे दमन एव प्रतिरक्षा के अस्त्रों को न केवल बनाये रखता है बल्कि उन्हे शक्तिशाली भी बनाता है। इनका प्रयोग साम्राज्यवाद के खिलाफ भी किया जाता है।

विकसित समाजवादी समाज का राजनीतिक व्यवस्था के तत्त्व ये हैं: 1. राजनीतिक सगठन, 2. राजनीतिक एव न्यायिक मानदड, 3. राजनीतिक सबध, 4. राजनीतिक चेतना।

राजनीतिक सगठन निम्नलिखित उप तत्वो से मिल कर निर्मित होते हैं।

1. जन प्रतिनिधियों की सोवियतें जो सोवियत सघ की राजनीतिक नीव निर्मित करती है।
2. मार्ग-दर्शक एवं नेतृत्वकारी शक्ति के रूप मे सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी।
3. श्रमिक सघ, युवा कम्युनिस्ट लीग, अन्य जन सगठन तथा सामूहिक फार्म-शालाए।
4. सोवियत राज्य की आर्थिक-प्रबध सस्थाए।
5. सामाजिक विकास-प्रबध तथा विज्ञान एव सस्कृति के क्षेत्र मे नेतृत्वकारी सस्थाए।
6. सोवियत सघ की विदेश नीति, वैदेशिक सबधों तथा सेना को दिशा निर्देश देने वाली सरकारी सस्थाए।
7. विधिक सस्थाएं—पच फैसला, मुख्तारी, पर्यवेक्षण आदि।
8. प्रेस, प्रसारण एव दूरदर्शन सेवाए तथा अन्य जन-सचार माध्यम।

राजनीतिक व्यवस्था के सरचनात्मक तत्वो मे विभाजन, चाहे पारपरिक ही क्यों न हो, का सैद्धातिक एव व्यावहारिक महत्त्व है। यह व्यवस्था की विशिष्टताओ—जो प्रत्येक तत्व समूह तथा इन समूहों की परिधि के भीतर के निकायो के लक्ष्यों, दायित्वो एव प्रकार्यों के विशिष्ट लक्षणों द्वारा निर्धारित होती है—के उद्घाटन मे सहायक होता है।

यह स्पष्ट अभिव्यक्ति लेनिन द्वारा 'वामपथी साम्यवाद : एक बचकाना उत्पात' मे वर्णित सोवियत सघ मे सर्वहारा की तानाशाही की राजनीतिक व्यवस्था की कार्य पद्धति मे निहित दृष्टिकोण से मेल खाती है।

तथा यह सोवियतों मे संगठित होती है व इसका नेतृत्व कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) द्वारा किया जाता है। पार्टी का नेतृत्व केंद्रीय समिति करती है जो कि पार्टी अधिवेशन में चुनी जाती है। लेनिन ने इस बात को रेखांकित किया कि सोवियत गणराज्य में पार्टी की केंद्रीय समिति के मार्गदर्शक निर्देशों के बिना कोई भी राज्य-संस्था किसी भी महत्त्वपूर्ण राजनीतिक एवं संगठनात्मक प्रश्न पर निर्णय नही करती।

पार्टी अपने कार्य मे श्रमिक संगठनों पर प्रत्यक्षत. आश्रित होती है। इसके परिणामस्वरूप सर्वहारा तंत्र का उदय होता है। यह तंत्र औपचारिक रूप से कम्युनिस्ट नहीं होता बल्कि लचीला एवं तुलनात्मक रूप से व्यापक आधार वाला होता है जिसके माध्यम से पार्टी श्रमिक वर्ग एव जनता से जुड़ती है तथा जिनके माध्यम से पार्टी के नेतृत्व मे श्रमिक वर्ग की तानाशाही कायम होती है। लेनिन ने श्रमिक संघों के माध्यम से जनता के साथ संपर्क को अपर्याप्त मानते हुए गैर-पार्टी कार्यकर्त्ताओं एवं किसानों के सम्मेलनो जैसी संस्थाओं के महत्त्व को निर्दिष्ट किया। उन्होंने जोर दिया कि पार्टी का सारा काम सोवियतों—जो व्यवसाय के भेदभाव बिना कामगर जनता को एकताबद्ध करती हैं तथा जिनका स्वरूप जनतांत्रिक है—के माध्यम से आगे बढ़ता है।

लेनिन के शब्दों मे, "ऊपर से, तानाशाही के व्यावहारिक क्रियान्वयन की दृष्टि से देखे जाने पर, सर्वहारा राजसत्ता की सामान्य क्रिया-विधि इस प्रकार की है।"[7]

लेनिनवादी पद्धति विज्ञान राजसत्ता की क्रियाविधि तथा समूचे विकसित समाजवादी समाज की राजनीतिक व्यवस्था के विश्लेषण का प्रस्थान बिंदु है।

पारंपरिक विश्लेषण योजना, जो राज्य के अवयवों से प्रारंभ करके पार्टी को विभिन्न संगठनों में से एक मानती है, न्यायिक रूपों पर ध्यान केंद्रित करने वाले न्यायिक साहित्य मे प्रासंगिक हो सकती है। सोवियत समाज की समस्त संस्थाओं के कार्यव्यापार को निर्धारित करने वाली पार्टी जैसी राजनीतिक संस्था की भूमिका को पृथक किये बिना वास्तविक राजनीतिक प्रक्रिया का अध्ययन असंभव है। घरेलू एवं वैदेशिक नीति, इसके क्रियान्वयन की विधियां, कर्मक वर्ग से जुड़े प्रश्न, प्रशासन में जनता की भागीदारी के तरीके—राजनीतिक मति विज्ञान के ये समस्त अनिवार्य पक्ष सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के काम-काज से सीधे जुड़े हुए हैं।

सर्वहारा की तानाशाही के समस्त जनता के राज्य के रूप में रूपांतरण के साथ-साथ, सोवियत समाज की नेतृत्वकारी शक्ति—कम्युनिस्ट पार्टी—की

7. वी० आई० लेनिन : कलेक्टेड वर्क्स, खंड 31, पृ० 47

रूपांतरित हो रही है। यह समूची जनता की पार्टी बन गयी है तथा समाज के जीवन में इसकी भूमिका पहले कभी से अधिक बड़ी हो गयी है। पार्टी के सामाजिक गठन तथा इसके कार्य रूपों एवं विधियों में यह रूपांतरण प्रतिबिंबित होता है।

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी जनता को आगे बढ़ने के लिए स्पष्ट वैज्ञानिक कार्यक्रम से लैस करती है तथा समाज को राजनीतिक नेतृत्व प्रदान करने के साथ-साथ आर्थिक-सांस्कृतिक निर्माण के लिए भी नेतृत्व प्रदान करती है। वर्तमान अवस्था में पार्टी के काम काज पर व्यवहृत किये जाने पर 'राजनीतिक नेतृत्व' की अवधारणा विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण बन जाती है। वह यह मानकर चलती है कि पार्टी का ध्यान इन बिंदुओं पर केंद्रित है : (1) वैज्ञानिक आधार वाली नीति विकसित करने तथा उक्त नीति के क्रियान्वयन के लिए काम को संगठित करने पर, (2) संगठित सदस्यों को प्रशिक्षित करने व उन्हें बढ़ावा देने पर; (3) प्रशासन के वैज्ञानिक सिद्धांतों एवं विधियों का निर्धारण—प्रशासन तंत्र की विभिन्न कड़ियां एवं जनता की पहल की व्यापक स्वतंत्रता को स्थापित करते हुए; (4) संपूर्ण पर्यवेक्षकीय नियंत्रण—आदि पर।

विकसित समाजवादी समाज में सभी क्षेत्रों—आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं वैदेशिक—में वैज्ञानिक आधार वाली नीति का विकास पहली अनिवार्यता है। सामाजिक विकास की बढ़ती हुई जटिलता, वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक क्रांति का प्रस्फुटन, विश्व शांति की नियति एवं राष्ट्रों की सुरक्षा की दृष्टि से सोवियत राज्य की बढ़ी हुई भूमिका एवं जिम्मेदारी, विश्व के सभी राज्यों के साथ आर्थिक, वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक तथा सांस्कृतिक संबंधों का विकास, साम्राज्यवाद के खिलाफ संघर्ष—इन सबके कारण राजनीतिक नीति एवं मूलभूत राजनीतिक निर्णयों का विकास असाधारण रूप से महत्त्वपूर्ण बन गया है।

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के 24वें अधिवेशन ने सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं अंतरराष्ट्रीय नीति से संबंधित विभिन्न प्रमुख समस्याओं के समाधान के सृजनात्मक दृष्टिकोण का उदाहरण प्रस्तुत किया। जारी वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक क्रांति तथा आर्थिक सुधार लागू करने की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर तथा जनता के कल्याण में वृद्धि के उद्देश्य से नयी पंचवर्षीय योजना तैयार की गयी। 24वें अधिवेशन में स्वीकृत शांति कार्यक्रम अंतरराष्ट्रीय क्षेत्र में उन बड़े परिवर्तनों का आधार रहा है जो अंतरराष्ट्रीय तनाव को कम करते हैं तथा अणु-नाभिकीय विश्वयुद्ध को रोकते है।

विकसित समाजवाद की अवस्था में, वैज्ञानिक सिद्धांतों पर आधारित समन्वय केंद्र के रूप में सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी का कार्य-व्यापार—समाजवादी राजनीतिक व्यवस्था के सभी संगठनों एवं संस्थाओं की अंतःक्रिया—भी बेहद

के अनुरूप प्रशासनिक सुधार के उपायों का समग्र समुच्चय विकसित किया है, जो सभी संगठनों—राज्य, आर्थिक, सामाजिक के कार्य-व्यापार को समन्वित करती तथा उनके प्रयत्नों को समान लक्ष्यों की प्राप्ति की दिशा में संचालित करता है।

देश की वैदेशिक नीति निर्धारित करने एवं उसे क्रियान्वित करने में पार्टी—तथा उसके प्रमुख अंग केंद्रीय समिति—की भूमिका और भी महत्त्वपूर्ण हो गयी है। यह भूमिका विश्व कम्युनिस्ट एवं श्रमिक आंदोलन में, अन्य समाजवादी देशों की कम्युनिस्ट एवं श्रमिक पार्टियों की जमात में सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के स्थान से निर्धारित होती है। यह भूमिका संघर्ष में राष्ट्रों के समान हितों की रक्षा करने में तथा अंतरराष्ट्रीय संबंधों की संपूर्ण व्यवस्था को सुधारने की सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी की सामर्थ्य की अंतरराष्ट्रीय स्वीकृति से भी निर्धारित होती है। अंत में, यह भूमिका इस तथ्य से भी निर्धारित होती है कि पार्टी के अंग ही सोवियत राज्य के विभिन्न वैदेशिक नीति संबंधी संगठनों कार्यव्यापार को समन्वित करने, उनके काम को नियोजित करने तथा उनके प्रयत्नों को समन्वित करने के उपकरण हैं।

राज्य एवं आर्थिक प्रशासनिक तंत्र पर सार्वजनिक नियंत्रण कायम करने से संबंधित पार्टी की भूमिका में समुचित वृद्धि हुई है। अतः सभी संगठनों, अधिकारियों एवं देश की समस्त कामगर जनता से पार्टी अधिक उत्तरदायित्वपूर्ण आचरण की अपेक्षा रखती है।

सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी की सामाजिक बनावट इस तथ्य को प्रतिबिंबित करती है कि यह समस्त जनता की पार्टी बन रही है हालांकि समाज में श्रमिक वर्ग की नेतृत्वकारी भूमिका अभी भी क़ायम है।

सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी के 1 करोड़ 60 लाख सदस्य हैं—41.6% श्रमिक, 13.9% सामूहिक किसान, 20% तकनीकी बुद्धिजीवी वर्ग के सदस्य, 24% से कुछ अधिक वैज्ञानिक, कलाकार, सार्वजनिक शिक्षा एवं स्वास्थ्य कर्मी तथा सेना से।

पार्टी में आंतरिक जनवाद का सख्त पालन व उसका सुसंगत विकास एवं पार्टी जीवन के लेनिनवादी आदर्शों का क्रियान्वयन पार्टी-चिंतन में केंद्रीय स्थान रखते हैं। अधिवेशन ने इस दिशा में उठाये जाने वाले क़दमों को भी निर्दिष्ट किया—जैसे, कम्युनिस्टों की सक्रियता को बढ़ाना, केंद्र में व स्थानीय स्तर पर सामूहिक नेतृत्व के सिद्धांत को मजबूत करना, नेतृत्व के चुनाव एवं जवाबदेही के सिद्धांत को मजबूत करना, केंद्रीय समिति एवं स्थानीय पार्टी संगठनों के महाधिवेशनों की भूमिका में वृद्धि करना तथा पार्टी के भीतर सूचना प्रवाह में सुधार करना, आदि।

पार्टी के आंतरिक जनवाद के विकास का अर्थ है पार्टी के अंदर अनुशासन

अनिवार्यतः क़ायम हो। लेनिनवादी पार्टी के सिद्धांत हैं : वास्तविक जनवाद, प्रत्येक मसले पर विचार-विमर्श में अपनी राय रखने की स्वतंत्रता तथा बहुमत के संकल्प को व्यक्त करने वाले निर्णयों के लिए जाने के बाद लौह अनुशासन।

अधिवेशन ने संगठित सदस्यों के चयन, उनका स्थान निर्धारण एवं प्रशिक्षण की समस्या पर भी विचार किया। नेतृत्वकारी सदस्यों की सुधरी हुई गुणवत्ता पर ग़ौर करते हुए अधिवेशन ने भविष्य में भी इसकी आवश्यकता को निर्दिष्ट किया। साथ ही पुराने सदस्यों का खयाल रखने के अतिरिक्त उनके अनुभव एवं ज्ञान का श्रेष्ठ उपयोग करने, युवा एवं होनहार व्यक्तियों को आगे बढ़ाने, उच्च राजनीतिक चेतना तथा व्यावसायिक प्रशिक्षण से सपन्न व्यक्तियों—जो अर्थ-व्यवस्था एवं संस्कृति की समस्याओं का दृष्टिवान समाधान करने में समर्थ हैं तथा जो प्रशासन की आधुनिक विधियों से परिचित हों—को आगे लाने पर भी ज़ोर दिया। यह रेखांकित किया गया कि जुझारू सदस्यों से संबंधित काम व्यक्तियों के प्रति सम्मान एवं विश्वास के साथ-साथ उनके प्रति सिद्धांतनिष्ठ कड़ेपन तथा उत्तरदायित्व की गंभीर भावना पर आधारित होता है तभी काम के प्रति गंभीरता तथा सहयोग का वातावरण बनता है जो कि कर्मियों को अपनी क्षमताएं प्रदर्शित करने के अवसर प्रदान करता है।

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी का संपूर्ण जनता की पार्टी में रूपांतरण न केवल इसकी सामाजिक बनावट में बल्कि इसकी कार्य-विधियों में भी प्रतिबिंबित होता है। ये विधियां दिनोंदिन और अधिक जनवादी होती जा रही हैं तथा कामगर जनता की पहल एवं स्व-प्रेरणा पर पहले से अधिक भरोसा करती हैं।

केंद्रीय एवं स्थानीय पार्टी समितियों के सत्रों में बड़ी संख्या में कम्युनिस्ट एवं ग़ैर-पार्टी सक्रिय कार्यकर्त्ताओं की भागीदारी में, तथा बड़े अधिवेशनों में पार्टी नीति संबंधी अत्यंत महत्त्वपूर्ण प्रश्नों की परीक्षा में तथा कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम जैसे मूलभूत पार्टी दस्तावेज़ों पर राष्ट्रव्यापी बहस में उक्त तथ्य को व्यावहारिक रूप से देखा जा सकता है।

श्रमिक वर्ग तथा कामगर जनता के सर्वाधिक सक्रिय एवं सचेतन व्यक्तियों को एकताबद्ध करने से पार्टी में गतिरोध तो उत्पन्न नहीं ही होता बल्कि इसके विपरीत वह ग़ैर-पार्टी व्यक्तियों की. आत्मप्रेरणा का बढ़ावा देती है तथा उन्हें नेतृत्वकारी पदों पर आगे बढ़ाकर उनकी राय का सम्मान करती है। पार्टी की जनता के साथ अपने संबंध सुदृढ़ करने की दिलचस्पी का कारण ऐसा करने में समाजवाद की सफलता का सुनिश्चित होना निहित है। सबंधों की यह मज़बूती संपूर्ण सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था में जनवाद के विकास को आगे बढ़ाती है।

अपने बीसवें-पच्चीसवें अधिवेशनों में सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी

ने समाजवादी जनवाद को अपनी नीति की नींव घोषित किया। इस नीति को
कार्यरूप देते हुए पार्टी समाज की प्रगतिशील गति को बाधित करने वाली
अराजकतावादी एवं नौकरशाही प्रवृत्तियों से संघर्ष करती है। सोवियत संघ में
इन घटना-क्रियाओं के सामाजिक आधार जो शोषण पर आधारित व्यवस्था में
निहित थे, तो विलुप्त हो चुके हैं किंतु अभी तक उनके अवशेषों को पूरी तरह
ध्वस्त नहीं किया जा सका है।

समाजवाद के अंतर्गत अराजकतावादी प्रवृत्तियां कुछ लोगों द्वारा केंद्रीयता-
वाद को शीर्ष स्थान पर रखने की आवश्यकता तथा स्वशासन के अस्वीकार एवं
राष्ट्रवाद के अवशेषों में अभिव्यक्ति मिलती है। जैसे ही स्थानीय संगठनों के
अधिकारों एवं भूमिका में वृद्धि हो गयी है वैसे ही निचले स्तर के कुछ कर्मियों ने
राष्ट्रीय हितों के सामने ऐसे स्थानीय हितों को रखने की इच्छा दर्शायी है जो कि
सुविचारित व सही नहीं माने जा सकते। पार्टी, जो कि समाजवादी समाज की
समस्त राष्ट्रीयताओं एवं वर्गों के हितों को व्यक्त करती है, इन केंद्रापसारी
प्रवृत्तियों की यथाक्रम एवं सफलतापूर्वक काट कर सकती है। ये प्रवृत्तियां समाज-
वादी समाज के लिए एकदम खतरनाक हैं।

तानाशाही घटनाक्रियाएं—समाजवाद की प्रकृति की दृष्टि से असंगत एवं
उसकी विरोधी—अतीत के सबसे खतरनाक एवं दुराग्रही अवशेष हैं। जनता की
अंतःप्रेरणा का अधिकतम विकास समाजवाद की अनिवार्य शर्त है। नौकरशाही
का वर्चस्व जनता की अंतःप्रेरणा को जकड़कर अधिकारियों एवं जनता के मध्य
एक खाई पैदा कर देता है। नौकरशाहवाद का झुकाव कम्युनिस्ट निर्माण की
पद्धतियों की विकृत समझ के कारण आदेश, दबाव एवं हठधर्मिता की ओर होता
है। नौकरशाह की जनता में कोई आस्था नहीं होती अतः वह उनकी मांगों एवं
जरूरतों के प्रति कोई सहानुभूति प्रदर्शित नहीं करता। पहले की तरह अब भी,
कम्युनिस्ट पार्टी नौकरशाही घटना क्रियाओं के खिलाफ निरंतर संघर्षरत रहकर
इस मामले में कामगर जनता के व्यापक हिस्सों को अपने साथ लेती है।

सोवियत राज्य की सर्वाधिक महत्वपूर्ण राजनीतिक संस्थाओं में प्रतिनिधियों
की सोवियतें हैं जो कि सोवियत संविधान के अनुसार सोवियत राज्य का राज-
नीतिक आधार निर्मित करती हैं। सोवियतों की बनावट के संबंध में आंकड़े आगे
दिये जा रहे हैं जो कि सोवियत समाज में आये परिवर्तनों को प्रतिबिंबित करते
हैं।

1975 में कामगर जनता के प्रतिनिधियों की सोवियत व्यवस्था 50,000
से अधिक सोवियतों द्वारा निर्मित थी, जिसमें निम्नलिखित सम्मिलित थीं:
सोवियत संघ की सर्वोच्च सोवियत तथा गणराज्यों की सर्वोच्च सोवियतें 15,
... गणराज्यों की सर्वोच्च सोवियतें 20 तथा स्थानीय सोवियतें 50,437।

इस सख्या मे 6 प्रादेशिक सोवियतें, 120 क्षेत्रीय सोवियतें, 8 स्वायत्त क्षेत्रों की सोवियतें, 10 राष्ट्रीय क्षेत्रो की सोवियतें, 3,003 जिला, 2 006 नगर, 558 नगर-जिला, 41, 128 ग्राम तथा 3,598 बस्ती सोवियतें सम्मिलित हैं।

1966 मे सर्वोच्च सोवियत के सातवें चुनावो के दौरान निर्वाचन क्षेत्रो की सख्या स्थायी कर दी गयी थी। इसमें सघीय परिषद के चुनाव के लिए 767 स्थान तथा राष्ट्रीयताओं की परिषद के लिए 750 स्थान निश्चित किये गये थे।

सोवियत सघ की छठी सर्वोच्च सोवियत के लिए 1962 मे निर्वाचित प्रतिनिधियों मे 23.5% औद्योगिक श्रमिक थे जबकि सातवी सर्वोच्च सोवियत मे 26·6% थे। आठवी सर्वोच्च सोवियत मे 481 श्रमिक प्रतिनिधि थे (31 7%) तथा कोल्खोज किसानों को मिलाकर ये कुल प्रतिनिधियो के 50.3% थे।

स्थानीय सोवियतो में श्रमिक प्रतिनिधियो की सख्या 1959 में 18 9%, 1967 मे 29.6%, 1969 मे 35%, 1971 मे 36 5% तथा 1973 मे 39.3% थी।

सातवी सर्वोच्च सोवियत मे 428 महिला प्रतिनिधि (28%) चुनी गयी। सघ गणराज्य एव स्वायत्त गणराज्यों की सर्वोच्च सोवियतो मे 34% स्थान महिलाओं के पास थे। अब तक स्थानीय सोवियतों मे 84 लाख 50 हजार (समस्त प्रतिनिधियो का 43%) महिलाएं चुनी गयी है।

1950 के दशक मे सोवियत सघ की सर्वोच्च सोवियत मे 30 वर्ष से कम उम्र के प्रतिनिधि 6.4% प्रतिशत थे, 1970 के दशक म यह सख्या 18 5% हो गयी।

सोवियत सघ की सर्वोच्च सोवियत मे प्रतिनिधियों की कुल सख्या 1517 (750 राष्ट्रीयताओं की परिषद मे तथा 767 संघीय परिषद मे) है। श्रमिक प्रतिनिधियो की सख्या 498 (32 8%) है तथा कोल्खोज किसानो की 271 (17.9%), महिलाओं की 475 (31.3%), तीस वर्ष से कम उम्र के प्रतिनिधियों की 182 (20%), कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्यों तथा परिवीक्षाधीन सदस्यों की संख्या 1,096 (72.2%) तथा गैर सदस्यो की सख्या 421 (27.8%) है। सर्वोच्च सोवियत के प्रतिनिधि 61 राष्ट्रीयताओ का प्रतिनिधित्व करते हैं।

स्थानीय सोवियतों के प्रतिनिधियों की कुल सख्या 2,210, 824 है जिसमे 1, 147, 190 (51 9%) पुरुष हैं तथा 1,063, 634 (48 1%) महिलाएं हैं : 967, 906 (43 8%) कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य एव परिवीक्षाधीन सदस्य हैं तथा 1, 242, 918 (50 2%) गैर-पार्टी सदस्य हैं, 896, 374 (40 5%) श्रमिक हैं, 600, 833 (27.2%) कोल्खोज किसान हैं, 664, 833 (30.1%) तीस साल से कम उम्र के हैं तथा इनमें से 413, 356

सोवियत संघ की सर्वोच्च सोवियत के चुनावों के परिणाम

चुनाव	तिथि	निर्वाचन क्षेत्र की संख्या	पंजीकृत मतदाता	मत डाले गये	प्रतिशत
1	12 दिसंबर 1937	1,143	93,639,478	90,319,346	96.5
2	10 फरवरी 1946	1,339	101,717,686	101,450,936	99.7
3	12 मार्च 1950	1,316	111,116,373	111,090,010	99.98
4	14 मार्च 1954	1,347	120,750,816	120,727,826	99.98
5	12 मार्च 1958	1,378	133,876,325	133,796,091	99.97
6	18 मार्च 1962	1,443	140,022,859	139,957,869	99.47
7	14 अप्रैल 1966	1,517	144,000,973	143,917,031	99.94
8	14 अप्रैल 1970	1,517	153,237,112	153,172,213	99 96
9	16 अप्रैल 1974	1,517	161,724,222	161,689,612	99.98

स्थानीय सोवियतों के प्रतिनिधियों का वर्गीय पार्श्व चित्र

प्रतिनिधि	1959	1963	1965	1967	1969	1971	1973
प्रतिनिधियों की कुल संख्या	1,801,663	1,958,665	2,010,540	2,045,277	2,070,539	2,165,037	2,193,086
श्रमिक	338,627	527,287	579,074	605,373	725,357	790,340	862,736
प्रतिशत	18.8	20.9	28.8	29.6	35.0	36.5	39 3
सामूहिक किसान	778,323	688,940	669,846	640,020	606,097	623,405	613,728
प्रतिशत	43.2	35.2	33.3	31.3	29.3	28 8	28.0
कुल श्रमिक एवं सामूहिक किसान	1,116,950	1,216,227	1,248,920	1,245,393	1,331,454	1,413,745	1,426,404
प्रतिशत	62.0	62.1	62.1	60.9	64.3	65.3	67.3

को सर्वोच्च सोवियत तक के—सत्ता के अगों के गठन में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। ऐसे देश में जहां जनता नैतिक व राजनीतिक दृष्टि से एक है, एक पार्टी —कम्युनिस्ट पार्टी—चुनाव प्रचार करती है, यही नहीं ग़ैर-पार्टी प्रत्याशियों के साथ प्रचार करती है। सोवियत संघ के चुनाव कानून में चुनाव प्रचार की सभी अवस्थाओं में समस्त जनता की भागीदारी का प्रावधान है। सार्वजनिक सगठनों, पार्टी, श्रमिक संघों, सहकारी सगठनों तथा युवा सगठनों को प्रत्याशियों को प्रस्तावित करने का अधिकार है। चुनाव सपन्न कराने के लिए चुनाव आयोग का गठन श्रमिकों, सफ़ेदपोशों, सामूहिक किसानों एवं सैनिकों के प्रतिनिधियों को मिलाकर होता है। उनका कार्य जनवाद के सिद्धांतों पर आधारित होता है, वे प्रशासनिक निकायों के दबाव अथवा हस्तक्षेप के बिना सह-शासित रूप से कार्य करते हैं। चुनाव आयोग क़ानून के अनुरूप सभी प्रत्याशियों को पंजीकृत करता है।

अपने प्रतिनिधियों पर जनता के नियत्रण को सुनिश्चित रखने के लिए, सोवियत सविधान में चुने हुए प्रतिनिधियों को वापस बुलाने के अधिकार की भी व्यवस्था है। हाल ही में एक विशेष अधिनियम 'प्रतिनिधि के बारे में' पारित किया गया था जिसमें चुने हुए प्रतिनिधियों को वापस बुलाने की प्रक्रिया का विशद विवेचन किया गया है।

समाजवादी जनवाद में चुने हुए प्रतिनिधियों पर मतदाताओं का नियत्रण चुनाव से प्रारंभ होता है, वहीं समाप्त नहीं होता। चुने हुए प्रतिनिधि को अपने मतदाताओं के प्रति भी जवाबदेही होती है है। ये प्रतिनिधि अपने मतदाताओं से निरंतर मिलते रहते हैं तथा अपने काम (तथा उस निकाय के काम के बारे में भी जिसके लिए वे चुने गये हैं) के बारे में जानकारी देते रहते हैं। इन जानकारियों पर गभीरता से बहस की जाती है। यह चुने हुए प्रतिनिधि के लिए तो मूल्यवान होती ही है, जनता की सक्रियता को भी बढ़ाती है। जवाबदेही का सिद्धांत इन प्रतिनिधियों पर ही लागू नहीं होता अपितु सोवियतों द्वारा चुने गये अथवा नियुक्त सभी अगों पर लागू होता है। कार्यकारी समितियों द्वारा सोवियतों को समय-समय पर दी जाने वाली रपटें भी महत्त्वपूर्ण होती हैं। ये रपटें कार्यकारी समितियों की गतिविधियों की विस्तृत जानकारी प्रदान करती हैं। इसके पश्चात् विभिन्न शाखाओं के सभी अधिकारियों के कार्यों का सोवियत द्वारा सही मूल्यांकन किया जाता है जो कि बेहतर कार्यकारी कार्यव्यापार को बढ़ावा देता है।

पिछले कई वर्षों के दौरान गणराज्यों की सर्वोच्च सोवियतों की भूमिका में बेहद वृद्धि हुई है। गणराज्यों एवं सत्ता के स्थानीय निकायों को बहुत से उद्यम सौंपे गये। उद्योग एवं निर्माण की कई समस्याओं पर निर्णय स्थानीय निकायों को स्थानांतरित किये जाने के परिणामस्वरूप आर्थिक प्रबंध में संलग्न व्यक्तियों की

संख्या एकदम बढ़ गयी है तथा प्रशासन में जनता की भागीदारी भी और अधिक व्यापक हो गयी है।

सोवियत राज्य में सार्वजनिक संगठन एक महत्वपूर्ण राजनीतिक संस्था निर्मित करते हैं। समाज के जीवन एवं राज्यतंत्र पर उनका प्रभाव कम-से-कम तीन कारकों पर निर्भर करता है : (1) संगठन की बनावट पर—कि किस सीमा तक यह जनता को सम्मिलित करता है; (2) संगठन के सदस्यों की सक्रियता पर तथा इसमें जनवाद की मात्रा पर, (3) सामाजिक संगठनों की शक्तियों, अधिकारों व दायित्वों की सीमा पर।

सामाजिक संगठनों में सदस्यों की संख्या मे निरंतर वृद्धि हो रही है। 1918 मे श्रमिक संगठनों के 23 लाख सदस्य थे, 1949 में 2 करोड़ 85 लाख तथा 1970 में 10 करोड़ सदस्य थे। 1918 में कोम्सोमोल में 20 हजार सदस्य थे, 1936 में लगभग 40 लाख, तथा जो 1976 में 3 करोड़ 50 लाख हो गये। यदि हम व्यवसायिक संगठनों, खेल-कूद व अन्य संगठनों को इसमें जोड़ दें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि वर्तमान में समूची वयस्क जनसंख्या किसी-न-किसी संगठन से संबद्ध है।

अतः सार्वजनिक संगठनों के भीतर अंतःप्रेरणा व प्रतिबद्धता विकसित करना प्राथमिक महत्व का दायित्व है। साथ ही समस्त सदस्यों को सक्रिय बनाना एवं जनवादी सिद्धांतों, जिन पर ये संगठन आधारित हैं, को विकसित करना भी आवश्यक है। इस दिशा में कम्युनिस्ट पार्टी के प्रयत्नों के परिणाम श्रमिकसंघों, कोम्सोमोल, सोवियत लेखकों, पत्रकारों, संगीतज्ञों एवं अन्य के नियमित सम्मेलनों में तो दिखायी पड़ते ही हैं, संभागियों की बढ़ती हुई सक्रियता तथा सम्मेलनों मे निर्वाचित समितियों के स्वशासित कार्यव्यापार में भी दिखायी पड़ता है। सार्वजनिक संगठनों के कार्यों, अधिकारों की व्यापकता तथा इसके परिणामस्वरूप इनमें संगठित जनता की अंतःप्रेरणा, सक्रियता एवं सृजनात्मक प्रयत्नों में हुई वृद्धि अत्यंत महत्वपूर्ण है।

सोवियत राजनीतिक व्यवस्था की एक खास विशेषता जनवाद के विभिन्न रूप हैं जो प्रशासन तंत्र पर नागरिकों द्वारा प्रत्यक्ष नियंत्रण (निर्वाचित अंगों द्वारा ही नहीं) की अनुमति प्रदान करते हैं तथा जो सत्ता के निकायों एवं जनता के संबंधों को सुदृढ़ बनाते हैं। प्रत्यक्ष जनतंत्र के रूपों में प्रमुख ये हैं : प्रस्तावित विधि निर्माण, आर्थिक योजनाओं एवं अन्य महत्वपूर्ण सरकारी दस्तावेजों पर सामूहिक बहस; कामगर जनता की उद्यम-प्रबंधों के कार्य व्यापार की पर्यवेक्षण में तथा सामूहिक कार्यशालाओं की समस्याओं के समाधान में भागीदारी; अधिकारियों द्वारा नागरिकों के प्रतिवेदनों की प्रस्तुति; नागरिकों का स्वागत करने तथा उनके प्रस्तावों, शिकायतों एवं दावों पर विचार करने की अनिवार्यता;

राष्ट्रीय प्रेस मे नागरिको की भागीदारी—स्थानीय श्रमिकों एवं किसानों के समाचार पत्रो द्वारा तात्कालिक निरीक्षण मे; जन-नियंत्रण—उपभोक्ताओ, खरीदारो तथा सेवा प्रतिष्ठानो के ग्राहकों के सम्मेलनों के माध्यम से।

इन रूपो का विकास सोवियत व्यवस्था के आगे सुधार की प्रमुख दिशा का सकेत देता है। यह प्रक्रिया दो पद्धतियो मे व्यक्त होती है। एक ओर जनता के रहन-सहन व सस्कृति मे उन्नति के साथ-साथ समस्त नागरिको के अपने राजनीतिक-सामाजिक अधिकारो के उपभोग के अवसर भी बढ़ते हैं। दूसरी ओर यह अवसर इसलिए भी बढ़ता है क्योंकि राज्य प्रशासन मे जनता को सम्मिलित करने हेतु पुरानी पद्धतियो को निर्दोष बना रहा है तथा नयी पद्धतियो को क्रियान्वित कर रहा है। पिछले वर्षों के दौरान कम्युनिस्ट निर्माण एवं सोवियत राज्य के कानूनों के प्रारूपो से सबधित प्रश्नो पर राष्ट्रीय बहस नियमित व्यवहार का अग बन गया है। जनता की सामूहिक भागीदारी के ऐसे रूप लाखों लोगों के अनुभव को समृद्ध बनाते हैं तथा जनता की अत प्रेरणा को बढावा देते हैं।

सोवियत सघ की राजनीतिक व्यवस्था की प्रभावशाली सस्थाओ मे प्रेस भी है जो कि जनमत की अभिव्यक्ति का तथा कम्युनिस्ट लोकाचार को स्वरूप देने का असरदार माध्यम है। बड़ी सख्या मे जो पत्र-पत्रिकाए प्रकाशित होती हैं वे राज्य द्वारा नहीं अपितु सार्वजनिक सगठनों—पार्टी, श्रमिक सघो, व्यावसायिक सघो तथा सहकारी सघों—द्वारा सचालित होती है। अर्थ-व्यवस्था, सस्कृति एवं विज्ञान की समस्याओ के बारे मे विचारो का व्यवस्थित आदान-प्रदान प्रेस के कार्य मे व्यावसायिक पत्रकारो को ही नहीं अपितु सामान्य जन को सम्मिलित करना, राज्य की सस्थाओ के कार्यों के बारे मे अधिकाधिक सूचना प्रसारित करना, विकसित पद्धतियो तथा वैज्ञानिक एव प्रगतिशील विचारों को लोकप्रिय बनाना आदि ऐसी कुछ विशेषताएं हैं जो समाजवादी प्रेस को बूर्ज्वा प्रेस से अलग एवं विशिष्ट बनाती है।

समाजवादी देशों की प्रेस का एक लाभ बहसों का गभीर स्वरूप है। इन बहसों मे कड़वाहट नही होती क्योंकि समाज के सदस्यों के पास मूलभूत प्रश्नो पर मतभेद के कोई आधार नही होते। प्रेस सोवियतों के कार्यों को प्रचारित करती है तथा राज्य के विभिन्न अंगो के कार्य-व्यापार से संबधित सामग्री प्रकाशित करती है। केवल ऐसी सामग्री को प्रकाशित नहीं किया जाता जो कि राष्ट्रीय सुरक्षा को खतरे मे डाल दे। सोवियत जनता को चुने हुए सोवियत प्रतिनिधियों के काम के बारे मे, कानूनो, प्रस्तावों, आर्थिक लक्ष्य निर्धारित करने वाली बैठकों, आदि के बारे मे समाचार पत्रों पत्रिकाओ, रेडियो, टेलीविजन एवं साहित्य के माध्यम से व्यवस्थित जानकारी दी जाती है।

प्रेस प्रचार का ही अस्त्र नहीं है अपितु समाजवादी जनवाद की सभी संस्थाओं

संस्था [illegible] बढ़ गयी है तथा प्रशासन में जनता की भागीदारी भी और अधिक व्यापक हो गयी है।

सोवियत संघ में सार्वजनिक संगठन एक महत्त्वपूर्ण राजनैतिक भूमिका निभाते हैं। समाज के भीतर [illegible] प्रभाव [illegible] तीन कारकों पर निर्भर करता है (1) संगठन की सदस्य संख्या [illegible] (2) संगठन के सदस्यों की सक्रियता [illegible] तथा इसमें [illegible] को [illegible] पर (3) सामाजिक संगठनों को प्रदत्त अधिकारों व शक्तियों की सीमा पर।

सामाजिक संगठनों में सदस्यों की संख्या में निरंतर वृद्धि हो रही है। 1918 में श्रमिक संगठनों के 23 लाख सदस्य थे, 1949 में 2 करोड़ 55 लाख तथा 1970 में 10 करोड़ सदस्य थे। 1918 में कोमसोमोल में 20 हजार सदस्य थे, 1936 में लगभग 40 लाख [illegible] था 1976 में 3 करोड़ 50 लाख हो गये। यदि हम व्यावसायिक संगठनों, खेल-कूद व अन्य संगठनों को इसमें जोड़ दें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि वर्तमान में समूची वयस्क जनसंख्या किसी-न-किसी संगठन से संबद्ध है।

अब सार्वजनिक संगठनों के भीतर अन्तःप्रेरणा व प्रतिबद्धता विकसित करना प्राथमिक महत्त्व का दायित्व है। साथ ही समस्त सदस्यों को सक्रिय बनाना एवं जनवादी सिद्धांतों, जिन पर वे संगठन आधारित हैं, को विकसित करना भी आवश्यक है। इस दिशा में कम्युनिस्ट पार्टी के प्रयत्नों के परिणाम श्रमिकसंघों, कोमसोमोल, सोवियत संगठनों, पत्रकारों, मजदूरों एवं अन्य के नियमित सम्मेलनों में तो दिखायी पड़ते ही हैं, सभासियों की बढ़ती हुई सक्रियता तथा सम्मेलनों द्वारा निर्वाचित समितियों के स्वशासित कार्यव्यापार में भी दिखायी पड़ता है। सार्वजनिक संगठनों के कार्यों, अधिकारों की व्यापकता तथा इसके परिणामस्वरूप इनमें संगठित जनता की अन्तःप्रेरणा, सक्रियता एवं सृजनात्मक प्रयत्नों में हुई वृद्धि अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

सोवियत राजनीतिक व्यवस्था की एक खास विशेषता जनवाद के विभिन्न रूप हैं जो प्रशासन तंत्र पर नागरिकों द्वारा प्रत्यक्ष नियंत्रण (निर्वाचित अंगों द्वारा ही नहीं) की अनुमति प्रदान करते हैं तथा जो सत्ता के निकायों एवं जनता के संबंधों को सुदृढ़ बनाते हैं। प्रत्यक्ष जनतन्त्र के रूपों में प्रमुख ये हैं : प्रस्तावित विधि निर्माण, आर्थिक योजनाओं एवं अन्य महत्त्वपूर्ण सरकारी दस्तावेजों पर सामूहिक बहस; कामगर जनता की उद्यम-प्रबंधों के कार्य व्यापार की पर्यवेक्षण में तथा सामूहिक कार्यशालाओं की समस्याओं के समाधान में भागीदारी, अधिकारियों द्वारा नागरिकों के प्रतिवेदनों की प्रस्तुति; नागरिकों का स्वागत करने तथा उनके प्रस्तावों, शिकायतों एवं दावों पर विचार करने की अनिवार्यता,

राष्ट्रीय प्रेस मे नागरिकों की भागीदारी—स्थानीय श्रमिकों एवं किसानो के समाचार पत्रों द्वारा तात्कालिक निरीक्षण मे; जन-नियंत्रण—उपभोक्ताओं, खरीदारो तथा सेवा प्रतिष्ठानो के ग्राहकों के सम्मेलनो के माध्यम से।

इन रूपों का विकास सोवियत व्यवस्था के आगे सुधार की प्रमुख दिशा का संकेत देता है। यह प्रक्रिया दो पद्धतियों मे व्यक्त होती है। एक ओर जनता के रहन-सहन व संस्कृति मे उन्नति के साथ-साथ समस्त नागरिकों के अपने राजनीतिक-सामाजिक अधिकारो के उपभोग के अवसर भी बढ़ते हैं। दूसरी ओर यह अवसर इसलिए भी बढ़ता है क्योंकि राज्य प्रशासन मे जनता को सम्मिलित करने हेतु पुरानी पद्धतियों को निर्दोष बना रहा है तथा नयी पद्धतियो को क्रियान्वित कर रहा है। पिछले वर्षों के दौरान कम्युनिस्ट निर्माण एवं सोवियत राज्य के कानूनों के प्राहपो से सबधित प्रश्नो पर राष्ट्रीय बहस नियमित व्यवहार का अग बन गया है। जनता की सामूहिक भागीदारी के ऐसे रूप लाखो लोगो के अनुभव को समृद्ध बनाते हैं तथा जनता की अत प्रेरणा को बढ़ावा देते हैं।

सोवियत सघ की राजनीतिक व्यवस्था की प्रभावशाली सस्थाओ मे प्रेस भी है जो कि जनमत की अभिव्यक्ति का तथा कम्युनिस्ट लोकाचार को स्वरूप देने का असरदार माध्यम है। बडी सख्या मे जो पत्र-पत्रिकाए प्रकाशित होती हैं वे राज्य द्वारा नही अपितु सार्वजनिक सगठनों—पार्टी, श्रमिक सघों, व्यावसायिक सघो तथा सहकारी सघों—द्वारा सचालित होती है। अर्थ-व्यवस्था, संस्कृति एवं विज्ञान की समस्याओं के बारे मे विचारों का व्यवस्थित आदान-प्रदान प्रेस के कार्य मे व्यावसायिक पत्रकारो को ही नही अपितु सामान्य जन को सम्मिलित करना, राज्य की संस्थाओं के कार्यों के बारे मे अधिकाधिक सूचना प्रसारित करना, विकसित पद्धतियो तथा वैज्ञानिक एवं प्रगतिशील विचारो को लोकप्रिय बनाना आदि ऐसी कुछ विशेषताएं हैं जो समाजवादी प्रेस को बूर्ज्वा प्रेस से अलग एवं विशिष्ट बनाती है।

समाजवादी देशों की प्रेस का एक लाभ बहसों का गंभीर स्वरूप है। इन बहसों मे कड़वाहट नही होती क्योकि समाज के सदस्यो के पास मूलभूत प्रश्नो पर मतभेद के कोई आधार नही होते। प्रेस सोवियतों के कार्यों को प्रचारित करती है तथा राज्य के विभिन्न अंगो के कार्य-व्यापार से संबंधित सामग्री प्रकाशित करती है। केवल ऐसी सामग्री को प्रकाशित नही किया जाता जो कि राष्ट्रीय सुरक्षा को खतरे मे डाल दे। सोवियत जनता को चुने हुए सोवियत प्रतिनिधियों के काम के बारे मे, कानूनो, प्रस्तावो, आर्थिक लक्ष्य निर्धारित करने वाली बैठकों, आदि के बारे मे समाचार पत्रों पत्रिकाओ, रेडियो, टेलीविजन एवं साहित्य के माध्यम से व्यवस्थित जानकारी दी जाती है।

प्रेस प्रचार का ही अस्त्र नहीं है अपितु समाजवादी जनवाद की सभी संस्थाओं

के कार्य-व्यापार के पर्यवेक्षण का तथा सोवियत संविधान में प्रदत्त नागरिकों के अधिकारों एवं समाजवादी विधि प्रक्रिया के पालन को सुनिश्चित करने का माध्यम भी है।

राज्य-तंत्र समाजवादी राजनीतिक संरचना का संघटक तत्त्व है। राज्य-तंत्र का विद्वत्तापूर्ण अध्ययन एक ऐसा प्रमुख एवं कठिन कार्य है जो कि प्रस्तुत अध्ययन की सीमाओं के परे है।

तो ऐसे हैं सोवियत राजनीतिक व्यवस्था के संगठन। प्रशासन के लक्ष्यों के साथ इनके संबंधों, जनता के प्रत्यक्ष एवं पारस्परिक संबंधों, पार्टी, राज्य-तंत्र एवं अन्य राजनीतिक संस्थाओं, निर्णय लेने एवं निर्णयों के प्रभावीकरण को परखने की यंत्र विधियों, राजनीतिक व्यवस्था के व्यक्ति-तत्वों का अन्योन्याश्रय, उनके बीच शक्तियों का बटवारा आदि का अध्ययन तभी सार्थक हो सकता है जबकि इसके लिए अनिवार्य समाजशास्त्रीय अध्ययन विधियों का उपयोग करके इनका सजग एवं सटीक विश्लेषण किया जाये। राजनीतिक सबंधों को संचालित करने वाले तथा संगठनों एवं सामाजिक समुदायों की भूमिका, क्रियाविधि, अधिकारों एवं दायित्वों (कुल मिलाकर जनता के व्यवहार) को निर्धारित करने वाले मानदंडों द्वारा राजनीतिक व्यवस्था के घटकों का एक महत्वपूर्ण समुच्चय निर्मित होता है। घटकों के इस समुच्चय मे निम्नलिखित तत्त्व सम्मिलित हैं :

1. आधारभूत नेतृत्व-सगठनो तथा सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा स्थापित वे राजनीतिक मानदंड जो समाजवादी समाज मे राजनीतिक सबंधों का नियमन-संचालन करते हैं;
2. राज सत्ता के विभिन्न अंगों द्वारा व्यवहृत न्यायिक मानदंड एवं अधिनियम;
3. राजनीतिक व्यवस्था के कार्य-व्यापार के अनुरूप स्थापित परंपराएं जो व्यवहार के स्वीकृत मानदंडों मे व्यक्त होती हैं;
4. राजनीतिक व्यवहार के प्रतिदर्श अथवा राजनीतिक घटनाओं के प्रति मानक प्रतिक्रियाएं—चुनावों मे मतदान, विधिक प्रारूपों तथा अन्य दस्तावेजों से संबंधित बहसों में भागीदारी, आदि।

सोवियत न्यायिक साहित्य मे, आमतौर से, सामाजिक मानदंडों को विधिक मानदंडों, जो उचित अथवा संभाव्य व्यवहार के पैमाने व सीमा को निर्धारित करते हैं तथा राज्य जिन्हें सुनिश्चित करता है; नैतिक मानदंडों, जो कि जनता के क्रिया-कलाप को अच्छा, बुरा, कर्तव्य, अंतरात्मा, सम्मान आदि के परिप्रेक्ष्य से मापता है; रीति-रिवाजों—जो रोजमर्रा की जिंदगी मे स्थापित हुए हैं तथा जो विधिक एवं नैतिक मानदंडों मे नियमित न होकर मात्र आदत की शक्ति से अनुपालित होकर मानवीय सबंधों को संचालित करते है, सामूहिक मानदंडों—जो विभिन्न सहकारी एवं सार्वजनिक सगठनों द्वारा विकसित किये गये हैं तथा जो

कर दिया जाता है तथा इन्हें राज्य की स्वीकृति मिल जाती है। किंतु राजनीतिक नियम भी जो कि कानून की शक्ति अर्जित नहीं कर पाते सामाजिक संबंधों पर नियमनकारी प्रभाव क्षमता से संपन्न होते हैं।

उदाहरण के लिए, पिछले कुछ वर्षों में पार्टी ने महाशक्ति मदांधता, राष्ट्रवाद, घूसखोरी, भ्रष्टाचार एवं अन्य 'सामाजिक विकृतियों' जैसी नकारात्मक घटना-क्रियाओं से संघर्ष करने की आवश्यकता पर बल दिया है। इसके लिए नये कानून बनाने की आवश्यकता नहीं पड़ी क्योंकि मौजूदा कानूनों में इस तरह की घटना-क्रियाओं से संघर्ष के प्रावधान है। पार्टी द्वारा इन समस्याओं की ओर ध्यान आकर्षित करना मात्र व्यावहारिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ है जिसके परिणामस्वरूप पार्टी, प्रशासनिक, आर्थिक तथा न्यायिक निकाय एवं श्रमिक संघ इन विकृत घटना-क्रियाओं के मूलोच्छेदन के प्रति सजग एवं सक्रिय हुए। दूसरे शब्दों में, विधिक रूपों में व्यक्त न होने पर भी राजनीतिक मानदंड का जनता के व्यवहार पर नियंत्रक प्रभाव पड़ता है।

राजनीतिक मानदंडों के अतिरिक्त, हमें राजनीतिक आचरण के उन प्रतिमानों की भी चर्चा करनी चाहिए जो कि, स्वीकृत होने पर, मान्य परंपरा के अंग बन जाते हैं। राजनीतिक जीवन में ऐसे बहुत से संबंध हैं जो कि बड़ी सीमा तक परंपराओं द्वारा संचालित होते हैं—उदाहरण के लिए, आलोचना तथा इसकी प्रतिक्रिया का प्रश्न, खंडन का अवसर, आलोचना से प्राप्त व्यावहारिक निष्कर्ष, आदि। यह राजनीतिक व्यवस्था के अंतर्गत समस्त संगठनों के भीतर जनता के आचरण का एक पक्ष है। आलोचकों एवं आलोच्यों के व्यवहार के प्रतिमान सामान्यतया नियमबद्ध नहीं होते और न उन्हें पूरी तरह से नैतिकता के क्षेत्र का ही अंग माना जा सकता है। राजनीतिक संगठनों एवं संस्थाओं की क्रियाविधि—या यूं कहें कि समूची राजनीतिक जलवायु—और भी अधिक महत्त्वपूर्ण है।

प्रशासन तंत्र के कर्मचारियों के व्यवहार के प्रतिमानों को आकार देने के माध्यम से भी परंपरा अपने आपको व्यक्त करती है। जनता की शिकायतों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण एवं संवेदी दृष्टिकोण—जो बहुतेरे लोगों के लिए बेहद महत्त्वपूर्ण होता है—भी न्यायिक प्रतिमानों से नहीं अपितु समाज द्वारा राजनीतिक शिक्षा एवं नियंत्रण व्यवस्था से नियंत्रित होता है।

नीतिशास्त्र राजनीतिक एवं विधिक कार्यवाहियों, समाजवादी समुदाय के नियमों तथा व्यवहार के प्रतिमानों की नींव को निर्मित करता है। न्याय, नैतिकता, अच्छे, शोभनीय, पारस्परिक सहायता, समानता, आदि के समाजवादी सार्वभौमिक सिद्धांत जनता के सामाजिक-राजनीतिक संबंधों की समूची प्रतिमान व्यवस्था की व्यंजना करते हैं।

संस्थाओं की

आदर्शी गतिविधि के दायरे में आने वाले न्यायिक एवं गैर न्यायिक सामाजिक मानदडों का प्रश्न भी उठता है। यह सामान्य विचारणा कि साम्यवाद में सक्रमण के दौर मे विधि की भूमिका मे वृद्धि हो जाती है, हमें दूर नही ले जाती। नीति-शास्त्र की भूमिका भी उसी हद तक बढती है जिस तक कि राजनीतिक मानदंडों तथा समाजवादी समुदाय के नियमों की भूमिका बढ़ती है। वास्तविक प्रश्न तो एक की दूसरे के साथ अत.क्रिया है न्यायिक मानदडों की महत्ता पहले से अधिक बढ जाती है अथवा सामाजिक संबधों को नियंत्रित करने की दृष्टि से सामाजिक मानदडों का उपयोग अधिक किया जाता है ?

दरअसल, राज्य की आदर्शी गतिविधि बेहद महत्त्व की होती है। विभिन्न क्षेत्रों मे विधि के नवीनीकरण की आवश्यकता से यह प्रवाहित होती है, यद्यपि पिछले वर्षों मे इस सदर्भ मे समुचित कार्य पूरा हो चुका है (सामाजिक जीवन के मूल क्षेत्रों मे सबधो को सचालित करने वाली सहिताए एव अन्य कानून पारित हो चुके हैं)।

जब भी न्यायिक एव गैर-न्यायिक मानदडो के पारस्परिक सबधो का प्रश्न उठता है वैधानिकता तथा क़ानून एव व्यवस्था की अपेक्षाए हावी हो जाती हैं। नागरिकों, सामाजिक समुदायो एव सस्थाओ के कार्य-व्यापार को नियंत्रित करने वाले नियमों को वैधानिक स्वीकृति प्रदान करने की यह प्रमुख कसौटी है। व्यवस्था एव वैधानिकता, वैज्ञानिक एव प्रौद्योगिक क्रांति—जो निर्णयों के लिये जाने एव क्रियान्वयन में प्रक्रियागत स्थिरता को मानकर चलती है—की भी प्रमुख शर्तें होती हैं। वैधानिकता एव व्यवस्था के कायम रहने पर ही राजनीतिक व्यवस्था की कार्यवाही प्रभावी हो सकती है। यह सभी राजनीतिक सस्थाओ पर लागू होता है। चोरी, भ्रष्टाचार, घूसखोरी, नागरिको के वैधानिक अधिकारो के हनन तथा अन्य अपराधों जैसी सामाजिक विकृतियो पर विजय प्राप्त करने की आवश्यकता के कारण ही क़ानून और बाध्यता का महत्त्व बढ़ता है।

किंतु इसमे सिद्धांत के रूप मे नया कुछ नही है। सोवियत राज्य के विकास की प्रत्येक अवस्था मे न्यायिक नियंत्रण आवश्यक रहा है। वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक क्रांति की अपेक्षाओं के आलोक मे जो नया है वह है सामाजिक-राजनीतिक मान-दंडों, परपराओं, व्यवहार के स्वीकृत प्रतिमानो तथा समाजवादी समुदाय के नियमों द्वारा नियंत्रित क्षेत्र का व्यापक विस्तार।

आइये अब सोवियत जनवाद के प्रश्न पर विचार करें। सोवियत जनवाद के विकास मे जन-प्रतिनिधित्व के रूपो तथा चुनाव प्रणाली के सिद्धांतों का निष्पादन, कम्युनिस्ट निर्माण तथा सत्ता के अंगों एवं प्रशासन पर जन-नियंत्रण के रूपों से संबंधित अत्यंत महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर राष्ट्रीय बहस का बढ़ा हुआ उपयोग तथा राज्य-तंत्र एवं सामाजिक सगठनों मे निर्वाचित तथा प्रमुख अधिकारियो की

कर दिया जाता है तथा इन्हें राज्य की स्वीकृति मिल जाती है। किंतु वे राजनीतिक नियम भी जो कि कानून की शक्ति अर्जित नहीं कर पाते राजनीतिक संबंधों पर नियमनकारी प्रभाव क्षमता से सपन्न होते हैं।

उदाहरण के लिए, पिछले कुछ वर्षों में पार्टी ने महाशक्ति मदांधता, राष्ट्रवाद, घूसखोरी, भ्रष्टाचार एवं अन्य 'सामाजिक विकृतियों' जैसी नकारात्मक घटना-क्रियाओं से संघर्ष करने की आवश्यकता पर बल दिया है। इसके लिए नये कानून बनाने की आवश्यकता नहीं पड़ी क्योंकि मौजूदा कानूनों में इस तरह की घटना-क्रियाओं से संघर्ष के प्रावधान हैं। पार्टी द्वारा इन समस्याओं की ओर ध्यान आकर्षित करना मात्र व्यावहारिक दृष्टि से महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ है जिसके परिणामस्वरूप पार्टी, प्रशासनिक, आर्थिक तथा न्यायिक निकाय एवं श्रमिक संघ इन विकृत घटना-क्रियाओं के मूलोच्छेदन के प्रति सजग एवं सक्रिय हुए हैं। दूसरे शब्दों में, विधिक रूपों में व्यक्त न होने पर भी राजनीतिक मानदंड का जनता के व्यवहार पर नियंत्रक प्रभाव पड़ता है।

राजनीतिक मानदंडों के अतिरिक्त, हमें राजनीतिक आचरण के उन प्रतिमानों की भी चर्चा करनी चाहिए जो कि, स्वीकृत होने पर, मान्य परंपरा के अंग बन जाते हैं। राजनीतिक जीवन में ऐसे बहुत से संबंध हैं जो कि बड़ी सीमा तक परंपराओं द्वारा संचालित होते हैं—उदाहरण के लिए, आलोचना तथा उसकी प्रतिक्रिया का प्रश्न, खंडन का अवसर, आलोचना से प्राप्त व्यावहारिक निष्कर्ष, आदि। यह राजनीतिक व्यवस्था के अंतर्गत समस्त संगठनों के भीतर जनता के आचरण का एक पक्ष है। आलोचकों एवं आलोच्यों के व्यवहार के प्रतिमान सामान्यतया नियमबद्ध नहीं होते और न उन्हें पूरी तरह से नैतिकता के क्षेत्र का ही अंग माना जा सकता है। राजनीतिक संगठनों एवं संस्थाओं की क्रियाविधि—या यूं कहें कि समूची राजनीतिक आबोहवा—और भी अधिक महत्वपूर्ण है।

प्रशासन तंत्र के कर्मचारियों के व्यवहार के प्रतिमानों को आकार देने के माध्यम से भी परंपरा अपने आपको व्यक्त करती है। जनता की शिकायतों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण एवं संवेदी दृष्टिकोण—जो बहुत से लोगों के लिए बेहद महत्वपूर्ण होता है—भी न्यायिक प्रतिमानों से नहीं अपितु समाज द्वारा राजनीतिक शिक्षा एवं नियंत्रण व्यवस्था से नियमित होता है।

नीतिपरक राजनीतिक एवं विधिक कार्यवाहियों, समाजवादी समुदाय के नियमों तथा व्यवहार के प्रतिमानों की नींव को निर्मित करता है। न्याय, नैतिकता, अच्छे, लोकनीय, पारस्परिक सहायता, समानता, आदि के समाजवादी सार्वभौमिक सिद्धांत जनता के सामाजिक-राजनीतिक संबंधों की समूची प्रतिमान व्यवस्था की व्याख्या करते हैं।

विकसित समाजवाद के अंतर्गत राजनीतिक व्यवस्था की संस्थाओं की

आदर्शी गतिविधि के दायरे मे आने वाले न्यायिक एव गैर न्यायिक सामाजिक मानदडो का प्रश्न भी उठता है। यह सामान्य विचारणा कि साम्यवाद मे सक्रमण के दौर मे विधि की भूमिका मे वृद्धि हो जाती है, हमे दूर नही ले जाती। नीतिशास्त्र की भूमिका भी उसी हद तक बढ़ती है जिस तक कि राजनीतिक मानदंडों तथा समाजवादी समुदाय के नियमों की भूमिका बढती है। वास्तविक प्रश्न तो एक की दूसरे के साथ अंत किया है : न्यायिक मानदंडों की महत्ता पहले से अधिक बढ जाती है अथवा सामाजिक सबंधो को नियन्त्रित करने की दृष्टि से सामाजिक मानदंडों का उपयोग अधिक किया जाता है ?

दरअसल, राज्य की आदर्शी गतिविधि बेहद महत्त्व की होती है। विभिन्न क्षेत्रों मे विधि के नवीनीकरण की आवश्यकता से यह प्रवाहित होती है, यद्यपि पिछले वर्षों में इस सदर्भ में समुचित कार्य पूरा हो चुका है (सामाजिक जीवन के मूल क्षेत्रो मे सबधों को सचालित करने वाली सहिताए एव अन्य कानून पारित हो चुके है)।

जब भी न्यायिक एवं गैर-न्यायिक मानदडो के पारस्परिक सबधो का प्रश्न उठता है वैधानिकता तथा कानून एव व्यवस्था की अपेक्षाएं हावी हो जाती हैं। नागरिकों, सामाजिक समुदायों एव सस्थाओं के कार्य-व्यापार को नियन्त्रित करने वाले नियमो को वैधानिक स्वीकृति प्रदान करने की यह प्रमुख कसौटी है। व्यवस्था एवं वैधानिकता, वैज्ञानिक एव प्रौद्योगिक क्रांति—जो निर्णयो के लिये जाने एवं क्रियान्वयन मे प्रक्रियागत स्थिरता को मानकर चलती है—की भी प्रमुख शर्तें होती हैं। वैधानिकता एव व्यवस्था के कायम रहने पर ही राजनीतिक व्यवस्था की कार्यवाही प्रभावी हो सकती है। यह सभी राजनीतिक संस्थाओ पर लागू होता है। चोरी, भ्रष्टाचार, घूसखोरी, नागरिको के वैधानिक अधिकारों के हनन तथा अन्य अपराधों जैसी सामाजिक विकृतियो पर विजय प्राप्त करने की आवश्यकता के कारण ही कानून और बाध्यता का महत्त्व बढ़ता है।

किंतु इसमे सिद्धांत के रूप में नया कुछ नही है। सोवियत राज्य के विकास की प्रत्येक अवस्था मे न्यायिक नियत्रण आवश्यक रहा है। वैज्ञानिक एव प्रौद्योगिक क्रांति की अपेक्षाओं के आलोक मे जो नया है वह है सामाजिक-राजनीतिक मानदंडों, परंपराओं, व्यवहार के स्वीकृत प्रतिमानों तथा समाजवादी समुदाय के नियमों द्वारा नियत्रित क्षेत्र का व्यापक विस्तार।

आइये अब सोवियत जनवाद के प्रश्न पर विचार करें। सोवियत जनवाद के विकास मे जन-प्रतिनिधित्व के रूपो तथा चुनाव प्रणाली के सिद्धांतो का निष्पादन, कम्युनिस्ट निर्माण तथा सत्ता के अगों एव प्रशासन पर जन-नियत्रण के रूपों से संबंधित अत्यंत महत्वपूर्ण प्रश्न पर राष्ट्रीय बहस का बढ़ा हुआ उपयोग तथा राज्य-तत्र एव सामाजिक सगठनो मे निर्वाचित तथा प्रमुख अधिकारियों की

जवाबदेही तथा उन्हें हटाये जा सकने के सिद्धांत का गुंफन एवं सार्वत्रिक प्रयोग सम्मिलित हैं।

समाजवादी जनवाद की मूल दिशाएं विशेषकर सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी के निर्णयों में व्यक्त होती हैं। पार्टी इस क्षेत्र में न केवल सामान्य नीति निर्धारित करती है बल्कि एक अवधि विशेष के भीतर उक्त नीति को क्रियान्वित करने के निश्चित तरीके भी निर्दिष्ट करती है। अत यह स्मरण करना उपयुक्त ही होगा कि पार्टी ने हाल के अधिवेशनों में समाजवादी जनवाद के विकास की दिशाओं को किस तरह परिभाषित किया है।

सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी के बीसवें अधिवेशन के प्रस्तावों में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि जनता की अंतःप्रेरणा एवं रचनात्मक सक्रियतावाद को और अधिक बढ़ाने के लिए, राज्य के प्रशासन में उसकी भागीदारी को बढ़ाने के लिए यह आवश्यक है कि सोवियत समाज का पूर्णतया जनवादीकरण किया जाय; समस्त केंद्रीय एवं स्थानीय निकायों के काम को निरंतर सुधारा जाय, राज्य-तंत्र के आकार को घटाकर इसे कम खर्चीला बनाया जाय तथा जनता के हितों की अवहेलना एवं नौकरशाही की प्रवृत्तियों के खिलाफ़ कठोर संघर्ष जारी रखा जाय।

अधिवेशन ने सोवियत विधि-व्यवस्था को मजबूत बनाने, नागरिकों के अधिकारों के कड़े अनुपालन संबंधी केंद्रीय समिति की कार्यवाही को स्वीकृति प्रदान की तथा समस्त पार्टी एवं सोवियत निकायों से यह अपेक्षा रखी कि वे सजग होकर वैधानिकता की रक्षा करेंगे, समाजवादी कानून एवं व्यवस्था के अतिक्रमण पर रोक लगायेंगे। पार्टी जीवन के लेनिनवादी मानदंडों की पुनर्स्थापना, पार्टी के भीतर जनवाद क़ायम करने, सामूहिक नेतृत्व की नीति की शुरुआत करने तथा पार्टी एवं राज्य के काम-काज की पद्धतियों एवं शैली को सुधारने की दिशा में केंद्रीय समिति द्वारा किये गये महत्त्वपूर्ण कार्यों को स्वीकृति प्रदान की गयी।

"इतिहास में व्यक्ति की भूमिका की मार्क्सवादी-लेनिनवादी अवधारणा की विशद व्याख्या पार्टी सदस्यों (तथा सामान्यतया सभी कामगर लोगों) की कार्यवाही का स्तर ऊंचा करने की दृष्टि से बेहद महत्त्वपूर्ण थी। अधिवेशन की यह मान्यता है कि व्यक्ति पूजा की प्रवृत्ति का विरोध करने में केंद्रीय समिति पूरी तरह सही थी क्योंकि उक्त प्रवृत्ति ने पार्टी एवं जनता की भूमिका को तुच्छ समझा, पार्टी के भीतर सामूहिक नेतृत्व की भूमिका का अवमूल्यन किया तथा इसके परिणाम स्वरूप बहुधा गंभीर ग़लतियां हुईं। अधिवेशन केंद्रीय समिति को निर्देश देता है कि व्यक्ति पूजावाद के अवशेषों के खिलाफ़ संघर्ष में ढील न दे तथा अपने समस्त कार्य व्यापार में इस अवधारणा को सर्वोपरि माने कि कम्युनिस्ट

पार्टी के नेतृत्व मे जनता ही नये जीवन की वास्तविक निर्माता है।"[8]

सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी के 20वें अधिवेशन के पश्चात् 30 जून 1956 को केंद्रीय समिति ने 'व्यक्तिपूजावाद एव इसके परिणामों पर विजय प्राप्त करने' से संबंधित महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पारित किया। उक्त प्रस्ताव में इस घटना-क्रिया के कारणों की समग्र परीक्षा तथा मार्क्सवादी-लेनिनवादी परिप्रेक्ष्य मे इसका मूल्यांकन सन्निहित थे। इसमे कहा गया कि व्यक्तिपूजावाद के खिलाफ संघर्ष मे जनता की भूमिका, इतिहास मे पार्टी एव व्यक्ति की भूमिका, राजनीतिक नेता—चाहे उसकी सेवाए कितनी भी बड़ी क्यों न हो—की पूजा की अग्राह्यता सबधी मार्क्सवाद-लेनिनवाद के सुपरिचित सिद्धात पार्टी के मार्ग-दर्शक थे।

वैज्ञानिक साम्यवाद के जनक कार्ल मार्क्स ने लिखा है कि जब वह तथा एगेल्स कम्युनिस्टों की सस्था मे प्रविष्ट हुए तो 'हमने यह शर्त रखी कि सत्ता मे अधविश्वासी आस्था को पनपाने वाली प्रत्येक प्रवृत्ति को सविधि से निकाल दिया जाय।"[9] लेनिन ने 'नायक' तथा 'भीड़' की गैर-मार्क्सीय अवधारणाओ के खिलाफ वैसा ही विकट सघर्ष किया।

यह जानते हुए भी कि गलतियों के सार्वजनिक स्वीकार का समाजवाद के दुश्मनो द्वारा उपयोग किया जायेगा, सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी ने सिद्धांत का सम्मान करते हुए स्वय की अत प्रेरणा के आधार पर ही यह कदम उठाया। ऐसा करके पार्टी ने इस बात की पक्की गारटी की कि पार्टी अथवा देश मे व्यक्ति-पूजा जैसी घटना क्रिया को कभी भी अनुमति नही दी जायेगी। यह इस बात की भी गारटी थी कि पार्टी तथा देश मे मार्क्सवादी-लेनिनवादी नीति के आधार पर तथा पार्टी में आंतरिक जनवाद के विकास की स्थिति मे लाखो कामगर लोगों की रचनात्मक भागीदारी तथा समाजवादी जनवाद के समग्र विकास की स्थिति मे पार्टी तथा देश मे सामूहिक नेतृत्व कायम किया जायेगा।

समाजवादी समाज के जनवादीकरण की दिशा मे की गयी सकारात्मक विचारधारात्मक एव राजनीतिक कार्यवाही बेहद महत्त्वपूर्ण थी। सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी की केंद्रीय समिति ने पार्टी सगठनो का आह्वान किया :

"अपने समस्त कार्यों मे मार्क्सवाद-लेनिनवाद की इस सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण धारणा का—कि इतिहास की निर्माता जनता है, कि वही मानवता के समस्त भौतिक एव आध्यात्मिक मूल्यो की सर्जक है, तथा समाज के रूपांतरण मे व साम्यवाद स्थापित करने मे मार्क्सवादी पार्टी की भूमिका निर्णायक होती है—सुसगत रूप से अनुपालन करने के लिए,

8. रिज़ोल्यूशस आफ द 20वें कांग्रेस ऑफ द कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ़ द सोवियत यूनियन, मास्को, 1956, पृ॰ 23

9 कार्ल मार्क्स एड फ्रेडरिक एगेल्स सिलेक्टेड कारेसपाडेंस, मास्को, 1965, पृ॰ 310

"केंद्रीय समिति द्वारा पिछले कुछ वर्षों में पार्टी संगठनों में—ऊपर से नीचे तक—पार्टी नेतृत्व के लेनिनवादी सिद्धांतों, जिनमें सर्वोपरि हैं सामूहिक नेतृत्व का सिद्धांत, पार्टी नियमावली में वर्णित पार्टी जीवन के प्रतिमानों तथा आलोचना एवं आत्मालोचना की अनुपालना के क्रम में—किये गये काम को निरंतर आगे बढ़ाने के लिए;

"सोवियत संविधान में रूपायित सोवियत समाजवादी जनवाद के सिद्धांतों को पुनर्स्थापित करने तथा क्रांतिकारी समाजवादी वैधानिकता के समस्त व्यतिक्रमों को दुरुस्त करने के लिए..."[10]

सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी के 22वें अधिवेशन ने पार्टी के कार्यक्रम को स्वीकृति प्रदान की जिसमें कि समाज को दूरगामी राजनीतिक विकास की मूल दिशाएं निर्धारित की गयी थी। कार्यक्रम में व्यक्त विचारों की चर्चा हम बाद में करेंगे।

सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी के 23वें अधिवेशन ने सोवियत संघ की राजनीतिक व्यवस्था के समस्त संगठनों को मजबूत बनाने तथा समाजवादी जनवाद विकसित करने पर विशेष ध्यान दिया। सामाजिक प्रशासन तथा नेतृत्व की वैज्ञानिक विधियां विकसित करने पर विशेष जोर दिया गया। अधिवेशन ने सोवियत एवं आर्थिक संगठनों से पार्टी द्वारा प्रस्तुत अर्थ-व्यवस्था के सिद्धांतों को सुसंगत रूप से क्रियान्वित करने की मांग की। यह अपेक्षा व्यक्त की गयी कि औद्योगिक क्षेत्र के केन्द्रीकृत प्रशासन तथा संघीय गणराज्यों के अधिकारों के विस्तार को संयोजित करके, आर्थिक प्रबंध में आर्थिक पद्धतियों की बढ़ी हुई भूमिका को स्वीकार करके, नियोजन में मूलभूत सुधार करके, आर्थिक स्वायत्तता तथा सामूहिक उद्यमों की अनुप्रेरणा का विस्तार करके तथा सामूहिक कार्य व्यापार के परिणामों में भौतिक रुचि में वृद्धि करके क्रियान्वयन को प्रभावी बनाया जाय।

"अधिवेशन की यह मान्यता है कि वैज्ञानिक दृष्टिकोण, सामूहिक कार्य, कम्युनिस्ट निर्माण को संचालित करने तथा सोवियत राज्य की घरेलू एवं वैदेशिक नीति को लागू करने का कौशल—जो केंद्रीय समिति का व्यवहार बन चुके हैं—आगे भी इसकी नीतियों के मूल में होने चाहिए।"[11]

अधिवेशन ने "सोवियत राज्य को और अधिक मजबूत करने, समाजवादी जनवाद को अधिकाधिक विकसित करने के महत्व को रेखांकित किया। जन-प्रतिनिधियों की सोवियतों की भूमिका की वृद्धि पर विशेष जोर दिया जाता है

---

10. [illegible] कांग्रेस [illegible], मास्को, 1956, पृ० 24-25

11. 23वीं कांग्रेस [illegible], मास्को 1966, पृ० 302

ताकि वे आर्थिक एवं सास्कृतिक विकास से संबंधित अपनी शक्तियों का पूरा उपयोग कर सकें एव निर्णयों की क्रियान्वित करवा सकें तथा नियोजन, वित्त एव ज़मीन से जुड़ी समस्याओं के समाधान के निमित्त अपनी अधिक अंत.प्रेरणा प्रदर्शित कर सकें एव स्थानीय उद्योगों को सचालित कर सकें व जनता को बेहतर सेवा एवं सास्कृतिक सुविधाएं उपलब्ध करा सकें।"[12]

सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी के 24वें अधिवेशन के निर्णयो मे जनप्रतिनिधियो की सोवियतों की भूमिका मे वृद्धि करके सोवियत राज्य को मज़बूत करने तथा समाजवादी जनवाद को विकसित करने के लक्ष्य को एक बार पुन. रेखांकित किया गया। इसके लिए सोवियत विधि निर्माण तथा प्रशासन-तंत्र को दोष-रहित बनाने, जन-नियत्रण के निकायों—समाजवादी जनवाद की सपूर्ण व्यवस्था तथा देश के सामाजिक राजनीतिक जीवन मे श्रमिक सघों, कोम्सोमोल तथा सामूहिक कार्य-शालाओं—को और अधिक मज़बूत बनाने की आवश्यकता पर विशेष ज़ोर दिया गया। राज्य के प्रतिरक्षा एव सुरक्षा निकायो मे वैधानिकता एव व्यवस्था को मज़बूत करने पर भी बल दिया गया। केंद्रीय समिति के प्रतिवेदन मे कहा गया, "हम राज्य के प्रशासन एव सामाजिक मामलों मे जनता की बढ़ती हुई एव व्यापक भागीदारी मे समाजवादी जनवाद का अर्थ एव अतर्वस्तु देखते है। हमारे देश की समूची राजनीतिक व्यवस्था तथा जनता की निरतर वृद्धिमान अतःप्रेरणा साम्यवाद के निर्माण मे सहायता करती है। इस तरह का जनवाद हमारे लिए बेहद महत्त्व-पूर्ण है तथा यह समाजवादी सामाजिक सबधों के विकास एव दृढ़ीकरण की अपरिहार्य शर्त है।"[13]

स्पष्ट है कि सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी के 20वें-25वें अधिवेशनों ने समाज-वादी जनवाद के विकास पर बेहद ज़ोर दिया है। साथ ही, इन अधिवेशनों मे लिये गये निर्णय आर्थिक विकास, सामाजिक-राजनीतिक विकास एव विचारधारात्मक कार्यों से जुड़े हुए हैं। ज्ञातव्य है कि 20वें अधिवेशन के निर्णयों मे वैधानिकता के क्षेत्र मे कमियों को दूर करने तथा समाजवादी जनवाद की अवहेलना से संबंधित प्रश्नों के महत्त्व को रेखांकित किया गया था जबकि 23वें तथा 25वें अधिवेशनों का ध्यान पार्टी एव राज्य को मज़बूत करने के सकारात्मक दायित्वों, जनता की सामाजिक एव विचारधारात्मक एकता तथा समाजवादी समाज के और अधिक जनवादीकरण पर केंद्रित था।

सोवियत सत्ता के अगों—सोवियत सघ की सर्वोच्च सोवियत, गणराज्यो की सर्वोच्च सोवियतो, सत्ता के स्थानीय अगो—का समाजवाद की विकसित

12. वही पृ० 304

13. 24वं कांग्रेस ऑफ द सी पी एस यू, मास्को, 1971, पृ० 69

अवस्था में और अधिक सक्रिय भूमिका निर्वाह करने के लिए आह्वान किया गया है। सोवियत जनता की सामाजिक एवं राजनीतिक एकता को पुख्ता करने तथा उसके सांस्कृतिक स्तर को ऊंचा उठाने के लिए अनुकूल परिस्थितियों का निर्माण किया जा चुका है ताकि देश के प्रातिनिधिक निकायों में प्रमुख समस्याओं के समाधान पार्टी द्वारा निर्धारित नीतियों पर आधारित हो सकें। वर्तमान में ये अंग विधायी क्षेत्र में अधिक सक्रिय हैं तथा कार्यकारी एवं प्रशासनिक अंगों की कार्रवाइयों के पर्यवेक्षण संबंधी अपने कार्यों में क्रमशः वृद्धि कर रहे हैं।

हमें ज्ञात ही है कि लेनिन ने निर्वाचन के सिद्धांत की सुसंगत क्रियान्विति, अधिकारियों को वापस बुलाने व उनकी जवाबदेही पर विशेष बल दिया था। निर्वाचित करने एवं वापस बुलाने के अधिकार में उन्होंने समाजवादी जनवाद का प्रमुख लक्षण देखा तथा इसे उन्होंने अधिकारियों को नौकरशाह बनने से रोकने का महत्वपूर्ण साधन माना।

समाजवादी राज्य—जो आर्थिक एवं सामाजिक प्रक्रियाओं के समस्त बुनियादी उत्तोलकों को नियमित करता है—में कर्मकों के आगे बढ़ते रहने का औचित्य एवं महत्त्व अनुभव-सिद्ध है। नेता का व्यक्तित्व अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है, इस कारण से नेता का सतर्कतापूर्वक तथा जनवादी तरीके से चयन तथा निर्वाचित व्यक्तियों पर जनता द्वारा प्रभावी एवं सतत् नियंत्रण बेहद महत्वपूर्ण है। सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी का कार्यक्रम यह अपेक्षा करता है कि अधिकाधिक लोग प्रशासन संस्थान से प्रशिक्षित हो कर निकलें ताकि सामूहिक नेतृत्व के लेनिनवादी सिद्धांतों को सुसंगत तरीके से लागू किया जा सके, नेतृत्वकारी अंगों में नयी प्रतिभा का व्यापक प्रवेश हो सके तथा ऐसे उपाय किये जा सकें जिनसे कि व्यक्तियों के हाथों में सत्ता के अतिशय केंद्रीकरण के अवसरों को समाप्त करके उन पर सामूहिक नियंत्रण को ढीला पड़ने से रोका जा सके।

समाजवादी जनवाद के विकास से राज्य-जीवन में प्रत्येक नागरिक की भागीदारी की मात्रा निरंतर बढ़ती जाती है। इसकी अभिव्यक्ति इस तथ्य में होती है कि राज्य के मूलभूत क़ानूनों एवं आर्थिक योजनाओं पर समूची जनता द्वारा विचार-विमर्श किया जाता है। जहां एक ओर पार्टी तथा सोवियतों की बढ़ी हुई भूमिका बढ़ते हुए स्व-शासन में परिणत होती है वहीं वास्तविक जनवाद का विकास उन परिस्थितियों को पैदा करता है जिनके तहत सभी नागरिक राज्य-प्रशासन में सम्मिलित हो सकें।

जैसाकि 25वें अधिवेशन में निश्चित किया गया था 24वें एवं 25वें अधिवेशनों के मध्य के काल में पार्टी की भूमिका की प्रमुखता स्वीकार की गयी तथा इसका संघटन अधिक सक्रिय बना तथा पार्टी का आन्तरिक जनवाद और अधिक

24वें अधिवेशन के पश्चात् पार्टी ने लगभग 2 लाख 60 हजार लोगो को सदस्यता प्रदान की। वर्त्तमान मे सदस्यो की कुल सख्या 1 करोड 56 लाख 94 हजार है। इसमे 41·6% श्रमिक, 13·9% सामूहिक किसान, लगभग 20% तकनीकी विशेषज्ञ एव इजीनियर तथा 24% से अधिक वैज्ञानिक, लेखक, कलाकार एव अभिनेता, शिक्षा एवं स्वास्थ्यकर्मी, राजकीय कार्यकारी अधिकारी एव कर्मचारीगण हैं।

सामाजिक विकास की गतिमयता, बढते पैमाने पर साम्यवादी निर्माण तथा वैदेशिक मामलो मे पूरे देश की भागीदारी के लिए आर्थिक एव सास्कृतिक व शैक्षिक परिदृश्य मे निरतर उच्चतर होते पार्टी निर्देशन एव व्यापक जन-सगठनात्मक एवं राजनीतिक कार्य का महत्त्व असदिग्ध है। इस प्रयास का बड़ा हिस्सा पार्टी केंद्रीय समिति, पोलित ब्यूरो व सचिव मडल की जिम्मेदारी बन जाता है।

उक्त काल मे पार्टी की ग्यारह पूर्ण बैठकें सपन्न हुई तथा इनमे पार्टी एव देश के जीवन के केंद्रीय प्रश्नो पर चितन किया गया। 1972, '73, '74, '75 की दिसबर बैठकें इस दृष्टि से विशेष महत्त्व की थी कि इनमे अपरिहार्य आर्थिक समस्याओ का सटीक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया तथा अधिकाधिक प्रयास की माग करने वाले केंद्रीय दायित्वो को मूर्त रूप दिया गया। इनमे से कुछ बैठको मे वैदेशिक नीति की समस्या पर विचार किया गया।

इस अवधि मे केंद्रीय समिति के पोलित ब्यूरो द्वारा किया गया काम बेहद प्रभावी रहा। इसकी कुल मिलाकर 215 बैठकें हुई जिनमे उद्योग, कृषि एव निर्माण तथा समस्त राजकीय एव आर्थिक स्तरो पर प्रशासन मे सुधार सबधी मामलों पर विचार-विमर्श किया गया। 24वें अधिवेशन द्वारा निर्दिष्ट एव निर्धारित जनता के जीवन-स्तर को ऊचा उठाने के उपायो की दिशा मे विशेष ध्यान दिया गया। अत. पार्टी एव विचारधारात्मक कार्य मे सुधार लाने पर विशेष बल दिया गया तथा वैदेशिक नीति एवं देश की सुरक्षा-क्षमता को ओर भी विशेष ध्यान दिया गया।

केंद्रीय समिति के सचिव-मडल, जिसकी इस अवधि मे 205 बैठकें सपन्न हुई, ने विभिन्न पार्टी सगठनों के काम-काज तथा व्यक्तिगत मामलों पर विचार किया। इसने निर्णयो की क्रियान्विति को नियत्रित करने व क्रियान्विति के सत्यापन पर पहले कभी से अधिक ध्यान दिया।

लेनिन की कार्यशैली कुशल पार्टी पथ-प्रदर्शन की महत्त्वपूर्ण शर्त है। यह एक रचनात्मक शैली है जो कि आत्मनिष्ठता की विरोधी है तथा समस्त सामाजिक प्रक्रियाओं मे वैज्ञानिक दृष्टिकोण जिसकी विशिष्टता है। यह सदस्यों से कठोरता

की मांग करती है तथा आत्म-संतोष, नौकरशाही एवं लालफ़ीताशाही का विरोध करती है।

केंद्रीय समिति ने आत्मालोचना एवं आलोचना से जुड़े प्रश्नों के साथ-साथ निर्णयों की क्रियान्विति को नियंत्रित एवं सत्यापित करने की समस्या पर भी विचार किया। विभिन्न अवसरों पर पोलित ब्यूरो एवं सचिव-मंडल के समक्ष यह मुद्दा उभर कर आया। इस क्रम में समस्त पार्टी संगठनों को परिपत्र भेजा गया। केंद्रीय समिति ने नियंत्रण एवं सत्यापन को संगठनात्मक कार्य का केंद्रीय पक्ष मानते हुए कई उपयुक्त निर्णय लिये। इस तथ्य की ओर समस्त पार्टी संगठनों एवं शाखाओं का ध्यान आकृष्ट किया गया।

पार्टी की कार्मिक नीति सामाजिक विकास को प्रभावित करने की दृष्टि से एक अन्य महत्त्वपूर्ण उत्तोलक है। 25वें अधिवेशन ने रेखांकित किया कि आधुनिक प्रशासक को पार्टी एवं उसकी नीति के प्रति निष्ठा, उच्च स्तर की क्षमता, अनुशासन, अंत:प्रेरणा एवं रचनाशीलता से संपन्न होना चाहिए। यही नहीं उसे सामाजिक-राजनीतिक एवं शैक्षणिक पक्षों के प्रति सजग रहते हुए दैनंदिन जीवन में, तथा काम में संलग्न लोगों के प्रति विवेकशील होना चाहिए।

केंद्रीय समिति ने जन-संचार एवं प्रचार माध्यमों के कार्यों में तालमेल क़ायम करने के साथ-साथ उनकी विचारधारात्मक कार्य की कुशलता बढ़ाने पर भी विशेष ध्यान दिया। पार्टी संगठन समाचारपत्रों का सतत् एवं सटीक मार्गदर्शन तो करते ही हैं उनके विचारधारात्मक स्तर एवं प्रभावशीलता में वृद्धि भी करते हैं।

सोवियत समाज की राजनीतिक व्यवस्था का व्यापक विकास कम्युनिस्ट निर्माण का प्रमुख क्षेत्र है। यह समाजवादी राज्य व्यवस्था को सुधारने, समाजवादी जनवाद का निरंतर विस्तार करने, राज्य एवं समाज के वैधिक आधारों के पुख़्ता किये जाने तथा जन-संगठनों को स्फूर्ति देने आदि पर लागू होता है। सोवियत संघ में निर्मित विकसित समाजवादी समाज क्रमश: साम्यवादी समाज में परिवर्तित होता जा रहा है। सोवियत राज्य समूची जनता का राज्य है तथा यह समूची जनता के हितों एवं संकल्प को अभिव्यक्ति देता है। सोवियत जनता के रूप में, देश में एक नयी ऐतिहासिक हस्ती ने आकार ग्रहण किया है जो श्रमिकों, किसानों एवं बुद्धिजीवी वर्ग की अटूट एकता, श्रमिक वर्ग की नेतृत्वकारी भूमिका तथा समस्त सोवियत राष्ट्रीयताओं एवं जनगण की मैत्री पर अवस्थित है। पार्टी राज्यतंत्र एवं जन-संगठनों के कामकाज को उत्प्रेरित करती है तथा उनकी अंत:प्रेरणा को प्रोत्साहित करती है।

इस संदर्भ में, सोवियतों के कार्यों पर विशेष ध्यान दिया जाता है। इसके परिणाम दिखने भी लगे हैं। सोवियतों के निर्वाचित प्रतिनिधियों की पहल पर विभिन्न महत्त्वपूर्ण मुद्दे उठाए जाते हैं तथा उनका समाधान किया जाता है।

वस्तुत., ऐसे कई कानून बनाये गये हैं जो ग्राम, ग्रामीण, जिला एवं नगर सोवियतों की क्षमता एवं भौतिक संसाधनों को व्यापकता प्रदान करते हैं।

सोवियत विधि-निर्माण में सुधार लाने तथा समाजवादी कानून एवं व्यवस्था को बल प्रदान करने की ओर भी पार्टी का सरोकार निरंतर व्यक्त होता रहा है। विधिक मानदंडों को सोवियत समाज को नयी अवस्था के अनुरूप ढाला गया है। ऐसे क्षेत्रों—जैसे, पर्यावरण सुरक्षा, जल संसाधनों, खनिजों, वायु (अंतरिक्ष) मार्गों की सुरक्षा—में भी कानून बनाये गये हैं जहां पहले ये प्रावधान उपलब्ध नहीं थे।

व्यक्तियों के सगतिपूर्ण विकास एवं नागरिकों के अधिकारों के प्रति सजग सोवियतें सामाजिक अनुशासन को कड़ा भी बनाती हैं तथा नागरिकों से यह अपेक्षा करती हैं कि वे अपने नागरिक दायित्वों को पूरा करें क्योंकि अनुशासन एवं विश्वसनीय सार्वजनिक व्यवस्था के बिना जनवाद की कल्पना भी नहीं की जा सकती। अपने कर्त्तव्यों तथा जनता के हितों के प्रति नागरिकों का दायित्व-बोध समाजवादी जनवाद के भरपूर उपयोग का विश्वसनीय आधार है। इसी से व्यक्ति वास्तविक स्वतंत्रता भी अर्जित कर सकता है।

समाजवादी जनवाद के और अधिक विस्तार के लिए आवश्यक है कि समाज के सभी मामलों के प्रशासन मे कामगर लोगों की भागीदारी हो, राज्य के जनवादी सिद्धांतों का विकास हो तथा व्यक्ति के बहुपक्षीय सगतिपूर्ण विकास की परिस्थितियों का निर्माण हो।

वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक क्रांति तथा समाजवादी समाज का प्रशासन

हम यहां सामाजिक-राजनीतिक प्रक्रियाओं को प्रशासित करने से संबंधित सम्पूर्ण विज्ञान की विवेचना न करके इस बृहद् एवं स्वतंत्र विषय की कतिपय समस्याओं तक स्वयं को सीमित रखेंगे।

सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी प्रशासन एवं नियोजन मे व्यवस्था-विश्लेषण, प्रतिरूप निर्माण, आर्थिक एवं गणितीय सूचना सिद्धांत एवं निर्णय लेने का सिद्धांत जैसे वैज्ञानिक सिद्धांतों का उपयोग करने को बेहद महत्त्वपूर्ण मानती है। कम्प्यूटर सिस्टम्स एवं गणितीय पद्धतियों का प्रयोग वैज्ञानिक प्रतीकों को औपचारिक रूप देने तथा उनमें एकता कायम करने को सुगम बनाता है, वैज्ञानिक एवं सामाजिक सूचनाओं के आकलन एवं संसाधन को संभव बनाता है तथा अनुकूलतम निर्णय लेने तथा आर्थिक एवं सामाजिक प्रक्रियाओं को नियोजित करने एवं उनके पूर्वानुमान के लिए आधार प्रस्तुत करता है।

इनके माध्यम से आर्थिक प्रबंध व्यवस्था को ही नहीं अपितु शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक प्रशासन को भी तात्विक रूप से बेहतर बनाया जाता है। वैज्ञानिक व

यथार्थवादी पूर्वानुमान हमें वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक परिवर्तन, आर्थिक विकास तथा संरचनात्मक गतिविधियों की बुनियादी दिशाओं का पूर्वाभास भी देता है, मांग एवं पूर्ति के अंतःसंबंधों को समझने में भी सहायता करता है। नये एवं संभावनापूर्ण आर्थिक क्षेत्रों तथा केन्द्रीभूत नियोजन के विकास को, क्रियात्मक निर्णय लेने की प्रक्रिया में, अर्थव्यवस्था के घटकों की व्यापक स्वायत्तता के साथ संयोजित किया जायेगा।

आर्थिक एवं सामाजिक आवश्यकताओं के सुविचारित अध्ययन से संपूर्ण समाज एवं प्रत्येक व्यक्ति के हितों की तुष्टि का पता चलता है। स्वचालित पद्धतियों के प्रारंभ तथा प्रबंधकीय कार्य के यंत्रीकरण के परिणामस्वरूप प्रबंध मूलभूत आर्थिक एवं सामाजिक समस्याओं पर अधिक ध्यान केन्द्रित कर पायेगा। तदनुरूप प्रशासकीय अंगों की संरचना, कर्मियों की शिक्षा एवं सूक्ष्मता के स्तर से जुड़ी अपेक्षाएं, लिये गये निर्णयों में कामगर जनता को सम्मिलित करने तथा प्रशासन की देखरेख की विधियां भी परिवर्तित होंगी।

सोवियत संघ के संघटन सिद्धांत के बारे में जो भी कहा जाता है उसमें से अधिकांश का स्रोत विदेशी व्यवहार है। प्रशासन में वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकी क्रांति की प्रगति का प्रयोग पहले संयुक्त राज्य में किया गया था : संयुक्त राज्य को इससे जुड़ी आर्थिक, समाजशास्त्रीय, सामाजिक-राजनीतिक समस्याओं से पहले ही वास्ता पड़ चुका था (सूचना सिद्धांत, निर्णय लेने संबंधी सिद्धांत, व्यवस्था-विश्लेषण, आदि)।

यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि पूंजीवादी देशों की तुलना में समाजवाद के अंतर्गत प्रशासनिक संरचना में सुधार करना काफी सरल भी है और काफी जटिल भी। आसान इसलिए कि समाजवादी देशों में प्रशासनिक कार्य में कतिपय सुधार अभी तक आरंभ नहीं किये गये हैं। जटिल इसलिए पूंजीवादी देश उस बड़ी मात्रा में आर्थिक एवं सामाजिक नियोजन न तो करते हैं और न कर सकते हैं जिसमें कि समाजवादी देश करते हैं। लागत-लाभ विश्लेषण का प्रयोग आर्थिक एवं सामाजिक प्रक्रियाओं के संयोजन एवं पूर्वानुमान की दिशा में पहला सकोची कदम मात्र है, उस पर भी विशिष्ट विभागों मात्र तक सीमित। दूसरी ओर, समाजवादी देशों में अर्थ-व्यवस्था, सामाजिक संरचना, संस्कृति आदि के क्षेत्र में लगभग सभी परिवर्तन नियोजित होते हैं। यहां संगठनात्मक एवं प्रशासनिक कार्य का मापक्रम, अंतर्वस्तु एवं दिशा संयुक्त राज्य से पूर्णतया भिन्न है। प्रशासन की स्वचालित प्रणालियों की संभावनाएं यहां बेजोड़ रूप से अधिक हैं।

कुछ वर्ष पहले तक अमरीकी प्रबंध सिद्धांत का सरोकार मात्र व्यवसाय संघों, संस्थाओं तथा उपक्रमों से था। सोवियत संघ में केन्द्रीभूत आर्थिक प्रबंध का उच्च स्तर नये संगठनात्मक सिद्धांतों के प्रवर्तन की समस्या को प्रबंध के समस्त

स्तरों पर स्थानांतरित कर देता है। अतः उपक्रम के प्रबंध का आमूल सुधार तब तक असंभव है जब तक कि आर्थिक क्षेत्र के प्रबंध, नियोजन विधियों आदि को भी तदनुरूप रूपांतरित न कर दिया जाये।

अतः मे, बुर्ज्वा प्रबंध का सबसे महत्त्वपूर्ण, प्रमुख और एक मात्र लक्ष्य उत्पादन कुशलता मे, और उतने भर मे शोषण की भी, वृद्धि करना है। समाजवादी प्रबंध सिद्धांत सामाजिक समस्याओं पर ध्यान केंद्रित करता है : उत्पादन के सदर्भ मे मनुष्य की स्थिति, उसके काम एव जीवन की परिस्थितिया, प्रबंध मे भागीदारी, तुष्टि का उसका स्तर, कुल मिलाकर व्यक्तित्व का सामजस्यपूर्ण विकास। लेनिन के शब्दों मे, "....हमे समूचे रूस मे 'टेलर' प्रणाली तथा श्रम की वैज्ञानिक अमरीकी कुशलता का प्रवर्तन करना चाहिए, इस प्रणाली मे काम के समय की कटौती को सयोजित करके तथा उत्पादन एव कार्य प्रबंध की ऐसी नयी पद्धतियो के उपयोग से समृद्ध करके जो कि कामगर जनता की श्रम शक्ति के लिए हानिकारक नहीं हो।"[14]

"साइबरनेटिक क्राति', जो पश्चिमी अध्येताओं की राय मे प्रशासन की सपूर्ण व्यवस्था का आधुनिकीकरण कर सकती है, को एकातिक रूप से उत्पादक शक्तियो के विकास के अनुकूल बना लिया गया है। तथापि श्रम का स्वचालन एव बौद्धिकीकरण—जब तक कि जनवाद का विकास एव सामाजिक समानता के प्रति चिंता इसका साथ न दें—व्यक्ति को चालाकी से प्रभावित करने की अत्यत दोषरहित यत्र विधि पर आधारित प्रविधिज्ञतत्रीय एक छत्रवाद को ही जन्म देंगे।

अमरीकी समाजशास्त्री रॉबर्ट बोगस्लॉ ने 'द न्यू यूटोपियन्स' मे लिखा था, "शास्त्रीय स्वप्नदर्शी अभिकल्पनाओं का सभवतया सर्वाधिक विशिष्ट लक्षण उनकी मूल्य-सरचना का बुनियादी मानवीय रुझान है ''शास्त्रीय अभिकल्पको तथा उनके समकालीन प्रतिरूपो (सिस्टम इजीनियरो, तथ्य-ससाधक विशेषज्ञों, कम्प्यूटर उत्पादको एव सिस्टम अभिकल्पकों) मे अतर इस तथ्य मे ही निहित है कि मानवीय रुझान का लोप हो चुका है। स्वप्नदर्शी पुनर्जागरण के प्रमुख मूल्य दिग्विन्यास को 'मानवतावाद' के रूप मे नहीं अपितु कुशलता के रूप मे व्यक्त किया जा सकता है।[15]

समकालीन सास्कृतिक विकास की दिशाओ को अलग अलग तरह से व्यक्त करने वाली दो अवधारणाए सामने आयी हैं : बुद्धिवाद एव बौद्धिक सस्कृति। पहली अवधारणा वैज्ञानिक एव प्रौद्योगिक श्रेष्ठवाद से उत्पन्न होती है जबकि

---

14. वी० आई० लेनिन . कलेक्टेड वर्क्स, खड 42, पृ० 80
15. रिचर्ड ए० जॉन्सन, फ्रेमांट ई० कास्ट, जेम्स ई० रोजेंज्विग . [illegible]

भव हो, अनुभव ने यह भी दर्शाया है कि प्रशासन एवं संघटन के संदर्भ में समाजशास्त्रीय एवं सामाजिक-मनोवैज्ञानिक शोध संचालित करना भी आवश्यक है; यह समस्या निर्विवाद रूप से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है तथा इसकी ओर सतर्कतापूर्वक ध्यान दिया जाना अपेक्षित है। प्रशासनिक प्रक्रिया में लोगों के व्यवहार का समाजशास्त्रीय अध्ययन किया जाना इतना आवश्यक है कि इसे टाला नहीं जा सकता। सोवियत विद्वानों ने इस तरह के अध्ययन पहले ही प्रारंभ कर दिये हैं।

जाहिर है इन समस्याओं का विद्वत्तापूर्ण अध्ययन तभी पूर्णता प्राप्त कर सकेगा जबकि सांख्यिकीय विश्लेषण को प्रशासनिक कर्मकों—उनकी योग्यताओं, अनुभव, आचरण की अभिप्रेरणाओं, मूल्य-कसौटियों, अपने संगठनों के दायित्वों एवं लक्ष्यों उनके प्रत्यक्ष बोध, तथा निर्णय लेने एवं क्रियान्वित करने की प्रक्रिया में अंतःसंबंधों की प्रकृति संबंधी उनके प्रत्यक्ष बोध, आदि—के परिष्कृत समाजशास्त्रीय विश्लेषण से पुष्ट किया जा सकेगा।

पश्चिमी देशों में कंप्यूटर के व्यापक प्रयोग ने नये व्यवसायों को जन्म दिया है, संयोजक, गणितीय इंजीनियर, सूचना इंजीनियर तथा अन्य। स्वाभाविक ही है कि प्रशासन सिद्धांत से निःसृत होने वाले अन्य क्षेत्रों में भी विशेषज्ञों की आवश्यकता अनुभव की जा रही है।

समाजवादी देशों के अनुभव—पूंजीवादी देशों के समान ही—ने दर्शाया है कि आर्थिक एवं राज्य-तंत्र की कड़ियों की प्रशासनिक संरचना एवं विधियों को सुधारने के क्रम में शोध एवं व्यावहारिक कार्य के बीच अत्यंत सूक्ष्म विभेदीकरण करने की आवश्यकता है। यहां श्रमिकों एवं किसानों द्वारा निरीक्षण करने की लेनिन द्वारा (प्रशासनिक कामकाज में वैज्ञानिक सिद्धांतों को प्रवर्तित करने वाले विशेषज्ञ यंत्र के रूप में) दिये गये महत्त्व का स्मरण करना उपयोगी होगा।

सोवियत संघ में प्रबंध के सिद्धांत एवं व्यवहार में व्यवस्था-विश्लेषण का प्रयोग निरंतर बढ़ रहा है। यह स्वाभाविक ही है क्योंकि उत्पादन-समूह ही प्रबंध प्रक्रिया की आधारभूत कोशिका है।

इतने संश्लिष्ट समूह के प्रशासन में सैकड़ों ऐसे कार्य निहित होते हैं जिनके विविध परिवर्ती हल संभव होते हैं। विभिन्न समूहों की विविध आवश्यकताओं एवं हितों का ध्यान रखना ही आवश्यक नहीं अपितु समान लक्ष्यों को प्राप्त करने की दृष्टि से उपयोगी विभिन्न अवधारणाओं पर विचार करना भी आवश्यक है। उदाहरण के लिए, उद्यम द्वारा अर्जित लाभ का बंटवारा। कारखाना प्रबंध, जिसकी सबसे बड़ी जिम्मेदारी उत्पादन के प्रति है, का सरोकार सर्वप्रथम आवासन पर धन व्यय करना भी हो सकता है ताकि आवश्यकता के अनुसार कर्मचारियों

को आकर्षित किया जा सके एवं सेवा में बनाये रखा जा सके। कामगर महिलाओं की चिंता वाल विहारों एवं शिशु शालाओं के निर्माण को लेकर हो सकती है जैसे कि युवाओं के लिए खेल सुविधाओं आदि का प्रावधान प्रमुख महत्त्व का हो सकता है। यहां हमारा सरोकार आवश्यकताओं एवं मांगों के निर्धारण की यथाविधि, एक-दूसरे के साथ तथा समूचे समाज के हितों के साथ उनके संबंधों के अध्ययन से है।

सामाजिक संगठनों के वैज्ञानिक अध्ययन के अपने विशिष्ट लक्षण होते हैं। समाजवादी समाज आधुनिक विश्व के सभी समाजों की तुलना में सर्वाधिक संगठित समाज है। समाज का प्रत्येक सदस्य अनिवार्यतः एक संगठन का ही नहीं बल्कि कई संगठनों का सदस्य होता है। विभिन्न संगठनों (आर्थिक, सामाजिक, राज्य संबंधी) की क्रियाविधि एवं विकास को संचालित करने वाले नियमों का अध्ययन प्रशासन सिद्धांत का अत्यंत जटिल एवं महत्त्वपूर्ण प्रकार्य है। संगठन सिद्धांत इस विज्ञान का केंद्र बिंदु है क्योंकि—परिवार अथवा उत्पादन समूह का जीवन कितना ही महत्त्वपूर्ण क्यों न हो—मनुष्य एवं समाज पर सबसे गहरा प्रभाव सामाजिक संगठन का होता है। सामाजिक संगठनों के क्रिया व्यापार का नियमन करने वाले नियमों के अध्ययन से सामाजिक प्रगति अथवा ह्रास के कई रहस्य उद्घाटित होते हैं।

प्रशासन के व्यवस्थापरक दृष्टिकोण से नया परिदृश्य प्राप्त होता है। इसके अंतर्गत प्रशासनिक क्रिया-व्यापार के संदर्भ में व्यावहारिक प्रयोग एवं समस्या प्रविधियों की दृष्टि से विचार किया जा सकता है।

हम प्रशासनिक प्रक्रिया का विश्लेषण क्रियात्मक अभिव्यक्ति के माध्यम से करने के अभ्यस्त हो चुके हैं। नगरीय प्रशासन को विभिन्न प्रकार्यों में विभक्त कर दिया जाता है तथा संगठनात्मक प्रखंडों की बहुधा इनके साथ संगति होती है: उद्योग संस्कृति, जन-स्वास्थ्य आदि का प्रशासन। वस्तुतः इनमें से प्रत्येक दायरे पर पृथक विचार किया जाता है। इन प्रखंडों में से प्रत्येक से जुड़े प्रश्नों का अध्ययन किया जाता है, निर्णय लिये जाते हैं तथा पर्यवेक्षण किया जाता है। चालू प्रशासनिक जिम्मेदारियों को पूरा करने की दृष्टि से ऐसा करना स्वाभाविक ही है किंतु दीर्घ कालीन नियोजन के लिए इस तरह का दृष्टिकोण अपर्याप्त है। क्योंकि शहर एक ऐसी इकाई व्यवस्था होता है जहां प्रत्येक चीज होती है। जब कारखाना निर्मित होता है तो श्रमिक बल—चाहे उपलब्ध कर्मकों के पुनर्वितरण से अथवा बाहर से नये कर्मचारियों को आकृष्ट करके—उपलब्ध कराने के प्रश्न पर विचार किया जाता है। इसी के साथ कर्मचारियों के लिए आवास, यातायात, सड़क तक पहुंच, खाद्य एवं कहवाघरों, दुकानों, विद्यालयों, सिनेमाघरों तथा प्रबंध कर्मियों से जुड़े प्रश्न भी उभरते हैं।

संक्षेप में, कारखाना निर्मित करने के सवाल को आर्थिक, प्रौद्योगिक, सामाजिक, यातायात संबंधी एवं अन्य समस्याओं के समुच्चय के रूप में देखा जाना चाहिए। लेकिन मात्र यही व्यवस्थापरक दृष्टिकोण नहीं है। अंतर्ग्रंथित दृष्टिकोण विकसित करने के लिए इन कारकों पर विचार करना अनिवार्य है जबकि व्यवस्थापरक दृष्टिकोण के लिए समस्या का सांगोपांग विश्लेषण अनिवार्य है।

नगरीय प्रशासन पर लागू किये जाने पर इसका अर्थ है नगरीय जीवन के समस्त क्षेत्रों के आपसी संबंधों का निर्धारण, कार्य साधक एवं श्रेणीबद्ध विशिष्टीकरण पर विचार तथा नियमन एवं संतुलन। किंतु यही सब कुछ नहीं है। इसके लिए लक्ष्यों एवं उन्हें प्राप्त करने के साधनों के प्रतिरूपों का निर्माण (जहां तक संभव हो मात्रात्मक सूचकांकों की सहायता से), तत्त्वों का सादृश्य, व्यवस्था के साथ उनका संबंध एवं व्यवस्था के तत्त्वों की अंत क्रिया आवश्यक है। इस तरह का दृष्टिकोण व्यावहारिक समस्याओं के समाधान को संभव बनाता है—कि साधनों को सबसे पहले कहां उपयोग में लाया जाय तथा संसाधनों का सर्वोत्तम उपयोग कैसे किया जाय कि शहर की आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके।

व्यावहारिक आधार पर चिंतन, पूरे शहर के समुचित क्रिया-व्यापार के लिए, प्रत्येक जिम्मेदारी के सापेक्ष महत्त्व को कायम करने में सहायता करता है। नगरीय प्रशासन अपने अनुभव के आधार पर प्राथमिकताओं का क्रम निश्चित करता है। यदि औद्योगिक शहर की बात हो तो उद्योग की आवश्यकताएं प्राथमिक होती हैं क्योंकि इस पक्ष पर काफी राष्ट्रीय ध्यान केंद्रित होता है। व्यवस्थापरक दृष्टिकोण के अंतर्गत पूरे देश के हितों के साथ शहर के हितों को जोड़कर लक्ष्यों का निर्धारण किया जाता है।

व्यवस्थापरक दृष्टिकोण, अधिक पूर्ण सूचना एवं अनुभवजन्य सामग्री के साधारणीकरण के आधार पर, ऐसे गतिशील प्रतिरूप के निर्माण को संभव बनाता है जिससे कि श्रेष्ठ प्रशासन वास्तविकता बन जाता है। व्यवस्था-विश्लेषण की तुलना किसी भी वस्तु के अध्ययन के लिए काम में लाये जाने वाले शक्तिशाली ताल (शीशा) से की जा सकती है। ताल के माध्यम से हमें समूची सरचना अंतर्ग्रंथित समग्रता के रूप में—संघटक तत्त्वों की अंत.क्रिया तथा व्यवस्था एवं पर्यावरण की अंतः क्रिया के साथ—दिखाई पड़ती है।

यह दृष्टिकोण प्रशासन के किसी भी क्षेत्र में एवं किसी भी स्तर (उद्यम, शहर, मंत्रालय) पर लागू किया जा सकता है। हालांकि यह कतई जरूरी नहीं कि इसका उपयोग सरचनात्मक दृष्टि से पृथक संस्था के क्रिया कलाप पर किया जाय। इसका उपयोग विभिन्न संरचनाओं वाली संस्थाओं (शिक्षा, जनस्वास्थ्य, सामाजिक व्यवस्था आदि) से संबंधित कार्य-क्रमों एवं समस्याओं के विश्लेषण के

लिए किया जा सकता है।

यह सब न तो मुफ्त है और न रामबाण। सामाजिक-आर्थिक नियोजन श्रेष्ठ संगठनात्मक कार्य का स्थानापन्न नहीं है किन्तु यह उक्त कार्य के लिए ठोस आधार अवश्य प्रस्तुत करता है।

समाजवाद के अंतर्गत व्यवस्था-विश्लेषण का उपयोग विदेशी अनुभव से *महत्वपूर्ण रूप से भिन्न है। यह उन समस्त साधनों का दोहन करता है जो कि* प्रशासनिक व्यवस्था के विभिन्न स्तरों के घनिष्ठ अंतःसंबंधों से उत्पन्न होते हैं। ऐसी समस्या, जो तनिक भी महत्वपूर्ण हो, का पता लगाना बहुत मुश्किल है जिसका स्थानीय व्यवस्था की सीमाओं के भीतर श्रेष्ठ समाधान संभव हो। व्यवस्था-विश्लेषण वांछित परिणाम तभी दे सकता है जबकि सामाजिक-आर्थिक नियोजन की समूची परिधि को घेर ले। इस प्रक्रिया के लिए अपरिहार्य रूप से आवश्यक है कि प्रशासनिक व्यवस्था की विभिन्न कड़ियों के अधिकारों एवं *दायित्वों का पुनर्वितरण हो ताकि प्रत्येक उप-व्यवस्था के अंदर साधनों के* उपयोग तथा विशिष्ट समस्याओं के निपटारे की दृष्टि से अधिकतम स्वतंत्रता उपलब्ध हो सके।

एक अन्य विशिष्ट लक्षण नियोजन, पूर्वाभास एवं प्रशासन के अंतःसबंध से संबंधित है। समाज के अंतर्गत पूर्वाभास नियोजन का ही महत्वपूर्ण घटक है तथा प्रशासनिक प्रक्रिया, अन्य सामाजिक संरचनाओं की तुलना में, पर नियोजन का कहीं अधिक प्रभाव पड़ता है। स्वयं नियोजन में तथा प्रशासनिक प्रक्रिया में *संयोजित व असंयोजित तत्वों का वर्णन प्रशासन सिद्धांत की मूलभूत शोध समस्याओं में से एक है।*

व्यवस्था-विश्लेषण के नियोजित अर्थव्यवस्था पर लागू किये जाने की विधियों का विश्लेषण इस विद्या का एक और तत्त्व है: अर्थशास्त्रियों, समाजशास्त्रियों, सामाजिक मनोवैज्ञानिकों, गणितज्ञों एवं अन्य विशेषज्ञों के संयुक्त प्रयासों से इसका परीक्षण किया जा सकता है।

निर्णयों की अधिकतम प्रभावशीलता के प्रति आश्वस्ति कैसे पैदा की जाय? प्रशासन सिद्धांत की दृष्टि से श्रेष्ठ निर्णय क्या है? संक्षेप में, यह विभिन्न संभाव्य विकल्पों के बीच से, क्रिया व्यापार की उस विधि का चयन है जो कि सुनिश्चित कार्य के प्रभावी ढंग से पूरा किये जाने को संभव बनाती है।

समस्याओं के समाधान में होने वाली ग़लतियों के कुछ ख़ास कारण होते हैं: ग़लत ढंग से परिभाषित *क्रियात्मक उद्देश्य, विकल्पों के संतोषप्रद समुच्चय का अभाव, स्वीकृत निर्णय* से संबंधित भविष्य में होने वाले ख़र्चों का अपर्याप्त परिकलन (व्यवहार में, अक्सर यही कारण होता है)। निर्णय में संशोधन की तथा बदली हुई परिस्थितियों में (जैसे नया आविष्कार होने पर आवश्यकता पड़ने

पर) फेर-बदल की गुंजाइश होनी चाहिए। व्यवहार में सार्वत्रिक रूप से यह स्थिति नहीं है।

लक्ष्यों का सही परिभाषित किया जाना बेहद महत्त्वपूर्ण है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाने पर यह कोई आसान काम नहीं है। लक्ष्य, अथवा लक्ष्यों का परिभाषित किया जाना, खासकर जबकि हमारा सरोकार एक-दूसरे से जुड़े कार्यों के पदानुक्रम से हो, निर्णय लेने की प्रक्रिया में सबसे कठिन अवस्था के रूप में सामने आता है।

मात्रात्मक सूचकांक निश्चित करना नियोजन का प्रारंभिक सिद्धांत है—उदाहरण के लिए, एक वर्ष के लिए अथवा पांच वर्ष की अवधि में कोयला, बिजली ऊर्जा अथवा तेल के उत्पादन में प्रतिशतीय वृद्धि के लक्ष्य। किंतु हम जानते हैं कि प्रतिशतीय वृद्धि का निर्धारण भी स्वयं में एक समस्या है तथा इसे सापेक्ष उत्पादन क्षमता, वित्तीय संसाधनों, श्रम शक्ति आदि से संबंधित व्यापक सूचना पर आधारित होना चाहिए। लक्ष्य निर्धारण का व्यवस्थापरक दृष्टिकोण सामान्य मूल्य-संचयन के सिद्धांत में दो तात्विक संशोधनों को अवश्यभावी मानता है।

प्रथमतया समस्या को व्यापक संदर्भ में देखा जाता है। पूर्व में दिये गये उदाहरणों पर लागू किये जाने पर इसका अर्थ है 'ईंधन आधार' के संदर्भ में समस्या को देखना। यह संभव है कि किसी अवस्था में एक क्षेत्र में संसाधनों का विनियोजित किया जाना—उदाहरण के लिए तेल उत्पादन अथवा तेल शोधन में, तथा दूसरे क्षेत्र में—कोयला उत्पादन में—विनियोग की कटौती अधिक उपयोगी लगे।

दूसरे, लक्ष्यों के संबद्ध पदानुक्रम की परिभाषा-कार्यों के बीच पदानुक्रमी का निर्धारण (क्रियान्वयन के क्रम के प्रकार्य के रूप में)। सर्व प्रथम प्रमुख लक्ष्य परिभाषित किया जाता है—कि किसी खास वर्ष तक अर्थव्यवस्था को ऊर्जा आपूर्ति का क्या स्तर प्राप्त करना है। इसके बाद गौण लक्ष्य निर्धारित होते हैं—ईंधन आधार में इतनी वृद्धि, बिजली एवं परमाणु ऊर्जा के उत्पादन में इतनी वृद्धि आदि। इन गौण लक्ष्यों को और भी सटीक आंकड़ों में व्यक्त किया जाता है। सामान्य व्यवस्था के भीतर लक्ष्यों के आपसी संबंधों का विश्लेषण आवश्यक परिवर्तनों की अनुमति देता है—एक सूचकांक में वृद्धि तथा दूसरे सूचकांक में कमी, ताकि बुनियादी कार्य प्रभावी तरीके से संपादित हो सके।

यहां यह समझ पाना मुश्किल नहीं होना चाहिए कि विशिष्ट सामाजिक लक्ष्यों का निर्धारण मामले को किस तरह उलझा देता है। यह सही है कि सामाजिक लक्ष्यों की कल्पना ऐसी आकांक्षा के रूप में की जा सकती है जो एक खास अवधि में उत्साह पैदा करती है तथा जिसका सकारात्मक सामाजिक अर्थ होना है।

लेकिन समय बीतने के साथ यह संभव है कि उक्त आकांक्षा क्रियान्वित न हो पाये। अथवा यदि हुई भी है तो पूरी तरह से नहीं। ऐसे में क्या किया जाये? यह भी कहा जा सकता है कि आकांक्षा तो अच्छी थी, किन्तु विशिष्ट सामाजिक कार्य के निष्पादन के संदर्भ में उक्त दृष्टिकोण की अपर्याप्तता को भी स्वीकार किया जाना चाहिए।

1920 के दशक में सोवियत न्यायशास्त्र ने 'निकट भविष्य में देश में अपराध को समाप्त करो' के नारे का व्यापक उद्घोष किया। यह निस्संदेह सुन्दर नारा था। किंतु इस नारे के इर्द-गिर्द न्यायिक निकायों के काम को संगठित करने से यह कार्य मात्र अस्त व्यस्त हो गया।

अपराध वृत्ति समाप्त करने के तरीकों की उत्कट खोज का परिणाम क्या हो सकता था? उदाहरण के लिए, इसका परिणाम कड़ी सजा का प्रावधान हो सकता था, ताकि लोगों को लक्ष्य प्राप्ति के लिए प्रभावी संघर्ष का आभास हो सके. कि सभी अपराधियों को पकड़ो और लंबी अवधि के लिए उन्हें जेलों में भर दो- और इस तरह अपराध वृत्ति को समाप्त कर दो।

विभिन्न प्रयोगों के बाद, विशिष्ट एवं यथार्थपरक लक्ष्यों की प्राप्ति की दिशा में, अधिक तर्कसंगत दृष्टिकोण विकसित किया गया : व्यावसायिक अपराध की समाप्ति, बाल अपराध में तीव्र कमी, राजनीतिक अपराधों में न्यूनतम तक की कमी, सामंती-जन जातीय पूर्वाग्रहों से उत्पन्न अपराध का पूर्ण सफाया।

कार्यों एवं लक्ष्यों को अधिक मूर्त्त बनाने तथा समस्याओं की सटीक संरचना प्रस्तुत करने से उनके समाधान के लिए व्यवस्था-विश्लेषण को सही प्रस्थान-बिंदु मिल आता है। उदाहरण के लिए, अपराधवृत्ति से संघर्ष करने के लिए यह आवश्यक है कि इस घटनाक्रिया की जड़ों—सामाजिक, सामाजिक-मनोवैज्ञानिक, सामाजिक-नैतिक—का समग्रता में तथा सांगोपांग विश्लेषण किया जाय तथा उपायों—*राज्य-न्यायिक, शैक्षणिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक, आदि*—को लागू किया जाय।

वैज्ञानिक विश्लेषण, लक्ष्य निरूपण, तथा उसके पश्चात पदानुक्रम आबद्ध लक्ष्यों—*जिनमें रणनीति संबंधी, कार्यनीति संबंधी दीर्घ एवं सीमित परास के,* मूलभूत एवं सीमित कार्य सम्मिलित होते हैं—के निर्धारण की अनुमति प्रदान करता है। सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी के 24वें अधिवेशन में स्वीकृत शांति कार्यक्रम इसका एक अच्छा उदाहरण है।

एक अन्य क्षेत्र—शिक्षा—का उदाहरण लें जहां व्यवस्थापरक दृष्टिकोण की विशेष जरूरत है। वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक क्रांति की *आवश्यकताओं को ध्यान में* रखकर जन-शिक्षा की व्यवस्था को कैसे निर्मित किया जा सकता है एवं उसमें सुधार लाये जा सकते हैं? व्यापक एवं स्वतंत्र चिंतन की क्षमता के विकास एवं

विशेषज्ञता को कैसे संयोजित किया जा सकता है ? तथा सामाजिक-राजनीतिक एवं सौंदर्य शास्त्रीय शिक्षा का क्या स्थान होना चाहिए ? यहां यह दिखाना कतई आवश्यक नहीं है कि यह अत्यंत व्यापक पैमाने वाले परिवर्तन, प्रयत्न एवं प्रयोग संभव एवं आवश्यक हैं।

सार्वभौमिक सैकंडरी शिक्षा लागू करने का एक तरीका व्यावसायिक शिक्षा प्रदान करने वाली सैकंडरी शिक्षा का अग्रिम विकास है, तथा ऐसा करते हुए भी सामान्य शिक्षा विद्यालय की प्रमुखता बनाये रखना आवश्यक है।

9वें पंचवर्षीय काल में सायंकालीन विद्यालयों एवं पाठ्यक्रमों की संख्या में निरंतर वृद्धि हुई। साठ से अधिक उच्च शिक्षा संस्थाएं, जिनमें—नौ विश्वविद्यालय सम्मिलित हैं, स्थापित हुई हैं। विद्यालयों एवं उच्च शिक्षा संस्थाओं में शैक्षणिक कार्यक्रमों के कायाकल्प की दृष्टि से काफ़ी काम हुआ है। साथ ही, वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक क्रांति इस क्षेत्र में नयी अपेक्षाएं प्रस्तुत करती है. इन सब का सावधानीपूर्वक अध्ययन आवश्यक है।

पिछले कुछ दशकों में उच्च शिक्षा में विभेदीकरण बढ़ा है। एक खास अवस्था में, यह सकारात्मक विकास था जिसके अंतर्गत खास कर तकनीकी विज्ञानों में विशेषज्ञों के गहनतर ज्ञान एवं बढ़िया व्यावसायिक प्रशिक्षण को बढ़ावा मिल रहा था। किंतु वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक क्रांति ने एक नये दृष्टिकोण को आवश्यक बना दिया है जिसे शिक्षा की सार्वभौमिकता में वृद्धि के साथ-साथ विशेषज्ञता की बढ़ोतरी के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।

इन दिनों हम व्यवसायों की पहले से अधिक विशेषज्ञता देख पा रहे हैं—भौतिक रसायनशास्त्री, धातु भौतिकशास्त्री, भू-भौतिकशास्त्री, जैव भौतिकशास्त्री, समाजशास्त्री, सामाजिक मनोवैज्ञानिक आदि। समाजशास्त्र भी आर्थिक समाजशास्त्र, सांस्कृतिक समाजशास्त्र, प्रशासनिक समाजशास्त्र आदि में उप-विभाजित हो चुका है। जिसे हम सार्वभौमिक प्रशिक्षण कहते हैं उसकी ओर भी हमें पहले से अधिक ध्यान देने की जरूरत है : सृजनात्मकता एवं आत्मनिर्भरता के विकास, नई सूचना को तीव्रता से आत्मसात करने, नई समस्याओं के प्रति लचीला रुख अपनाने, व्यावसायिक एवं सामाजिक चिंतन में व्यापकता को बढ़ावा देने के संदर्भ में। इंजीनियरों को श्रम-संघटन, उत्पादन प्रबंध एवं सामाजिक मनोविज्ञान की समस्याओं की ठोस पृष्ठभूमि, से युक्त होना चाहिए क्योंकि उनमें से अधिकांश उत्पादन एवं श्रम-समूहों को नेतृत्व प्रदान करते हैं अतः उनके लिए तकनीकी ज्ञा ही नहीं अपितु मानवीय संबंधों के क्षेत्र में अनुभव भी अपरिहार्य है।

वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक क्रांति द्वारा उत्पन्न एक अन्य समस्या सैकंड शिक्षा एवं उत्पादन की जरूरतों के बीच अंतराल की शुरूआत है। 1930 औ बाद में 1950 के दशकों में प्रस्तुत सैकंडरी शिक्षा संबंधी लक्ष्य अकालिक ग

आधार थे। ऐसा नहीं है कि वांछित संख्या में विद्यालयों एवं शिक्षकों के अभाव के कारण उस समय इन्हें पूरा कर पाना कठिन था। विभिन्न अध्ययनों ने युवकों को व्यावसायिक उन्मुखीकरण प्रदान करने तथा सैकंडरी शिक्षा प्राप्त युवाओं को काम पर लगाने की मुश्किलों को प्रदर्शित किया है। बड़ी संख्या में युवा दस-साला विद्यालयों से उच्च शिक्षा संस्थाओं की ओर नहीं बल्कि कारखानों की ओर प्रस्थान करते हैं। वे यहां काम की अंतर्वस्तु एवं काम की परिस्थितियों के लिए मनोवैज्ञानिक रूप से समुचित रूप से तैयार नहीं होते। इससे असंतोष, नौकरियों में बार-बार परिवर्तन तथा सामाजिक अनुकूलन में कठिनाइयां उत्पन्न होती हैं।

सोवियत राज्य सार्वभौमिक सैकंडरी शिक्षा का सूत्रपात करके इसे पूरा कर चुका है। इन दिनों सैकंडरी शिक्षा प्राप्त युवाओं को उत्पादन में संलग्न करने तथा इन्हें उसके अनुकूल बनाने के प्रयास किये जा रहे हैं। इसी से सैकंडरी शिक्षा के स्वरूप को परिभाषित करने वाले विकल्पों का चयन निर्धारित होता है। तकनीकी सैकंडरी शिक्षा के महत्त्व, सामान्य शिक्षा विद्यालयों को उत्पादन प्रशिक्षण की ओर उन्मुख करने, विद्यालय एवं उत्पादन के मध्य विभिन्न किस्म के संपर्क कायम करने आदि के बारे में बहुत-सी संभावनाएं उभर रही हैं।

शिक्षा के क्षेत्र में एक अन्य सामाजिक समस्या है नगरीय एवं ग्रामीण क्षेत्रों में, तथा विभिन्न सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमियों से आने वाले बच्चों के लिए शिक्षा के समान अवसरों को सुनिश्चित करना। इस समस्या के समाधान का एक संभाव्य तरीका यह है कि उच्च शिक्षा संस्थाओं में प्रवेश में, महाविद्यालयों के लिए तैयारी के पाठ्यक्रमों में प्रवेश में उन्हें प्राथमिकता दी जाय तथा निम्न आय वर्ग के परिवारों के बच्चों को वजीफे दिये जाएं। इसके सुनिश्चित परिणाम तो सामने आते हैं किंतु यह शिक्षण के स्तर को प्रभावित किये बिना नहीं रहता। दीर्घकालिक गणना की दृष्टि से एक अन्य विकल्प यह है कि ग्रामीण विद्यालयों में शिक्षा का स्तर उन्नत किया जाय, ग्रामीण शिक्षकों को बेहतर भौतिक पुरस्कार दिये जाएं, ग्रामीण विद्यालयों में शिक्षण की तकनीकी सहायताओं में वृद्धि की जाय, पाठ्येतर कार्य को संयोजित किया जाय। इस समस्या के समाधान में संभवतया यह परिवर्त अधिक प्रभावी हो सकता है।

ज्ञान के नये क्षेत्रों में विशेषज्ञों को प्रशिक्षित करने की संभावनाओं के बारे में भी लगभग यही कहा जा सकता है। इस समस्या का समाधान भी कई तरीकों से किया जा सकता है—विश्वविद्यालय केंद्रों को स्वायत्तता प्रदान करने, विश्वविद्यालयों में शिक्षण कार्यक्रमों की संख्या में वृद्धि करके, प्रयोगधर्मी प्रशिक्षण चलाकर, विज्ञान एवं उत्पादन के बीच घनिष्ठ संबंध कायम करके।

परिणामस्वरूप, इस कार्यक्रम को भी व्यवस्था के रूप में देखा जाना चाहिए; इसके विकास की संभावनाओं को समाज की आर्थिक एवं सामाजिक प्रगति के

साथ जोड़ा जाना चाहिए। संसाधनों—वित्तीय, तकनीकी, बौद्धिक—का वितरण इन आवश्यकताओं के अनुरूप ही होता है तथा इन्हीं के अनुरूप तात्कालिक एवं दीर्घकालिक लक्ष्यों एवं दायित्वों का निर्धारण होता है।

लक्ष्य निर्धारण व्यवस्थापरक दृष्टिकोण की मात्र पहली अवस्था है। विकल्पों का विवेचन अगली अवस्था है। 'चयन' की समस्या जनता के लिए ही नहीं अपितु व्यावसायिक मस्तिष्क के लिए भी कठिन समस्याओं में से एक है।

मानव मस्तिष्क अपने इस बोझ को कंप्यूटरों पर स्थानांतरित करने के लिए अत्यधिक ऊर्जा का व्यय कर रहा है। प्रशासकों का महत्त्वाकांक्षी सपना यह है कि काम के दिन की समाप्ति पर कम्प्यूटर को समस्या सौंपकर चले जाएं तथा अगली सुबह लौटने पर अपनी मेज पर उसका हल पाएं जिस पर हस्ताक्षर करके उसे वे क्रियान्वित कर सकें। मनुष्य की आशाएं यदि इस दृष्टिकोण पर आश्रित रहती हैं तो प्रौद्योगिकी उन्हें लंबे समय तक, निराश ही करेगी। गणितज्ञों का कहना है कि तुम्हें मशीन से वही प्राप्त होता है जो तुम उसमें डालते हो। मूल परेशानी, आज भी और निकट भविष्य में भी, समस्याओं के वैज्ञानिक निरूपण को लेकर है।

अभी तक सापेक्ष रूप से ऐसी समस्याएं कम हैं जिनकी संरचना को इस प्रकार गढ़ा जा सके कि उनकी कड़ियों एवं आपसी संबंधों को अंकों एवं प्रतीकों से व्यक्त किया जा सके तथा जिनके संख्यावाचक समाधान प्राप्त किये जा सकें। गणितीय पद्धतियों एवं प्रतिरूपों (रेखीय, अरेखीय, गतिशील प्रोग्रामिंग, खेल सिद्धांत आदि) की सहायता से क्रियाविधि संबंधी शोध के माध्यम से केवल अनम्य संरचनाओं में व्यक्त समस्याओं का समाधान ही संभव है।

अधिकांश समस्याएं निस्तेज संरचनाओं में व्यक्त होती हैं। ये व्यवस्था विश्लेषण के लिए व्यापक भूमि प्रस्तुत करती हैं। इनमें अधिकांश तकनीकी, आर्थिक, सैन्य एवं रणनीति संबंधी तथा राजनीतिक समस्याएं सम्मिलित हैं।

अंत में, समस्याओं का एक ऐसा समूह भी है जिसकी संरचनाएं प्रस्तुत नहीं की जा सकतीं। इनके संदर्भ में अधिक से अधिक यह किया जा सकता है कि समस्त आवश्यक जानकारी एकत्र कर ली जाय, विशेषज्ञों का मत जान लिया जाय तथा समस्या के प्रति 'व्यावसायिक' रूप से अभ्यस्त हो जाया जाय, निर्णय लेने वाले व्यक्तियों को ज्ञान एवं अंतःप्रेरणा से संपन्न कर दिया जाय। यह स्वतः शोध विधि कहलाती है। ज़ाहिर है यह आर्थिक एवं सामाजिक समस्याओं के समाधान में प्रयुक्त होने वाली प्राचीनतम विधि है जिसका आज भी सर्वाधिक प्रयोग किया जाता है। प्रतिरूप-निर्माण इस क्षेत्र में अमूर्तीकरण का उच्चतम स्तर है।* अमरीकी विशेषज्ञों—आर० जॉनसन, एफ़० कास्ट एवं जे० रोजेंविग—का 'द थियरी एंड मैनेजमेंट ऑफ़ सिस्टम्स' में कहना है :

"यह मान लेना खतरनाक होगा कि प्रबंध विज्ञान का सारा काम इलेक्ट्रॉनिक कम्प्यूटर के माध्यम से ही होना चाहिए। संबंधित समस्याओं का विश्लेषण समाधान के लिए आवश्यक अत्यंत संभाव्य तकनीकों एवं तथ्यों के अत्यंत कुशल संसाधन के आलोक में किया जाना चाहिए। संपत्ति-सूची, गुणवत्ता एवं उत्पादन नियंत्रण के क्षेत्र में प्रबंध निर्णयों के स्वचालन की प्रविधियों के विकसित होने के साथ-साथ गणितीय विश्लेषण को सामान्य तथ्य-संसाधन प्रणालियों में संयोजित किया जा सकता है। ऐसी स्थितियों में स्वचालित निर्णयों के लिए आवश्यक गणितीय विश्लेषण को समग्र सूचना-निर्णय प्रणाली में अंतःस्थापित किया जा सकता है ताकि दैनंदिन क्रियाविधि से उत्पन्न होने वाली अपवादस्वरूप परिस्थितियों के अतिरिक्त अन्य सभी से निपटा जा सके। दीर्घकालिक नियोजन जैसे क्षेत्र में प्रबंध निर्णयों के लिए वृहत-मापी गणितीय विश्लेषण की आवश्यकता पड़ सकती है। ऐसी स्थिति में कंप्यूटर सूचना-निर्णय प्रणाली के तथ्य-संसाधक के रूप में कार्य न करके, समाधान दौर में प्रमुखतया गणक के रूप में कार्य करता है।"[16]

अकादमीशियन ए० एन० कोलमोग्रोव का कथन है कि "यदि शोध के प्रत्येक नये कदम को समस्या के गुणात्मक रूप से नये पक्षों के साथ जोड़ दिया जाता है तो गणितीय विधि पृष्ठभूमि में चली जाती है; तथा ऐसी स्थिति में गणितीय वर्गीकरण घटना क्रिया की विशिष्टता के द्वंद्वात्मक विश्लेषण को धुंधला ही बनायेगा।"[17]

स्पष्ट है कि निर्णय का चयन अभी भी विवेक एवं अंतःप्रेरणा की समस्या है। व्यवस्था-विश्लेषण दो तरह से मदद करता है: एक, यह समस्या को तर्कसंगत संरचना प्रदान करता है तथा सूचना-संग्रह, लक्ष्यों की परिभाषा, विकल्पों के विवेचन, निर्णयों की श्रेष्ठता आदि को व्यवस्थित करता है; दो, यह परिमाणात्मक सूचकांकों के अधिकतम उपयोग को संभव बनाता है। किंतु यह मानवीय विवेक, अनुभव, अंतःप्रेरणा पर आधारित समस्या से जूझने की क्षमता तथा सर्जनात्मक मेधा का स्थान कतई नहीं ले पाता।

यह कल्पना स्वाभाविक ही है कि परिमाणात्मक मानक सर्वाधिक अंतरराष्ट्रीय तनाव क्षेत्रों, विश्व स्तर पर सामाजिक संबंधों के संकटों की उसी तरह भविष्यवाणी करने में मदद कर सकते हैं जैसे कि मौसम विज्ञान मौसम के बारे में दीर्घ-परासी भविष्यवाणी करता है। लेकिन ऐसी कौन-सी मशीन हो सकती है जो कि यह भविष्यवाणी कर सके कि एकदम कब और ठीक कहाँ राजनीतिक संकट उभ-

16. आर० कोलमन, एल०, [illegible], डे० [illegible] : द थियरी [illegible], पृ० 237 23
17. द ग्रेट सोवियत इनसाइक्लोपीडिया, खंड 26, पृ० 464 (रूसी में)

रेंगे, अथवा कब और कहां सैन्य मुठभेड़ें प्रारंभ होंगी ? तथा क्या विवाह, तलाक, मित्रता अथवा किसी के साथ संबंध खत्म करने जैसी स्थितियों में लिये जाने वाले निर्णयों में बुद्धि भावना का स्थान ले सकती है ? पुरानी विधि—मानवीय तर्क, भावना एवं अंत प्रेरणा पर भरोसा रखना—का स्थान कंप्यूटर कभी नहीं ले सकता।

निर्णय करने एवं समूचे प्रशासन से संबंधित सूचना इकट्ठा करना भी आसान काम नहीं है। नीचे दिये गये आंकड़े 'सूचना विस्फोट' को प्रमाणित ही करते है। 1960 के दशक तक पुस्तकों एवं अन्य छपी हुई सामग्री के शीर्षकों की सख्या लगभग दस करोड़ थी। इस सख्या में प्रतिवर्ष चालीस लाख लेखों एवं चार लाख पुस्तकों की वृद्धि होती है। पेटेंट किये आविष्कारों की सख्या ही लगभग एक करोड़ तीस लाख है। व्यवहार में, सूचना का बड़ा हिस्सा असयोजित है। यह हिसाब लगाया गया है कि विश्व के बड़े पुस्तकालयों में साठ से अस्सी प्रतिशत पुस्तकों का कभी भी उपयोग नहीं किया गया है। कभी न पढ़े गये पृष्ठों की सख्या तथा कुल छपे हुए पृष्ठों की सख्या के सह संबंधों का हिसाब भी लगाया गया है; पाठकों के एक सर्वेक्षण से पता चला है कि कुल प्रकाशित विद्वतापूर्ण साहित्य का 85 प्रतिशत रद्दी कागज माना जा सकता है क्योंकि उसे किसी ने भी पढ़ने की इच्छा व्यक्त नहीं की है।

इसी से सूचना के सचयन, ससाधन एवं पुनरुत्पादन की नयी आवश्यकता का जन्म होता है। यह काम आज कल विभिन्न तकनीकी नये प्रयोगों की सहायता से कमोबेश सफलता से चलाया जा रहा है, जिनमें मशीन द्वारा सूची तैयार करना, मशीन-सचयन एवं सूचना पुन. प्राप्त करना शामिल हैं। विशेषज्ञों की राय में भविष्य में पुस्तकों की मूल प्रतियों को सूचना केंद्रों में माइक्रो प्रिंट्स के रूप में सुरक्षित रखना सभव होगा। अध्येता द्वारा किसी विशिष्ट विषय पर साहित्य की मांग की जाने पर कम्प्यूटर कोड की सहायता से समस्त प्रासंगिक साहित्य का पता चला लेगा तथा उसका पुनरुत्पादन कर देगा।

इस तरह की विधि के उदाहरण नाभिकीय भौतिकशास्त्र एवं रसायनशास्त्र में पहले से विद्यमान हैं। सुदूर भविष्य में, सभवतया हमारे समकालीनों में से अधिकांश के जीवनकाल में, कम्प्यूटर न केवल सूचना खोज पाने में बल्कि उसका मूल्यांकन कर पाने में भी सक्षम होंगे। स्वचालित मशीन मौजूदा सूचना को सयोजित करने में तो समर्थ होगी ही, कुछ वर्षों में स्वय की ओर से वैज्ञानिक कार्य भी कर पायेगी।

हाल ही के वर्षों में अध्येताओं एव व्यावहारिक कार्य में सलग्न विशेषज्ञों का यह मत निरतर पुष्ट हुआ है कि प्रशासन के लिए सूचना प्रणालियों के उपयोग में

जो मुख्य काम निहित है वह है सामाजिक सूचना की राशि में वृद्धि एवं उनका 'वर्गीकरण'।

मंत्रालयों एवं विभागों के स्तर पर स्वचालित प्रणालियों के अनुभव ने उत्पादन कुशलता की आर्थिक एवं इंजीनियरी कसौटियों की अपर्याप्तता सिद्ध कर दी है। सामाजिक संरचना तथा उत्पादन एवं प्रशासनिक प्रक्रिया में मनुष्य की स्थिति के बारे में अत्यंत विविध समाजशास्त्रीय सूचना एकत्रित करने की विधियां ईजाद करना आवश्यक है। दूसरे शब्दों में, हमें आर्थिक व्यवस्थाओं, सामाजिक एवं नैतिक मानदंडों, उत्प्रेरकों, परंपराओं एवं मूल्यों की संरचनाओं में मानवीय व्यवहार के परिमाणात्मक ही नहीं बल्कि गुणात्मक लक्षणों की भी आवश्यकता है। लेकिन इस प्रक्रिया की द्वंद्वात्मकता इस तरह की है कि हमें सूचना-राशि का सतर्कतापूर्वक चयन करके इसमें न केवल वृद्धि करनी है, बल्कि कमी भी करनी है।

व्यवस्था-विश्लेषण क्रियागत् आधार पर सूचना का चयन करता है। इसका अर्थ है प्राप्त किये जाने वाले लक्ष्य से जुड़े आंकड़ों के चयन एवं संसाधन में संबंधित प्रणाली अथवा उप प्रणाली की संलग्नता। उक्त सूचना उन सभी प्रक्रियाओं, जो व्यवस्था को वांछित लक्ष्य की ओर ले जाती हैं, का सुसबद्ध लक्षण वर्णन निहित होना चाहिए। अत्यधिक सूचना उतनी ही हानिकारक हो सकती है जितनी कि अत्यत अल्प सूचना।

निर्णयों की श्रेष्ठता के लिए विज्ञान जो कुछ उपलब्ध करा सकता है वे हैं विकल्प ईजाद करने की विधियां। यह व्यवस्था-विश्लेषण का केंद्रीय बिंदु है। यह निर्णयों की प्रभावशीलता निर्धारित करनेवाली समस्याओं एवं समूचे प्रशासन का प्रतिच्छेद बिंदु है। श्रेष्ठ निर्णयों तक पहुंचने की सर्वोत्तम गारंटी निस्संदेह रूप से घोषित लक्ष्यों तक पहुंचने के लिए मार्ग-बहुलता में निहित है।

व्यवस्थापरक दृष्टिकोण से उत्पन्न होने वाली अत्यधिक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता प्रशासनिक संरचना मे सुधार लाना है। सोवियत संघ में संघटन की प्रभावशीलता परखने की कई कसौटियां प्रचलित हैं। पहली है आर्थिक कसौटी, क्योंकि अधिकांश मामलों में आर्थिक संगठनों का ही मूल्यांकन होता है। इस बात पर आम सहमति है कि प्रशासन के क्षेत्र मे लागत लेखा के बढते हुए उपयोग की अपार संभावनाएं हैं। यह अपने आप मे काफ़ी महत्त्वपूर्ण है। उत्पादन लागत लेखा सगठनों के क़ायम किये जाने से सागठनिक संरचना स्वतः ही आर्थिक परिणामों के अधीन हो जायेगी। दूसरी कसौटी क्रियात्मक है।

सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी के 24वें अधिवेशन ने द्वि-तलीय संरचना (मंत्रालय—उद्यम) के स्थान पर त्रि-तलीय संरचना (मंत्रालय—उत्पादन समुच्चय—उद्यम) के सिद्धांत को आगे बढ़ाया।

— तीसरी कसौटी भी है जिसे सामाजिक-मनोवै

समाजशास्त्रीय कसौटी की संज्ञा दी जाती है। सामाजिक-मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण संगठनात्मक व्यवस्था के भीतर व्यक्ति एवं उसके व्यवहार के अध्ययन पर ध्यान केंद्रित करता है। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण इस व्यवस्था में लोगों के समूहों के मध्य औपचारिक एवं अनौपचारिक संबंधों की सामाजिक प्रक्रिया को केंद्र में रखता है। अंत में, संगठन का अध्ययन एक अधिक जटिल एवं संश्लिष्ट व्यवस्था के तत्व के रूप में किया जाता है—उदाहरण के लिए, सांस्कृतिक पर्यावरण, सामाजिक संस्थाओं, न्यायिक मानदंडों आदि के साथ इसके संबंधों के आलोक में।

संगठन के अध्ययन में व्यवस्था-विश्लेषण के उपयोग का अर्थ है कि यह उपरि-वर्णित दृष्टिकोणों का संश्लेषण करता है। संगठनात्मक व्यवस्था का अंतर्ग्रथित संपूर्णता में—उसके लक्ष्यों एवं कामों, उसकी प्रभावशीलता, संरचना एवं कर्मकों, उसकी क्रियात्मकता एवं विकास के संदर्भ में—अध्ययन तीनों कसौटियों में से किसी के भी संपूर्ण उपयोग की अनुमति देता है।

संगठन की सामाजिक प्रभावशीलता के माप पर दिनों-दिन अधिक ध्यान दिया जा रहा है यद्यपि यह परिमाणात्मक विश्लेषण के लिए स्वयं को आसानी से प्रस्तुत नहीं करती।

उदाहरण के लिए, संक्रामक रोग को रोकने के लिए विशेष उपाय किये जाते हैं—चिकित्साशास्त्रीय उपाय, आर्थिक, सामाजिक एवं प्रचार संबंधी उपाय। धन की काफी बड़ी राशि विनियोजित की जाती है तथा समाधनों का उपयोग किया जाता है। रोग में तीव्र कमी अथवा उसके सफाये से संबंधित सांख्यिकीय आंकड़ों के आधार पर इन उपायों के परिणामों का आकलन किया जाता है।

अपराध, शराबखोरी तथा अन्य हानिकारक घटना-क्रियाओं के साथ किये जाने वाले संघर्ष की प्रभावशीलता का पता आंकड़ों से ही चलता है। लेकिन बहुत से मामलों में सामाजिक प्रभावशीलता आसानी से मापी नहीं जा पाती। जंगलों के नष्ट होने से, पर्यावरण के प्रदूषण से, नदियों में मछलियों की संख्या कम हो जाने से तथा जानवरों के लुप्त हो जाने से मनुष्य के स्वास्थ्य, सौन्दर्यशास्त्रीय शिक्षा एवं उसके जीवन की खुशियों को होने वाली हानि को हम कैसे माप सकते हैं? प्रत्यक्ष आर्थिक लाभ एवं प्रच्छन्न सामाजिक हानि का संतुलन हमें किस पैमाने पर मिल सकता है? फिलहाल इस प्रकार की समस्याओं के संदर्भ में हमें गुणात्मक मूल्यांकन पर ही आश्रित रहना होगा।

वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक क्रांति का युग समाजवादी एवं पूंजीवादी, दोनों ही, समाजों में नयी अपेक्षाएं प्रस्तुत करता है। आधुनिक मशीन संगठन विकसित पूंजी-वादी समाज में लोगों को निर्दयतापूर्वक चुनता एवं छांटता है। यह उत्पादन के मंद संगठन, तथा स्वयं उत्पादन को नयी किस्म की गढ़ता है। अमरीकी समाजशास्त्री भविष्य के सामाजिक संगठन के विभिन्न रूप पेश प्रस्तुत करते हैं। बेनिस बेन

जो मूलभूत काम निहित है वह है सामाजिक सूचना की राशि में वृद्धि एवं उसका 'वर्गीकरण'।

मंत्रालयों एवं विभागों के स्तर पर स्वचालित प्रणालियों के अनुभव ने उत्पादन कुशलता की आर्थिक एवं इंजीनियरी कसौटियों की अपर्याप्तता सिद्ध कर दी है। सामाजिक संरचना तथा उत्पादन एवं प्रशासनिक प्रक्रिया में मनुष्य की स्थिति के बारे में अत्यंत विविध समाजशास्त्रीय सूचना एकत्रित करने की विधियां ईजाद करना आवश्यक है। दूसरे शब्दों में, हमें आर्थिक व्यवस्थाओं, सामाजिक एवं नैतिक मानदंडों, उत्प्रेरकों, परंपराओं एवं मूल्यों की संरचनाओं में मानवीय व्यवहार के परिमाणात्मक ही नहीं बल्कि गुणात्मक लक्षणों की भी आवश्यकता है। लेकिन इस प्रक्रिया की द्वंद्वात्मकता इस तरह की है कि हमें सूचना-राशि का सतर्कतापूर्वक चयन करके इसमें न केवल वृद्धि करनी है, बल्कि कमी भी करनी है।

व्यवस्था-विश्लेषण क्रियागत आधार पर सूचना का चयन करता है। इसका अर्थ है प्राप्त किये जाने वाले लक्ष्य से जुड़े आंकड़ों के चयन एवं संसाधन में संबंधित प्रणाली अथवा उप प्रणाली की संलग्नता। उक्त सूचना उन सभी प्रक्रियाओं, जो व्यवस्था को वांछित लक्ष्य की ओर ले जाती हैं, का सुसंबद्ध सम्यक वर्णन निहित होना चाहिए। अत्यधिक सूचना उतनी ही हानिकारक हो सकती है जितनी कि अत्यंत अल्प सूचना।

निर्णयों की श्रेष्ठता के लिए विज्ञान जो कुछ उपलब्ध करा सकता है वे हैं विकल्प ईजाद करने की विधियां। यह व्यवस्था-विश्लेषण का केंद्रीय बिंदु है। यह निर्णयों की प्रभावशीलता निर्धारित करनेवाली समस्याओं एवं समूचे प्रशासन का प्रतिच्छेद बिंदु है। श्रेष्ठ निर्णयों तक पहुंचने की सर्वोत्तम गारंटी निस्संदेह रूप से घोषित लक्ष्यों तक पहुंचने के लिए मार्ग-बहुलता में निहित है।

व्यवस्थापरक दृष्टिकोण से उत्पन्न होने वाली अत्यधिक महत्वपूर्ण आवश्यकता प्रशासनिक संरचना में सुधार लाना है। सोवियत संघ में संगठन की प्रभावशीलता परखने की कई कसौटियां प्रचलित हैं। पहली है आर्थिक कसौटी, क्योंकि अधिकांश मामलों में आर्थिक संगठनों का ही मूल्यांकन होता है। इस बात पर आम सहमति है कि प्रशासन के क्षेत्र में लागत लेखा के बढ़ते हुए उपयोग की अपार संभावनाएं हैं। यह अपने आप में काफी महत्वपूर्ण है। उत्पादन लागत लेखा संगठनों के कायम किये जाने से सांगठनिक संरचना स्वतः ही आर्थिक परिणामों के अधीन हो जायेगी। दूसरी कसौटी क्रियात्मक है।

सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी के 24वें अधिवेशन ने द्वि-स्तरीय संरचना (मंत्रालय—उद्यम) के स्थान पर त्रि-स्तरीय संरचना (मंत्रालय—उत्पादन समुच्चय—उद्यम) के सिद्धांत को आगे बढ़ाया।

आखिर में एक तीसरी कसौटी भी है जिसे सामाजिक-मनोवैज्ञानिक एवं

समाजशास्त्रीय कसौटी की संज्ञा दी जाती है। सामाजिक-मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण संगठनात्मक व्यवस्था के भीतर व्यक्ति एवं उसके व्यवहार के अध्ययन पर ध्यान केंद्रित करता है। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण इस व्यवस्था मे लोगो के समूहो के मध्य औपचारिक एवं अनौपचारिक संबंधो की सामाजिक प्रक्रिया को केंद्र मे रखता है। अन्त मे, संगठन का अध्ययन एक अधिक जटिल एवं सश्लिष्ट व्यवस्था के तत्व के रूप में किया जाता है—उदाहरण के लिए, सांस्कृतिक पर्यावरण, सामाजिक संस्थाओ, न्यायिक मानदडों आदि के साथ इसके संबंधो के आलोक मे।

संगठन के अध्ययन मे व्यवस्था-विश्लेषण के उपयोग का अर्थ है कि यह उपरि-वर्णित दृष्टिकोणों का संश्लेषण करता है। संगठनात्मक व्यवस्था का अतर्ग्रथित संपूर्णता में—उसके लक्ष्यो एवं कामो; उसकी प्रभावशीलता, संरचना एवं कर्मकों, उसकी क्रियात्मकता एवं विकास के संदर्भ में—अध्ययन तीनो कसौटियों मे से किसी के भी संपूर्ण उपयोग की अनुमति देता है।

संगठन की सामाजिक प्रभावशीलता के माप पर दिनो-दिन अधिक ध्यान दिया जा रहा है यद्यपि यह परिमाणात्मक विश्लेषण के लिए स्वय को आसानी से प्रस्तुत नही करती।

उदाहरण के लिए, संक्रामक रोग को रोकने के लिए विशेष उपाय किये जाते हैं—चिकित्साशास्त्रीय उपाय, आर्थिक, सामाजिक एवं प्रचार संबंधी उपाय। धन की काफी बडी राशि विनियोजित की जाती है तथा संसाधनों का उपयोग किया जाता है। रोग मे तीव्र कमी अथवा उसके सफाये से संबंधित सांख्यिकीय आकड़ों के आधार पर इन उपायो के परिणामों का आकलन किया जाता है।

अपराध, शराबखोरी तथा अन्य हानिकारक घटना-क्रियाओं के साथ किये जाने वाले संघर्ष की प्रभावशीलता का पता आकड़ो मे ही चलता है। लेकिन बहुत से मामलो मे सामाजिक प्रभावशीलता आसानी से मापी नही जा पाती। जगलों के नष्ट होने से, पर्यावरण के प्रदूषण से, नदियों में मछलियों की संख्या कम हो जाने से तथा जानवरों के लुप्त हो जाने से मनुष्य के स्वास्थ्य, सौंदर्यशास्त्रीय शिक्षा एवं उसके जीवन की खुशियो को होने वाली हानि को हम कैसे माप सकते हैं? प्रत्यक्ष आर्थिक लाभ एवं प्रच्छन्न सामाजिक हानि का अनुपात हमें किस पैमाने पर मिल सकता है? फिलहाल इस प्रकार की समस्याओ के संदर्भ मे हमें गुणात्मक मूल्यां-कन पर ही आश्रित रहना होगा।

वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक क्रांति का युग समाजवादी एवं पूंजीवादी, दोनो ही, समाजो से नयी अपेक्षाएं प्रस्तुत करता है। आधुनिक मशीन सगठन विकसित पूंजी-वादी समाज मे मांगों को निर्दयतापूर्वक चुनता एवं छांटता है। यह उत्पादन के नये संगठन, तथा स्वयं उत्पादन की नयी किस्म की पकड़ता है।

भविष्य के सामाजिक संगठन के विभिन्न दृश्य लेख प्रस्तुत करते हैं। इनी

वैज्ञानिक प्रविधिज्ञ तंत्र की विजय की घोषणा करते हैं। मेल्विन एल.कोह्न ऐसा चित्र खींचते हैं जिसमें 'नौकरशाह मनुष्य' 'आर्थिक मनुष्य' का स्थान ले लेता। एल्विन टॉफ़्लर भविष्य को तीव्र गति से परिवर्तनशील, सूचना-विपुल, गत्यात्मक संघटन के रूप में देखते हैं जो ऐसी काल-कोपिकाओं एवं व्यक्तियों से निर्मित है जो कि आत्यंतिक रूप से गतिशील हैं। ये सभी समाजशास्त्री सभ्यता के समाजवादी प्रतिरूप को अनदेखा करते हैं जो कि आर्थिक कुशलता, तकनीकी प्रगति एवं मानववाद को एकीकृत करता है।

पूंजीवादी उत्पादन ऐसे बिंदु तक पहुंच गया है जिसके आगे वह केंद्रीकृत, नियोजित अर्थव्यवस्था की अनिवार्यता को सामने पाता है—अर्थव्यवस्था के नियमन की विधियां तथा उत्पादन संघटन एवं प्रशासन में वैज्ञानिक सिद्धांतों का प्रवर्त्तन इस आवश्यकता को आंशिक रूप से ही पूरा करते हैं।

नियोजित समाजवादी अर्थव्यवस्था वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक क्रांति की प्रगति के उपयोग की, तथा इस प्रगति के नकारात्मक परिणामों पर विजय प्राप्त करने की अपार संभावनाओं से संपन्न है। समस्या इन लाभों के दोहन की है। यह ऐसा विस्तृत क्षेत्र है जहां अध्येताओं एवं उत्पादन-संगठनकर्त्ताओं, दोनों के लिए सृजनात्मक चिंतन के समुचित अवसर उपलब्ध हैं।

1977 में स्वीकृत सोवियत संघ का संविधान समस्त जनता के राज्य का तथा उन्नत समाजवादी समाज का संविधान है। यह लक्ष्यों एवं सिद्धांतों की घोषणा करता है तथा सोवियत राज्य के संघटन की नींव रखता है। नया संविधान सामाजिक राजनीतिक एवं आर्थिक व्यवस्था को, राज्य एवं व्यक्ति के संबंधों को, सोवियत संघ के राष्ट्रीय एवं राज्य संघटन, जन प्रतिनिधियों की सोवियतों की भूमिका एवं प्रकार्यों, सोवियत संघ के राज्य सत्ता एवं प्रशासन के सर्वोच्च अंगों को, न्याय, पंच फैसले एवं अभियोजकीय पर्यवेक्षण, तथा संविधान संशोधन की प्रक्रिया के आधारों को वैधानिक रूप प्रदान करता है।

नया संविधान 1918, 1924 व 1936 के संविधानों में व्यक्त सिद्धांतों की निरंतरता को बनाये रखते हुए भी सोवियत समाजवादी राज्य एवं सोवियत संघ की समूची राजनीतिक व्यवस्था के विकास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण अगला कदम है।

नया संविधान उन्नत समाजवादी समाज—इसकी उत्पादक शक्तियों, विज्ञान एवं संस्कृति, सामाजिक संबंधों एवं राजनीतिक व्यवस्था—की व्यापक परिभाषा प्रस्तुत करता है। इसमें सभी सामाजिक मामलों का कुशल प्रबंध, राज्य के क्रियाकलाप में कामगर जनता की बढ़ती हुई सक्रिय भागीदारी, मानव अधिकारों एवं स्वतंत्रताओं का नागरिक दायित्वों के साथ संयोजन सुनिश्चित होता है।

नया संविधान आर्थिक संबंधों के क्षेत्र में राज्य की भूमिका को परिभाषित

करता है। राज्य समाजवादी संपत्ति की सुरक्षा करता है तथा इसके विकास की परिस्थितियां तैयार करता है। भौतिक एवं नैतिक उत्प्रेरकों को संयोजित करके यह श्रम को व्यक्ति की प्राथमिक एवं जैव अपेक्षा के रूप में रूपांतरित करता है। कामगर लोगों की सृजनात्मक गतिविधि, समाजवादी स्पर्द्धा, तथा वैज्ञानिक प्रौद्योगिक उपलब्धियों पर भरोसा रखकर राज्य श्रम-उत्पादकता, उत्पादन कुशलता एवं काम की गुणवत्ता के विकास तथा राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के गतिशील संतुलित विकास को सुनिश्चित बनाता है। अर्थव्यवस्था का प्रबंध राज्य की आर्थिक एवं सामाजिक-सांस्कृतिक योजनाओं—जिनका विवेचन क्षेत्रीय एवं प्रादेशिक आधार पर किया गया है तथा जो केंद्रीकृत प्रबंध को आर्थिक स्वायत्तता, उद्यमों एवं अन्य संगठनों की अंत प्रेरणा से संयोजित करती हैं, तथा आर्थिक लेखा विधि, लाभ एवं मूल लागत का व्यापक उपयोग करती हैं—पर आधारित है। राज्य भूमि, खनिज संसाधनों, वनस्पति एवं पशु जगत की सुरक्षा तथा उनका वैज्ञानिक एवं विवेकपूर्ण उपयोग करने संबंधी प्रकार्य संपादित करता है। वायु एवं जल को स्वच्छ रखने तथा राष्ट्रीय संसाधनों के पुनरुत्पादन को सुनिश्चित बनाता है।

सामाजिक संबंधों के क्षेत्र में सोवियत राज्य समाज की सामाजिक एकरूपता, नगरीय एवं ग्रामीण क्षेत्रों तथा मानसिक एवं शारीरिक श्रम के बीच के भेदों की समाप्ति, सोवियत संघ की सभी राष्ट्रीयताओं एवं संपूर्ण जनता के विकास तथा एक समग्र इकाई के रूप में उनके अभिसरण को प्रोत्साहित करता है। यह नागरिकों को अपनी सृजनात्मक क्षमताओं, प्रतिभा एवं योग्यता को विकसित करने तथा उनका उपयोग करने—जिसके माध्यम से व्यक्तित्व का समग्र विकास संभव हो सके—के वास्तविक अवसार प्रदान करने तथा उनमें वृद्धि करने का लक्ष्य निर्धारित करता है।

राज्य काम की दशाएं सुधारने, उत्पादन के व्यापक मशीनीकरण एवं स्वचालन के माध्यम से शारीरिक श्रम को कम करने और अंतत उसे समाप्त करने के प्रति चिंतित है; यही कारण है कि यह कृषि संबंधी काम को औद्योगिक काम के रूप में रूपांतरित करने के कार्यक्रम को सुसंगत रूप से क्रियान्वित कर रहा है। राज्य वेतन दरों में वृद्धि करने तथा कामगर जनता की वास्तविक आय का श्रम उत्पादकता के साथ तालमेल कायम करने की नीति का अविचल रूप से अनुसरण कर रहा है।

सांस्कृतिक क्षेत्र में राज्य विज्ञान के नियोजित विकास व शोधकर्मियों के प्रशिक्षण की गारंटी करता है, राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था व अन्य क्षेत्रों में शोध के परिणामों के लागू किये जाने को संगठित करता है तथा सोवियत नागरिकों के सांस्कृतिक स्तर को ऊंचा उठाने के लिए समाज के आध्यात्मिक [illegible]

एवं उनके व्यापक प्रसार के प्रति अपनी चिंता व्यक्त करता है।

वैदेशिक नीति मे, सोवियत राज्य अंतरराष्ट्रीय सुरक्षा एवं व्यापक अंतरराष्ट्रीय सहयोग को बढ़ावा देने वाली लेनिनवादी शांति नीति को सुसंगत रूप से क्रियान्वित कर रहा है।

जैसा कि नये संविधान में रेखांकित किया गया है, सोवियत वैदेशिक नीति सोवियत संघ मे साम्यवाद के निर्माण के अनुकूल अंतरराष्ट्रीय परिस्थिति सुनिश्चित करने, विश्व स्तर पर समाजवाद की स्थिति को मजबूत बनाने, राष्ट्रीय मुक्ति एवं सामाजिक प्रगति के लिए चलाये जाने वाले संघर्षों को समर्थन देने, आक्रमणों एवं युद्धों को टालने तथा भिन्न सामाजिक व्यवस्थाओं वाले राज्यों के साथ शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व क़ायम करने की ओर अभिमुख है।

राज्य का प्रमुख प्रकार्य समाजवादी मातृभूमि की रक्षा करना है। राज्य देश की राष्ट्रीय सुरक्षा तथा रक्षा सामर्थ्य की गारंटी करता है तथा सोवियत संघ की सेनाओं की सभी आवश्यकताओं की आपूर्ति करता है।

सोवियत संघ का नया संविधान उन्नत समाजवादी समाज में राज्य के निरंतर विस्तृत होते प्रकार्यों तथा कामों की जटिलता को भी प्रतिबिंबित करता है। जनवादी केंद्रीयतावाद तथा समाजवादी वैधानिकता के सिद्धांत राज्य की क्रियात्मकता की महत्वपूर्ण शर्तें हैं। सोवियत संविधान में स्पष्ट रूप से उल्लिखित है कि राज्य की संस्थाओं, जन संगठनों एवं कर्मचारियों का यह दायित्व है कि वे सोवियत संविधान एवं सोवियत कानून का पालन करें।

नये संविधान में सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी—जोकि सोवियत समाज की मार्ग दर्शक शक्ति तथा वहां की राजनीतिक व्यवस्था का केंद्रक है—तथा समस्त सरकारी संस्थाओं एवं जन संगठनों की भूमिका को परिभाषित तथा इनके दायित्वों व क्रियाकलाप की पद्धतियों को रूपायित किया गया है।

संविधान सोवियत समाज की राजनीतिक व्यवस्था के भीतर सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी के क्रियाकलाप की मुख्य पद्धतियों, रूपों एवं दिशाओं को परिभाषित करता है। मार्क्सवादी-लेनिनवादी शिक्षा से लैस कम्युनिस्ट पार्टी सामाजिक विकास, सोवियत घरेलू एवं वैदेशिक नीतियों की संभावनाओं की रूपरेखा प्रस्तुत करती है, सोवियत जनता के महान निर्माण कार्य को दिशा देती है, तथा साम्यवाद की विजय के संघर्ष को नियोजित एवं वैज्ञानिक रूप देती है।

वर्तमान अवस्था में पार्टी के क्रियाकलाप के संदर्भ में राजनीतिक नेतृत्व की धारणा बेहद महत्वपूर्ण है क्योंकि पार्टी ही सोवियत जनता को प्रगति के वैज्ञानिक कार्यक्रम से लैस करती है। सभी क्षेत्रों—आर्थिक सामाजिक, सांस्कृतिक एवं वैचारिक संबंधों—में वैज्ञानिक आधार वाली नीति का पार्टी द्वारा प्रस्तुत किया जाना प्रथम वरीयता रखता है। सामाजिक विकास की बढ़ती हुई जटिलता, वैज्ञानिक

एवं प्रौद्योगिक क्रांति की प्रगति, अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सार्वभौमिक शांति एवं अंतरराष्ट्रीय सुरक्षा के भविष्य के संदर्भ में सोवियत राज्य की बढ़ी हुई भूमिका एवं ज़िम्मेदारी, विश्व के सभी राज्यों के साथ आर्थिक, वैज्ञानिक, प्रौद्योगिक एवं सांस्कृतिक संबंधों का विकास, साम्राज्यवाद के खिलाफ़ संघर्ष—ये सब ऐसे मुद्दे हैं जो कि नीति-नियोजन एवं महत्त्वपूर्ण राजनीतिक निर्णय-प्रक्रिया से जुड़े हुए प्रकार्य को असाधारण रूप से महत्त्वपूर्ण बना देते हैं।

सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी के 25वें अधिवेशन के निर्णय सामाजिक-आर्थिक, सांस्कृतिक एवं वैदेशिक नीतियों की समस्याओं के निपटारे के संदर्भ में रचनात्मक दृष्टिकोण का आदर्श प्रस्तुत करते हैं। विकासशील वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक क्रांति की अपेक्षाओं, उत्पादन कुशलता तथा उत्पाद गुणवत्ता में वृद्धि की आवश्यकता को ध्यान में रखकर नयी पंचवर्षीय योजना को अंतिम रूप दिया गया। शांति, सामाजिक प्रगति एवं राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिए संघर्ष के कार्यक्रम ने अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रमुख कार्यवाहियों की नींव रखी।

मौजूदा परिस्थितियों में, सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन के विशिष्ट क्षेत्रों में समाज के क्रियाकलाप को संचालित करने के लिए आधारभूत, मध्यवर्ती एवं क्षेत्रीय लक्ष्य एवं कार्यक्रम निर्धारित एवं नियोजित करने को प्राथमिकता देती है। लक्ष्यों एवं कार्यक्रमों के निर्धारण के प्रति वस्तुनिष्ठ, वैज्ञानिक दृष्टिकोण सोवियत संघ की समूची राजनीतिक व्यवस्था की प्रभावी क्रियात्मकता के लिए अपरिहार्य है।

नये संविधान ने सोवियत समाज की समस्त राजनीतिक संस्थाओं के लिए कुशल, नियोजित एवं सुसंबद्ध तरीक़े से काम करने की राजनीतिक एवं वैधानिक आधारशिला प्रस्तुत की है।

जन संगठनों की उच्च राजनीतिक प्रतिष्ठा समाजवादी समाज की राजनीतिक बनावट के विशिष्ट लक्षणों में से एक है। सोवियत जन संगठन, देश की लगभग समूची वयस्क एवं युवा जनसंख्या जिनमें समाविष्ट है, श्रमिकों, सामूहिक किसानों एवं बुद्धिजीवी वर्ग की समस्त राजनीतिक गतिविधियों को व्यक्त करने के माध्यम हैं।

सोवियत संघ का संविधान समाजवादी जनवाद—जो कि विकसित समाजवादी समाज की परिस्थितियों के अंतर्गत समूची जनता का जनवाद है—के विकास की अवस्था का सुस्थान करता है।

संविधान समाजवादी जनवाद के पूर्व अर्जित स्तर को संगठित एवं पुष्ट करने के साथ ही, समूची राजनीतिक व्यवस्था के साथ संयोजित करके, इसके निरंतर विकास के नये क्षितिज खोलता है। इसका पहला अर्थ है राज्य एवं समाज के मामलों के प्रबंध में कामगर लोगों की निरंतर व्यापक होती [illegible]

दूसरा, राज्य-तंत्र का सुधारा जाना; तीसरा, जन-संगठनों के क्रियाकलाप को बढ़ावा देना, चौथा जनता द्वारा नियंत्रण में वृद्धि; पांचवां, राज्य के क्रियाकलाप एवं समाज के जीवन के विधिक आधारों का संघटन, छठा, प्रचार का विस्तार तथा जनमत का निरंतर सम्मान।

समाजवादी जनवाद का विस्तार राजनीतिक व्यवस्था के क्षेत्र में ही नहीं अपितु आर्थिक एवं सामाजिक-आर्थिक व्यवस्थाओं तक भी, या यूं कहें समूचे समाज तक—होता है।

वास्तविक जनवादी भावना आर्थिक व्यवस्था तथा समाजवाद के अंतर्गत सामाजिक उत्पादन के सर्वोच्च लक्ष्य—जनता की बढ़ती हुई भौतिक एवं सांस्कृतिक अपेक्षाओं की गहन पूर्ति—में व्याप्त एवं अभिव्यक्त होती है।

जनवादी सिद्धांत आर्थिक प्रबंध व्यवस्था को भी रेखांकित करते हैं: राज्य की आर्थिक एवं सामाजिक विकास योजनाओं से संबंधित बहसों में जनता की भागीदारी; संयंत्रों, कारखानों एवं सामूहिक खेतों के प्रबंध में जनसंगठनों, तथा खासकर श्रमिक संघों एवं सहकारी समितियों की भागीदारी—कार्य-संचालन एवं दैनंदिन जीवन की समस्याओं का हल करने में, उत्पादन, विकास, सामाजिक-सांस्कृतिक जरूरतों को पूरा करने तथा भौतिक उल्लेख प्रदान करने के लिए धन-राशि वितरित करने में सम्मिलित होकर।

वास्तविक जनवाद उन्नत समाजवाद की समूची राजनीतिक व्यवस्था—जिसका आधारभूत सिद्धांत जनता की सर्वोच्चता है—में भी व्याप्त है।

सोवियत संघ की वैदेशिक नीति—जो सोवियत संघ के जनगण, समाजवादी समुदाय एवं समस्त शांतिकामी राष्ट्रों के हितों को अभिव्यक्त करती है—में वास्तविक जनवाद सन्निहित है।

सोवियत संघ का संविधान, जिसमें राज्य के नागरिकों की स्वतंत्रताओं, अधिकारों एवं दायित्वों को एक विशेष खंड समर्पित है, समाजवादी जनवाद के विकास की नई अवस्था का सार प्रस्तुत करता है।

सोवियत संघ का 1936 का संविधान भी सोवियत नागरिकों के मौलिक अधिकारों—काम, विश्राम, शिक्षा एवं वृद्धावस्था में भौतिक सुरक्षा—की गारंटी करता था। नये संविधान में इनके अतिरिक्त स्वास्थ्य सुरक्षा, आवासन के अधिकार तथा वैज्ञानिक, तकनीकी एवं कलात्मक कार्य की स्वतंत्रता का प्रावधान किया गया है। सोवियत संघ की कामगर जनता के मौलिक सामाजिक-आर्थिक अधिकारों में संविधान द्वारा राज्य एवं समाज के मामलों में भागीदारी की गारंटी भी सम्मिलित की गयी है।

समाजवादी जनवाद की विशिष्टताओं में से एक यह है कि यह कामगर जनता को मौलिक राजनीतिक एवं व्यक्तिगत स्वतंत्रताओं—अभिव्यक्ति की,

प्रेस की, एकत्र होने, सभाएं करने व सार्वजनिक प्रदर्शन करने की स्वतन्त्रताओं—की गारंटी करता है। इन राजनीतिक स्वतन्त्रताओं का उपयोग सार्वजनिक भवनों, सड़कों, चौकों को कामगर जनता एवं उनके संगठनों के उपयोग के लिए सौंपकर सुनिश्चित कर दिया जाता है। साथ ही, सूचना के व्यापक प्रसार, समाचार-पत्रों, रेडियो एवं टेलीविजन के उपयोग के अवसर भी प्रदान किये जाते हैं।

इन गारंटियों का प्रमुख तत्त्व, जैसाकि संविधान निर्दिष्ट है, यह है कि समस्त राज्य संस्थाओं, जन संगठनों एवं अधिकारियों का दायित्व है कि व व्यक्ति का सम्मान करें तथा सोवियत नागरिकों के अधिकारों की हिफाजत करें।

सोवियत संविधान सोवियत नागरिकों को व्यक्तिगत स्वतन्त्रता, सम्मान एवं प्रतिष्ठा पर आक्रमण के खिलाफ न्यायिक रक्षा की गारंटी करता है। इससे सोवियत नागरिकों के अधिकारों एवं स्वतन्त्रताओं की विधिक गारंटियों का समुचित विस्तार होता है। अधिकारियों के खिलाफ राज्य संस्थाओं एवं सार्वजनिक संगठनों में शिकायत दर्ज कराने का अधिकार भी इन्हीं म से एक है। इनका परीक्षण कानून द्वारा निर्धारित प्रविधियों एवं काल-सीमाओं के अनुरूप किया जाता है।

सोवियत नागरिकों को ये समस्त अधिकार एवं स्वतन्त्रताएं कामगर जनता के हितों के अनुरूप तथा समाजवादी व्यवस्था को मजबूत करने व साम्यवाद का निर्माण करने की दृष्टि से स्वीकृत किये गये हैं।

व्यक्ति के अधिकारों एवं दायित्वों की मूलभूत एकता समाजवादी जनवाद का एक अन्य विशिष्ट लक्षण है। अन्य व्यक्तियों व समाज के प्रति व्यक्ति के दायित्व समस्त नागरिकों के अधिकारों की गारंटी है क्योंकि सोवियत संघ में कोई भी व्यक्ति अपने अधिकारों का इस तरह प्रयोग नहीं कर सकता कि अन्य लोगों को हानि हो।

सोवियत संघ के संविधान में सोवियत नागरिकों के दायित्वों का व्यापक वर्णक्रम उल्लिखित है। सोवियत संघ के संविधान एवं सोवियत कानून तथा समाजवादी आचार-संहिता का पालन करना व सोवियत नागरिकों के रूप में सम्मानजनक व्यवहार करना उनके लिए अनिवार्यता बन चुकी है। सोवियत नागरिकों के लिए आवश्यक है कि वे ईमानदारी एवं निष्ठा के साथ काम करें, श्रम एवं उत्पादन अनुशासन का कड़ाई के साथ पालन करें, समाजवादी संपत्ति को बढ़ाएं, राज्य की एवं अन्य सार्वजनिक संपत्ति की चोरी एवं गबन का विरोध करें, सोवियत राज्य के हितों की हिफाजत करें तथा उसकी सत्ता एवं प्रतिष्ठा को बढ़ाने में योगदान दें। समाजवादी मातृभूमि की रक्षा करना प्रत्येक नागरिक का पवित्र दायित्व है।

[illegible] अन्य राष्ट्रों एवं अन्तर्राष्ट्रीय [illegible] राज्य के [illegible] [illegible] अन्य राष्ट्रों के साथ [illegible] [illegible] [illegible] के प्रमुख सिद्धान्त वर्णित हैं।

[illegible] सोवियत [illegible] के [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हैं।

[illegible] वैज्ञानिक एवं [illegible] [illegible] की [illegible] करती है। [illegible] [illegible] [illegible] में कुशल प्रबंध को संभव बनाता है।

नया सोवियत संविधान सरकार की समस्त विधायी एवं कार्यकारी शक्तियों की भूमिकाओं, कार्यों, शक्तियों, अधिकारों एवं दायित्वों को अधिक स्पष्ट रूप से परिभाषित करता है। सोवियत संघ के आर्थिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक विकास की समस्त प्रमुख समस्याएं सोवियत संघ की सर्वोच्च सोवियत के दायरे में आती हैं। सोवियत संघ की सर्वोच्च सोवियत संविधान स्वीकृत व संशोधित करने, सोवियत संघ में नये गणराज्यों को प्रवेश देने, नये स्वायत्त गणराज्यों व प्रदेशों की स्वीकृति प्रदान करने, राज्य की आर्थिक एवं सामाजिक-सांस्कृतिक विकास योजनाओं को स्वीकृत करने, सोवियत संघ का राज्य-बजट पारित करने, कार्य सम्पादन प्रतिवेदनों को स्वीकृत करने तथा सर्वोच्च सोवियत के प्रति उत्तरदायी संस्थाओं का गठन करने के लिए जिम्मेदार है। समूचे सोवियत संघ में लागू होने वाले कानूनों को स्वीकृति देना मात्र सर्वोच्च सोवियत का अधिकार क्षेत्र है।

सोवियत संघ की सर्वोच्च सोवियत के अध्यक्षमंडल—सर्वोच्च सोवियत के प्रति उत्तरदायी स्थायी निकाय—का अधिकार क्षेत्र को पिछले संविधान की तुलना में अधिक पूर्णता के साथ परिभाषित किया गया है। अध्यक्षमंडल का चुनाव सोवियत संघ की सर्वोच्च सोवियत के लिए चुने गये उन प्रतिनिधियों के मध्य से होता है तथा उसकी निम्नलिखित बनावट होती है : अध्यक्ष, प्रथम उपाध्यक्ष, 15 उपाध्यक्ष (प्रत्येक गणराज्य से एक), सचिव एवं 21 सदस्य। नये संविधान ने खासकर वैदेशिक नीति के मामलों में अध्यक्षमंडल की शक्तियों में वृद्धि की है। इसके पीछे प्रमुख अभिप्रेरणा यह रही है कि सोवियत संघ की सर्वोच्च सोवियत के जब सत्र न चल रहे हों तो भी अंतरराष्ट्रीय स्तर पर बड़े पैमाने पर आवश्यक कार्रवाई अविलंब की जा सके।

नये संविधान में सोवियत संघ की मंत्रिपरिषद तथा सोवियत संघ की सर्वोच्च सोवियत के अध्यक्षमंडल की शक्तियों, अधिकारों एवं दायित्वों को सुस्पष्ट ढंग से निरूपित किया गया है। सोवियत संघ की राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का व्याव-

हारिक प्रबंध, सांस्कृतिक विकास, वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक क्षेत्रों में समान नीति का क्रियान्वयन, सोवियत जनता के जनकल्याण एवं संस्कृति के स्तर की उन्नति को सुनिश्चित करना, समान मुद्रा एवं ऋण व्यवस्था को सुदृढ़ बनाना, समान मूल्य नीति को लागू करना, राज्य बीमा को सुव्यवस्थित करना, लेखा एवं सांख्यिकी की एक सी प्रणाली को संयोजित करना, औद्योगिक एवं भवन संगठनों तथा संघों का प्रबंध संचालित करना, यातायात, संचार सेवाओं, बैंकों व संघ क्षेत्र के अन्य संगठनों एवं संघों का प्रबंध संचालित करना इन्हीं निकायों की जिम्मेदारी है।

सोवियत संघ की मंत्रिपरिषद के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रकार्य ये हैं : राष्ट्रीय सुरक्षा के उपायों को क्रियान्वित करना, समाजवादी संपत्ति एवं समाजवादी कानून-व्यवस्था, नागरिकों के अधिकारों तथा राज्य-सुरक्षा की हिफ़ाज़त करना, सेनाओं के विकास एवं वैदेशिक नीति पर सामान्य नियंत्रण रखना।

लेनिनवादी सिद्धांतों की पूर्ण अनुपालना के क्रम में, सोवियत राज्य का संघटन तथा क्रियाकलाप जनवादी केंद्रीयतावाद पर आधारित है, जिसके मायने हैं कि राज्य-सत्ता के समस्त निकाय चुने हुए होते हैं, कि वे जनता के प्रति उत्तरदायी हैं तथा यह कि उच्चतर निकायों के निर्णय निचले निकायों के लिए बाध्यकारी शक्ति से संपन्न होते हैं। जनवादी केंद्रीयतावाद केंद्रीय दिशा-निर्देश एवं स्थानीय अंतःप्रेरणा एवं नव्य प्रयोगों का संयोग है। प्रत्येक सरकारी निकाय एवं अधिकारी अपने कार्य संपादित करने के लिए उत्तरदायी है।

समाजवादी वैधता, क़ानून-व्यवस्था की स्थापना, नागरिकों के हितों व अधिकारों की हिफ़ाज़त वे आधारभूत सिद्धांत हैं जोकि सोवियत राज्य व उसके निकायों के कार्य-व्यापार को आधार देते हैं। राजकीय निकायों, सार्वजनिक संगठनों एवं अधिकारियों का दायित्व है कि वे सोवियत संविधान व क़ानून का पालन करें।

सोवियत संघ का नया संविधान समाज के वैज्ञानिक मार्गदर्शन के लिए काल-सिद्ध व्यावहारिक सिद्धांतों को विधिक शक्ति प्रदान करता है। वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक क्रांति की उपलब्धियों, उच्च सांस्कृतिक स्तरों, व्यावसायिक कौशल तथा निर्णय लेने संबंधी सभी क्षेत्रों में जनता की बढ़ती हुई व्यापक भागीदारी पर आधारित आधुनिक विधियों के सुगठन एवं सांगोपांग प्रयोग की यह प्रमुख गारंटी है। 10वीं पंचवर्षीय योजना में सन्निहित कुशलता एवं गुणवत्ता के सिद्धांत सामाजिक प्रबंध के दायरे पर भी लागू होते हैं।

व्यवहृत समाजवाद के अंतरराष्ट्रीय अनुभव को सोवियत संघ, सोवियत राज्य एवं सोवियत जनता की सबसे बड़ी देन संवैधानिक क़ानून का निर्माण है। 1918, 1924 व 1936 के संविधान तथा अब में, सोवियत संघ का नया संविधान हैं,

ऐतिहासिक दस्तावेज है जो कि सोवियत संघ में समाजवाद एवं जनवाद की उपलब्धियों को अभिव्यक्ति तो देते ही हैं उन्हें विधिक शक्ति भी प्रदान करते हैं। ये कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में जनता की क्रांतिकारी अंतःप्रेरणा तथा लेनिन द्वारा निरूपित सिद्धांतों पर आधारित हैं।

7 अक्तूबर 1977 को सोवियत संघ की सर्वोच्च सोवियत के *असाधारण* सत्र (जिसमें नये संविधान को स्वीकृत किया गया था) की समाप्ति पर, अपने समापन भाषण में लियोनिद ब्रेझनेव ने कहा था :

"वर्ष बीत जाएंगे, दशाब्दियां बीत जाएंगी पर अक्तूबर का यह दिन जनवादी सरकार के लेनिनवादी सिद्धान्तों की वास्तविक विजय की जीवन साक्ष्य के रूप में जनता की स्मृति में सदैव रहेगा। साम्यवाद की राह पर हमारा समाज जितना आगे जायेगा, नये संविधान में प्रतिबिम्बित समाजवादी जनवाद—*जनता की सरकार, जनता के लिए सरकार—की अपार सृजनात्मक क्षमताएं* उतनी ही अधिक स्पष्ट होंगी।

सोवियत संघ के नये संविधान के स्वीकृत होने के एक माह पश्चात् देश ने महान अक्तूबर समाजवादी क्रांति की 60वीं वर्षगांठ मनाई। सोवियत जनता के जीवन में इन दो अत्यंत महत्त्वपूर्ण घटनाओं के संयोग को इनके बद्धमूल आंतरिक संबंध में खोजा जा सकता है, चूंकि सोवियत राज्य का नया आधारभूत कानून सोवियत संघ द्वारा पिछले 60 वर्ष के दौरान की गई प्रगति का सार है। नये संविधान का अंगीकार किया जाना तथा महान अक्तूबर समाजवादी क्रांति की 60वीं वर्षगांठ सोवियत संघ के तथा विश्व की क्रांतिकारी प्रक्रिया के इतिहास में निर्णायक महत्त्व की घटनाएं हैं।

यह सूत्र एकदम अपर्याप्त है कि एक खास कारण समान परिस्थितियों में समान परिणामों को जन्म देता। यह सूत्र अधिक-से-अधिक कारण-कार्य-संबंध की पड़ताल की पहली अवस्था हो सकता है—कार्य-कारण संबंधों की गुणात्मक सुनिश्चितता का वर्णन : कि गुणात्मक रूप से समान कारण गुणात्मक रूप से समान परिस्थितियों में गुणात्मक रूप से समान परिणाम उत्पन्न करते हैं।

किंतु व्यवहार एवं सिद्धांत दोनों बतलाते हैं कि ऐसे कोई कारण नहीं होते जोकि गुणात्मक रूप से पूर्णतया समान हों। और न इस अर्थ में परिस्थितियां व परिणाम भी गुणात्मक रूप से समान होते हैं। अभौतिक दृष्टि से देखने पर इसमें कार्य-कारण की अवधारणा तथा विधि की अवधारणा— दोनों ही—से विसंगति नजर आती है। हालांकि, द्वंद्वात्मक दृष्टिकोण से इसमें कोई तार्किक अंतर्विरोध नहीं दिखता।

युद्ध एवं शांति की समस्याओं के विश्लेषण के लिए यह सूत्र बेहद महत्वपूर्ण है। युद्ध भाग्य द्वारा पूर्व-निर्धारित नहीं होता, अतः अवश्यंभावी नहीं होता। शक्तिशाली सामाजिक शक्तियों के सक्रिय एवं सोद्देश्य प्रयत्न मात्र से सार्वत्रिक शांति वास्तविकता बन सकती है। इस मामले में प्रगतिशील राज्यों तथा उनकी नीतियों की भूमिका निर्णायक हो सकती है।

अंतरराष्ट्रीय संबंधों के लिए, सामाजिक जीवन के अन्य किसी क्षेत्र की तुलना में अधिक, बहु-आयामी दृष्टिकोण आवश्यक है। अतः, अंतरराष्ट्रीय संबंधों की समग्रता का, अंतरराष्ट्रीय क्षेत्र में वर्ग एवं अन्य सामाजिक समूहों के क्रिया-कलाप का, संघर्षों के स्रोत एवं स्वरूप का तथा लक्ष्य-निर्धारण का द्वंद्वात्मक व्यवस्था-विश्लेषण नयी घटना-क्रियाओं के अध्ययन के लिए अत्यंत लाभदायक सिद्ध होता है। इसमें विशिष्ट स्थितियों, निर्णय करने वाले व्यक्तियों को प्रभावित करने वाले सामाजिक-मनोवैज्ञानिक कारकों, पूर्वानुमान एवं नियोजन का विश्लेषण भी सम्मिलित है।

लेनिन ने विश्व-विकास, क्रांतिकारी आंदोलनों एवं अंतरराष्ट्रीय संबंधों के बारे में व्यवस्थापरक दृष्टिकोण के श्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत किये थे। 'साम्राज्यवाद, पूंजीवाद की सर्वोच्च अवस्था' में उन्होंने समाजवादी क्रांति की अनिवार्य शर्तों के अध्ययन के लिए नया दृष्टिकोण विकसित किया। इससे पूर्व मार्क्सवादी चिंतकों का ध्यान प्रमुखतया देश की आंतरिक परिस्थितियों पर केंद्रित हुआ करता था। लेनिन ने यह सिद्ध कर दिखाया कि समूची अंतरराष्ट्रीय साम्राज्यवादी व्यवस्था की दशा को प्रस्थान बिंदु के रूप में लेना आवश्यक है। अक्तूबर क्रांति की विजय के बाद उन्होंने न केवल विश्व के दो व्यवस्थाओं—समाजवाद एवं पूंजीवाद—में विभाजन को निर्दिष्ट किया बल्कि इन दो व्यवस्थाओं की वस्तुगत स्थिति से उत्पन्न होने वाले अंतर्विरोधों के स्वरूप को भी परिभाषित किया। इन दो व्यव-

स्थाओं के बीच विचारधारात्मक एवं राजनीतिक संघर्षों की अपरिहार्यता को सिद्ध करते हुए भी लेनिन ने, साथ ही, भिन्न सामाजिक व्यवस्थाओं वाले देशों के बीच शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व का सिद्धांत निरूपित किया तथा आर्थिक एवं सामाजिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में सहयोग विकसित करने पर जोर दिया।

लेनिन ने रेखांकित किया कि मार्क्स के अनुसार उत्पादन संबंधों की प्रत्येक व्यवस्था एक विशेष प्रकार का सामाजिक अवयव संस्थान होती है जिसके उत्पत्ति, क्रियाविधि एवं उच्चतर रूपों में संक्रमण के अपने नियम होते हैं, तथा उच्चतर बिंदु पर पहुंचकर यह भिन्न सामाजिक अवयव संस्थान का रूप ले लेता है। सीधे अंतरराष्ट्रीय संबंधों की ओर पलट कर लेनिन ने 'राज्यों की व्यवस्था' (जिसमें कोई भी राज्य स्वयं को पाता है) तथा 'अंतरराष्ट्रीय संबंधों की व्यवस्था' की चर्चा की।

अंतरराष्ट्रीय संबंध ऐसा विशिष्ट क्षेत्र है जहां विभिन्न शक्तियों—आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, राज्य, सैन्य, बौद्धिक—संघर्ष एवं सहयोग करती हैं।

मार्क्सवादी अध्ययन के परिप्रेक्ष्य में, व्यवस्थापरक दृष्टिकोण के लाभ इस बात में निहित है कि यह हमें अंतरराष्ट्रीय क्षेत्र में संबंधों पर पड़ने वाले वैदेशिक, आर्थिक एवं सामाजिक प्रभावों की समग्रता को सुस्पष्ट ढंग से पृथक करने, इन प्रभावों के आलोक में अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था की क्रियाविधि एवं परिवर्तन के नियमों को समझने तथा इस प्रकार घटना प्रवाह को पहले से ही जान लेने व अवांछित परिणामों की रोकथाम में सहायता करता है।

अंतरराष्ट्रीय संबंधों की व्यवस्था—तथा इसके आसपास के वातावरण—का विशद विश्लेषण हमें व्यवस्था की आंतरिक संरचना के अध्ययन की वस्तुगत कसौटियों को परिभाषित करने में सहायता देता है। इसका ढांचा, जैसाकि बुर्जुआ समाजशास्त्री मानते हैं, मनमानी राजनयिक युक्तियों से निर्मित नहीं होता बल्कि आर्थिक एवं सामाजिक कारकों—विशेषकर सामाजिक व्यवस्था की विशिष्ट प्रकृति—से उत्पन्न वैदेशिक नीति के लक्ष्यों तथा मार्गदर्शक तत्वों के कमोबेश टिकाऊ संयोजनों से निर्मित होता है।

अंतरराष्ट्रीय संबंधों की व्यापक व्यवस्था से वैदेशिक व्यवस्था को पृथक करने के लिए किन कसौटियों का उपयोग किया जा सकता है?

प्रमुख कसौटी सामाजिक-वर्गीय कसौटी है। इसके अतिरिक्त सामाजिक-आर्थिक, सामाजिक-सांस्कृतिक, तथा क्षेत्रीय कसौटियां भी हैं। ये वे सिद्धांत हैं जिनके आधार पर राज्यों का वर्गीकरण किया जा सकता है। हालांकि, राज्यों का वर्गीकरण एवं संमिलन इनमें से एक से अधिक कसौटियों के आधार पर किया जाता है। प्रत्येक विशिष्ट व्यवस्था तथा व्यापक व्यवस्था के मूल तत्व राष्ट्रीय राज्य

अधिक सीमित क़िस्म के संगठन—उत्तरी यूरोप, बाल्कन प्रदेश आदि के—अच्छे उदाहरण हैं।

प्रमुख अंतरराष्ट्रीय समस्याओं के संदर्भ में हितों की समानता से कमोबेश टिकाऊ, यद्यपि अनौपचारिक व्यवस्थाएं तथा सम्मिलन निर्मित होते हैं। कई निर्गुट देशों, तथा उनके व समाजवादी देशों के बीच इसी तरह के संबंध हैं. ये आक्रमण एवं नव साम्राज्यवाद के खिलाफ़ तथा अंतरराष्ट्रीय शांति पुनर्स्थापित करने के मुद्दों पर संयुक्त राजनीतिक नीति का अनुसरण करते हैं।

साथ ही, सैन्य-राजनीतिक एवं आर्थिक व्यवस्थाओं तथा अनौपचारिक सम्मिलनों—जो अनिवार्यतः अंतरराष्ट्रीय सामाजिक-वर्गीय व्यवस्थाओं की सीमाओं में रहकर अंतःक्रिया करते हैं—का विश्व राजनीति एवं अंतरराष्ट्रीय वातावरण के निर्माण पर अपना स्वतंत्र प्रभाव भी होता है। बहुधा विशिष्ट अंतरराष्ट्रीय उद्देश्यों से प्रेरित—सामाजिक-वर्गीय आधार पर नहीं—अस्थायी गठजोड़ एवं समूह (गुट) भी अस्तित्व में आते हैं। फ़ासिज़्म के खिलाफ़ युद्ध के दौरान भिन्न राजनीतिक व्यवस्थाओं वाले देशों का हिटलर विरोधी गठजोड़ भी इसी प्रकार का था जो फ़ासिज़्म की पराजय के तत्काल बाद विच्छिन्न हो गया।

इसे ध्यान में रखकर, समरूप व्यवस्थाओं (जिनमें समान नीति का अनुसरण करने वाले एक प्रकार के राज्य सम्मिलित होते हैं) तथा पचमेल व्यवस्थाओं (जिनमें भिन्न सामाजिक व्यवस्थाओं वाले देश सम्मिलित होते हैं तथा वैदेशिक नीति में जिनके भिन्न रणनीतिक लक्ष्य होते हैं) के बीच भेद करना उपयोगी रहेगा। किसी भी व्यवस्था में सम्मिलित होने वालों की संख्या के आधार पर ही द्वि-ध्रुवीय (जिसमें प्रमुख सहभागी दो हों) तथा बहु-ध्रुवीय (जिसमें बहुत से समकक्ष सहभागी हों) अंतरराष्ट्रीय व्यवस्थाओं में भेद किया जा सकता है।

पश्चिमी विद्वान जो वर्गीकरण प्रस्तुत करते हैं वह और भी अधिक विखंडित है। इनमें से कुछ 'सत्ता संतुलन', 'दुर्बल द्वि-ध्रुवीय', 'सार्वभौमिक पदानुक्रमी' तथा 'निषेधाधिकारी' व्यवस्थाओं में भेद करते हैं।[1]

अन्य किसी व्यवस्था की भांति अंतरराष्ट्रीय संबंध भी आत्म-रक्षण एवं विकास की ओर प्रवृत्त होते हैं। आत्म-रक्षण की प्रवृत्ति टिकाऊ शक्ति संतुलन—जिसका अर्थ है ऐसी स्थिति जिसमें कोई भी अंतरराष्ट्रीय उपव्यवस्था अथवा गठजोड़ दूसरी उपव्यवस्था अथवा गठजोड़ पर अपनी इच्छा थोपने में अक्षम हो—क़ायम होने से फलीभूत होती है। अंतरराष्ट्रीय संबंध व्यवस्था का विकास सामा-

1. मार्टन कप्लान : मैक्रोपॉलिटिक्स (सिलेक्टेड ऐसेज़ ऑन द फ़िलासफ़ी एंड साइंस ऑफ़ पॉलिटिक्स), शिकागो, 1969, पृ. 209-34

जिक संबंधों, विज्ञान, प्रौद्योगिकी, सैन्य मामलों के क्षेत्र में होने वाले परिवर्तनों से उस सीमा तक निःसृत होता है जिस सीमा तक जनता अंतरराष्ट्रीय संबंधों व अन्य कारकों को प्रभावित कर पाती है।

अंतरराष्ट्रीय संबंधों की समस्याओं के प्रति समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण की आवश्यकता अंतरराष्ट्रीय निर्णय-प्रक्रिया—जोकि राजनीतिक सिद्धांत की आधारभूत समस्याओं में से एक है—के विश्लेषण को अपरिहार्य बनाती है। इस सिद्धांत—जो राजनीतिक सत्ता की क्रिया-विधि से संबंधित है—के अंदर व्यावहारिक राजनीति एवं विज्ञान का अभिसरण होता है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि घरेलू एवं वैदेशिक नीति संबंधी निर्णयों की पड़ताल हमें सत्ता के स्वरूप, इसके राजनीतिक रंग तथा जनवाद की विस्तार सीमा के एकदम निकट ले जाती है। यह मात्र संयोग नहीं है कि बूर्ज्वा राजनीति विज्ञान में अत्यंत व्यापक स्तर पर प्रयुक्त पद्धति तथाकथित 'केस अध्ययन' है: ऐतिहासिक उदाहरणों (नज़ीरों) का अध्ययन, विशिष्ट संघर्षों के समाधान का विश्लेषण, खास निर्णयों तक पहुंचना।

वैदेशिक नीति विषयक निर्णयों का एक गुण यह है कि ये अक्सर अनिश्चितता, जोखिम तथा संघर्ष की परिस्थितियों में लिये जाते हैं। इन अवधारणाओं को परिभाषित करने की कठिनाई ने राजनीति के अध्ययन में कुछ समाजशास्त्रियों को एकदम विवेकहीन बना दिया है। यही कारण है कि निर्णय-प्रक्रिया के अध्ययन में नंगा अनुभववाद देखने को मिलता है। कुछ अध्येताओं का यह मानना है कि राजनीति को विज्ञान के रूप में देखने के प्रयासों का परिणाम ठहराव होना चाहिए क्योंकि जोखिम मात्र ही निश्चित है, जबकि संभावना तो सदैव निरा अनुमान होती है। अन्य अध्येता, यद्यपि वे राजनीतिक निर्णय प्रक्रिया के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण की संभावना को स्वीकार करते हैं, यह अनुभव करते हैं कि निर्णय प्रक्रिया का प्रमुख तत्व राजनेता की अंतःप्रेरणा, उसके व्यक्तिगत गुण व समझ है।

लेनिन, जो राजनेता होने के साथ-साथ राजनीतिक चिंतक भी थे, ने बार-बार यह रेखांकित किया था कि राजनीति विज्ञान एवं कला, दोनों ही, है।[1] उन्होंने सोवियत वैदेशिक नीति को अंतःप्रेरणा तथा बेतरतीब राजनीतिक एवं राजनयिक प्रयोगों पर आधारित करने का लक्ष्य बेशक रखा, उन्होंने वैज्ञानिक आधार वाले सिद्धांतों, जिनमें ऐतिहासिक दृष्टिकोण पर आधारित सामाजिक विकास की नियमितताओं एवं प्रवृत्तियों का ज्ञान सम्मिलित है, तथा देश की घरेलू नीति एवं अर्थव्यवस्था से प्रत्यक्ष रूप से संबंधित सामाजिक-राजनीतिक

घटना-क्रियाओ के वर्गीय मूल्यांकन पर उसे आधारित किया।

सोवियत वैदेशिक नीति अपने श्रेष्ठ लक्षण कला एवं विज्ञान के रूप मे राजनीति की लेनिनवादी अवधारणा से व्युत्पन्न करती है।

वैदेशिक नीति विषयक निर्णय प्रक्रिया के प्रति क्रियात्मक दृष्टिकोण, सोवियत अध्येताओं ने इसे जिस रूप मे विकसित किया है, मे गणितीय विज्ञानो की अद्यतन उपलब्धियों—रेखाचित्र सिद्धात, लॉग सारणियो का सिद्धांत, रेखीय, गतिशील एवं स्वत. शोध सयोजन (प्रोग्रामिंग), गेम सिद्धात (प्रस्तुत प्रतिबंधो के परिप्रेक्ष्य में लाभों को अधिकतम करने व हानियों को न्यूनतम करने की रणनीति) साइबरनेटिक सयत्र—जिसमे सूचना सिद्धात, सकेत पद्धति, सप्रेषण सिद्धात, स्वचालित नियत्रण सिद्धात एव अन्य उच्च क्षमता वाली विधियाँ सम्मिलित हैं—के उपयोग की अपार क्षमता है। जाहिर है, राजनीतिक निर्णय प्रक्रिया से गणितीय विधियों का प्रवेश सूचना ससाधन क्रिया-विधि को व्यवस्थित करने मे ही सहायता नही करता अपितु इसमे उत्पन्न होने वाली कई समस्याओं का समाधान भी करता है।

एक-सी अथवा भिन्न अतरराष्ट्रीय व्यवस्थाओ के देशों के पारस्परिक सबध जिन सिद्धांतों पर आधारित होते हैं उनका निर्धारण प्रमुखतया राज्य की सामाजिक सरचना द्वारा किया जाता है। यह निर्विवाद है कि वैदेशिक नीति मूलत: घरेलू नीति द्वारा निर्धारित होती है तथा दोनों ही आर्थिक दृष्टि से प्रमुख एव प्रभावी वर्ग की प्रदत्त सामाजिक व्यवस्था विकसित करने व उसे बनाये रखने की आवश्यकता की पूर्ति करती हैं।

किंतु इससे यह निष्कर्ष निकालना अति सरलीकरण ही माना जायेगा कि समान घरेलू नीतियो का परिणाम अपरिहार्य रूप से एक सी वैदेशिक नीति होता है। हमारे युग मे अतरराष्ट्रीय राजनीति ऐसा कारक है जिसका घरेलू नीतियों पर गहरा प्रभाव पडता है। अस्थायी राजनीतिक संस्थाओं वाले अविकसित देशो का उदाहरण द्रष्टव्य है। उनका आगे विकास बड़ी सीमा तक आतरिक कारकों पर ही नही अपितु अतरराष्ट्रीय कारकों पर भी निर्भर रहता है—समाजवादी एवं पूजीवादी व्यवस्थाओं के प्रभाव पर, उनके साथ राजनीतिक एवं आर्थिक सबधों के विकास पर। सयुक्त राज्य एव लेटिन अमरीका के राज्यों के सबंध एक अन्य स्पष्ट उदाहरण हैं। सैन्य हस्तक्षेप की चर्चा न भी करें तो भी लेटिन अमरीका के कई देशों की घरेलू नीति पर सयुक्त राज्य का व्यापक, तथा कुछ देशो के सदर्भ में निर्णायक प्रभाव है।

उन देशो की स्थिति एकदम भिन्न है जिन्होंने पूजीवादी विकास की अवस्था मे होकर गुजरे बिना समाजवाद को स्वीकार कर लिया है। समाजवादी राज्यों की नीति इन अविकसित राज्यो मे समाजवाद के लिए संघर्ष मे इनके पक्ष में

अंतरराष्ट्रीय परिस्थिति का निर्माण करती है। यह नीति साम्राज्यवादी राज्यों द्वारा प्रतिक्रांति के निर्यात तथा उनका सैन्य एवं राजनीतिक हस्तक्षेप को रोकने में सहायता करती है। साथ ही, चीनी अनुभव ने सिद्ध कर दिया है कि आर्थिक रूप से पिछड़े हुए राष्ट्रों में समाजवाद का निर्माण अधिक उन्नत समाजवादी देशों के सक्रिय एवं सहायक सहयोग से ही संभव है। अन्यथा लक्ष्य-भ्रष्ट हो जाना, राजनीतिक प्रवृत्तियां तथा राजनीतिक एवं सामाजिक संरचना में विकृतियां आ जाना अपरिहार्य है।

परिणामस्वरूप, यह स्वीकार करते हुए भी कि घरेलू नीति वैदेशिक नीति को निर्धारित करती है, राज्य की वैदेशिक नीति को निर्मित करने में सहायक अन्य कारकों—जो चाहे सहायक कारक ही हों—के महत्व को स्वीकार करना भी आवश्यक है।

समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण का उपयोग समाजवादी देशों के आपसी संबंधों को आधार देने वाले सिद्धांतों—यह तुलनात्मक रूप से नया प्रश्न है—के विश्लेषण में भी किया जा सकता है। इन संबंधों का अध्ययन अंतरराष्ट्रीय समाजवाद के विकास तथा आसन्न साम्राज्यवादी खतरे का सामना करने के लिए इन देशों की एकता के प्रश्नों से सीधा जुड़ा हुआ है। कहना न होगा कि हमारे समय के नये किस्म के अंतरराष्ट्रीय संबंधों का अध्ययन बेहद अर्थवान् है—खासकर जब समाजवादी देशों का अस्तित्व है, जब नये देश समाजवादी पथ पर अग्रसर होने लगे हैं, जब अंतरराष्ट्रीय क्षेत्र में नये, समाजवादी संबंध स्वरूप ग्रहण कर रहे एवं विकसित हो रहे हैं तथा जब, इस सबके साथ ही, कुछ समाजवादी राज्यों के पारस्परिक संबंधों में कई समस्याएं व कठिनाइयां उभर कर सामने आई हैं।

मोटे तौर पर, जिन सिद्धांतों पर समाजवादी देशों के आपसी संबंध आधारित हैं उन्हें 1957 व 1960 में कम्युनिस्ट तथा श्रमिक पार्टियों के प्रतिनिधियों की बैठक में स्वीकृत घोषणाओं तथा 1969 में कम्युनिस्ट तथा श्रमिक पार्टियों की बैठक में स्वीकृत विज्ञप्ति में परिभाषित किया गया था। अधिकांश समाजवादी देशों के लिए 'पारस्परिक आर्थिक सहायता' तथा वारसा संधि के ढांचे में ठोस राजनीतिक सहयोग को क्रियारूप दिया जाता है। इसके अतिरिक्त द्विपक्षीय संबंधों के माध्यम से भी सहयोग किया जाता है।

समाजवादी देशों की अर्थव्यवस्थाओं का बढ़ता हुआ अभिसरण तथा उनका आर्थिक संयोजन विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है। आर्थिक जीवन के वास्तविक अंतरराष्ट्रीयकरण की समस्या का समाधान समाजवाद ही करता है।

समाजवादी अर्थव्यवस्थाओं का संयोजन इन देशों के आर्थिक विकास में सहायक होता है तथा पूंजीवाद के साथ शांतिपूर्ण आर्थिक स्पर्द्धा में समाजवाद की निर्णायक विजय को निकट ले आता है। इससे सहयोग के क्षेत्र में समाजवादी देशों के

विचारधारात्मक एकता को सुदृढ़ करता है तथा मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धांत के विकास में सहायता देता है।

1969 में आयोजित कम्युनिस्ट तथा श्रमिक पार्टियों के अधिवेशन में स्वीकृत दस्तावेजों में अंतरराष्ट्रीय समाजवादी व्यवस्था के विकास की व्यापक महत्ताओं तथा कठिनाइयों का उल्लेख है। अपने समय में लेनिन ने रेखांकित किया था कि समाजवाद की ओर जाने वाला मार्ग "····कभी भी सीधा नहीं होगा, बल्कि यह अविश्वसनीय रूप से उलझावपूर्ण होगा।"[3]

सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी, जिसने समाजवाद का बिगुल सर्वप्रथम बजाया था, अपने अनुभव से जानती है कि मार्ग सीधा व आसान नहीं है। हम यहां सभी वर्गों व सामाजिक समूहों के हितों को प्रभावित करने वाली शताब्दियों पुरानी परंपराओं के आधारभूत भवन, एकदम नये किस्म के सामाजिक संबंधों की रचना, तथा नये विश्व दृष्टिकोण एवं नये मनोविज्ञान में जनता को लैस किये जाने की ओर संकेत कर रहे हैं। खास मुद्दा, विशेषकर राज्यों के पारस्परिक संबंधों की दृष्टि से, शताब्दियों पुरानी राष्ट्रीय कलह एवं अविश्वास पर विजय प्राप्त करना है। ये देश जिन समस्याओं का सामना करते हैं उनमें से अधिकांश साम्राज्यवादी देशों द्वारा समाजवादी दुनिया पर दबाव डालने के प्रयासों—आर्थिक, राजनीतिक, विचारधारात्मक—से जुड़ी हुई हैं।

"····समाजवादी अंतरराष्ट्रीयतावाद के सिद्धांतों को दृढ़ता से क्रियान्वित करना, समाजवादी राज्यों के राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय दायित्वों को सही ढंग से संयोजित करना, सभी देशों की समानता के सुसंगत अनुपालन के आधार पर उनको पारस्परिक भ्रातृसुलभ सहायता एवं सहयोग को बढ़ावा देना, उनकी संप्रभुता, स्वतंत्रता तथा उनके आतरिक मामलों में गैर-हस्तक्षेप को मान देना समाजवादी व्यवस्था को पुख्ता करने की मुख्य दिशा है।"[4]

अंतरराष्ट्रीय समाजवादी व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने के प्रति चिंतित सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी व अन्य कम्युनिस्ट पार्टियों की सिद्धांतनिष्ठ नीति यही है।

समाजवादी देशों तथा एशिया, अफ्रीका व लेटिन अमरीका के राष्ट्रीय राज्यों—जो औपनिवेशिक दासता से मुक्त हो चुके हैं—के संबंधों का विशिष्ट स्वरूप है। ये संबंध राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलनों के व्यापक राजनीतिक समर्थन व उसकी निस्स्वार्थ सहायता पर आधारित हैं। एशिया एवं अफ्रीका के नवोदित एवं विकासशील राज्य अंतरराष्ट्रीय पूंजीवादी अर्थ व्यवस्था से अपने आपको अलग

3. वी. आई. लेनिन . कलेक्टेड वर्क्स, खंड 27, पृ. 130
4. इंटरनेशनल मीटिंग ऑफ़ द कम्युनिस्ट एंड वर्कर्स पार्टीज़, मास्को 1969, प्राग, 1969, पृ. 148

नहीं कर पाये हैं, यद्यपि इसमें उनका प्रमुख स्थान है। पहले नव-स्वतंत्र देशों के सम्मुख एक ही विकल्प हुआ करता था : पूजीवादी रास्ते पर विकास। वर्तमान स्थितियों में, जिसका श्रेय विश्व समाजवादी व्यवस्था के अस्तित्व तथा साम्राज्यवाद के कमजोर पड़ने को जाता है, उनके पास राष्ट्रीय पुनरुज्जीवन का, औद्योगिक पिछड़ेपन तथा जनता की दरिद्रता पर पूर्ण विजय प्राप्त करने का, आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त करने तथा क्रमश समाजवाद की ओर बढ़ने का अवसर प्राप्त है।

इस आलोक में, समाजवादी राज्यों द्वारा राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलनों को दी जाने वाली सहायता के विशाल महत्त्व को आसानी से समझा जा सकता है। नवोदित राज्यों के साथ समाजवादी देशों के आर्थिक सहयोग का उद्देश्य इन देशों के प्रमुख आर्थिक क्षेत्रों को विकसित करना तथा औद्योगीकरण में सहायता देना है। यह सहायता उद्योग एव कृषि से सबधित सार्वजनिक क्षेत्र को सुदृढ़ करती है—जिससे राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का विकास आगे बढ़ता है—तथा अततोगत्वा साम्राज्यवादी राज्यों की भूतपूर्व उपनिवेशों को सामान सप्लाई करने की इजारेदारी को समाप्त करती है।

समाजवादी देश एशिया, अफ्रीका तथा लेटिन अमरीका के नवोदित राज्यों के कर्मकों को प्रशिक्षित करके, अपने व्यवहारिक अनुभव का उनके साथ साझा करके, राजनैतिक समर्थन प्रदान करके तथा उनकी सेनाओं को सुदृढ़ करके उन्हें सहायता देते हैं। सहायता देने में वे ऐसी कोई शर्तें नहीं लगाते जो नव स्वतंत्र राज्यों की सप्रभुता को आघात पहुचा सकें।

सोवियत संघ ने उन नवोदित राज्यों के साथ, जिन्होंने विकास का समाजवादी रास्ता अपनाया है, विशेष रूप से घनिष्ठ एव हार्दिक सबध कायम किये हैं। जाहिर है, अपने लक्ष्य की ओर जितना आगे ये राज्य बढ़ेंगे, ये संबंध उतने ही अधिक विविधतापूर्ण एव पक्के होंगे। सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी भी इन देशों के क्रांतिकारी-जनवादी दलों के साथ सबध कायम करती है।

उन सिद्धातों—जिन पर कि समाजवादी तथा पूजीवादी देशों के सबध आधारित हैं—का विश्लेषण बेहद महत्त्वपूर्ण है। समाजवादी देशों के लिए शातिपूर्ण सह-अस्तित्व की नीति कार्य नीति सबधी चाल नहीं है बल्कि साम्यवाद के उच्च आदर्शों से अनुप्रेरित सिद्धान्तनिष्ठ अंतरराष्ट्रीय नीति है। शातिपूर्ण सह-अस्तित्व की नीति मात्र राष्ट्रों के बीच शाति की आकाक्षा पर आधारित नहीं है। अंतरराष्ट्रीय क्षेत्रों में शक्तियों के मौजूदा अन्योन्याश्रय तथा सैन्य प्रौद्योगिकी के विराट विकास को मद्दे नजर रखते हुए, समाजवादी देशों ने भिन्न सामाजिक व्यवस्थाओं वाले देशों के बीच शातिपूर्ण सह-अस्तित्व के सिद्धात को अतरराष्ट्रीय सबधों के एक मात्र सहज एव विवेकपूर्ण रूप के रूप में प्रस्तुत एव परिभाषित किया है।

दो व्यवस्थाओं के मध्य शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व की नीति की विजय के लिए यह आवश्यक है कि सभी प्रगतिशील शक्तियां [illegible] के साथ इसके लिए कार्य करें। लेनिन की यह उक्ति कि राजनीति विज्ञान एवं कला दोनों ही है—एक व्यक्ति की तुलना में कई व्यक्ति के अधिक निकट है—मानकर हमारे समय—जो [illegible] परिवर्तनशील, जटिल एवं तनाव की [illegible] स्थितियों तथा अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में विविध शक्तियों की कार्रवाई का साक्षी है—में बेहद उपयुक्त एवं प्रासंगिक है।

सिद्धांतों के प्रति दृढ़निष्ठा, शांति के हितों को ध्यान में रखकर आपसी समझौता करने की क्षमता, सैन्य शक्तियों के कुचक्रों का पर्दाफाश करने की तत्परता, शांति की शक्तियों के लिए नये मित्र—चाहे वे ढुलमुल व चंचल ही क्यों न हों—शामिल करने के हल्के से अवसर का भी लाभ उठाना, साम्राज्यवादी सरकारों के परे राष्ट्रों एवं विश्व जनमत से अपील, इन सरकारों से वार्तालाप तथा अंतरराष्ट्रीय तनाव कम करने के लिए राजनयिक स्रोतों का उपयोग आदि समाजवादी वैदेशिक नीति के प्रमुख पक्ष हैं। मौजूदा स्थिति में जबकि विश्व संतुलन दिनों-दिन समाजवाद की ओर झुक रहा है, इन पक्षों का उपयोग निरंतर बढ़ रहा है।

समाजशास्त्रीय विश्लेषण उन सिद्धांतों को परिभाषित करने में सहायता करता है जिन पर समाजवादी एवं पूंजीवादी देशों के संबंधों को आधारित होना चाहिए। किसी भी काल में, विश्व स्तर पर शक्तियों के अन्योन्याश्रय का यथार्थवादी मूल्यांकन इनमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। समाजवादी देशों की बढ़ती हुई शक्ति द्वारा प्रस्तुत नई संभावनाओं को कम महत्त्व देना अथवा इन संभावनाओं को दुस्साहसिक रूप से अधिक महत्त्व देना समान रूप से खतरनाक है। शक्तियों के अन्योन्याश्रय के सटीक आकलन के लिए आर्थिक एवं सैन्य क्षमता, राजनीतिक संरचना की स्थिरता, मित्रों के साथ एकता, प्रत्येक व्यवस्था के अंतर्विरोधों के चरित्र पर विचार करना अत्यंत आवश्यक है।

भिन्न सामाजिक व्यवस्थाओं वाले देशों के साथ शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व के सिद्धांतों का निरूपण लेनिन ने ही किया था। उन्होंने रेखांकित किया था कि समाजवाद स्वभावतया ऐसी समाज व्यवस्था है जो श्रमिक वर्ग तथा समस्त कामगार जनता के मूलभूत हितों को अभिव्यक्ति देती है तथा राष्ट्रों एवं राज्यों के बीच शांति बनाये रखने का प्रयास करती है। यही कारण है कि समाजवादी देश पूंजीवादी देशों के साथ सामान्य आर्थिक एवं राजनीतिक संबंध कायम एवं विकसित करने के प्रयास करते हैं। साथ ही समाजवादी देशों के क्रियाकलाप का प्रमुख अंग पूंजीवादी देशों में क्रांतिकारी शक्तियों का समर्थन देना तथा श्रमिक आंदोलन व राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलनों के साथ एकजुटता को सुदृढ़ करना भी है।

इन विचारों के कारण कई समकालीन समस्याओं—वे सिद्धांत जिन पर

[illegible]

अंतरराष्ट्रीय राजनीति के [illegible] विश्लेषण के लिए आवश्यक है कि शांति की [illegible] रूप को अधिक [illegible] जाय। [illegible] राष्ट्रों के बीच शांति, [illegible] के बीच शांति आदि की चर्चा करता है। [illegible] ('राजनीतिक', 'आर्थिक' तथा कुछ अन्य [illegible] की शांति) अंग्रेजी शब्द के [illegible] है जिसके विभिन्न अर्थ हैं।

अब हम शांति को 'विधेयीकृत' करने का प्रश्न उठाते हैं तब हमारे सौभाग्य व सामान्य शांति कायम करने की बात प्रमुख रूप से होती है, हमारा तात्पर्य है कि वह समग्र मानवता की शांति हो तथा विशेष मुख्य के रूप में स्वीकृत हो—न कि मात्र राज्यों, राष्ट्रों, सामाजिक समूहों के लिए अर्थवत्ता के सापेक्ष मूल्यों के रूप में (और इस तरह स्वाधीन स्वरूप युक्त) स्वीकृत हो। उग्र-आणविक एवं इलेक्ट्रानिक युग ने सार्वत्रिक शांति कायम करके एवं युद्ध की विभीषिका को रोकने को अंतरराष्ट्रीय मूल्य-वरीयताक्रम में मुख्य नं० एक की प्रतिष्ठा दी है। हम सार्वत्रिक शांति को विश्वयुद्ध को रोकने का पर्याय मानते हैं। बीसवीं शताब्दी के आखिरी तीसरे हिस्से में, जबकि विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी अपना प्रताप व खतरा प्रदर्शित कर चुके हैं, अंतरराष्ट्रीय राजनीति का प्रमुख लक्ष्य मात्र यही हो सकता है।

समस्त मानवता के हितों का खयाल रखने वाली कोटि के रूप में सार्वभौमिक शांति की अवधारणा राजनीतिक क्रिया-व्यापार के सापेक्ष मूल्यों के संदर्भ में विशेष अर्थ से मंडित हो जाती है। इन सापेक्ष मूल्यों में राष्ट्रीय महानता, राज्य की प्रतिष्ठा, सत्ता अथवा राष्ट्रीय प्रभुत्व की प्रधानता प्रमुख है। स्वायत्त घटना क्रिया के रूप में, अंतरराष्ट्रीय नीति सार्वभौम लक्ष्य से अनुप्राणित नीति है। यह लक्ष्य है समूची मानवता को विनाश की आग में झोंकने वाले विश्वयुद्ध को रोकना। संयुक्त राष्ट्र के घोषणापत्र (जो शांति को संयुक्त राष्ट्र के क्रियाकलाप का आधार व नींव मानता है) में भी इस समस्या को इसी रूप में देखा गया।

निरपेक्ष एवं सापेक्ष मूल्यो का हमारा विभेद उन अध्येताओं की अवधारणाओ
मेल नही खाता है जो सस्थागत (किसी न किसी रूप मे संरचनाओं, व्यवस्थाओ
था संस्थाओं से जुड़े हुए) तथा सार्वभौमिक मूल्यों (मनुष्य की जैव-भौतिक प्रकृति
उत्पन्न) में विभेद करने के प्रयास करते है। यह विभेदीकरण मनुष्य के प्राकृ-
िक अधिकारों के सिद्धात— जे० जे० रूसो के 'द सोशल कांट्रेक्ट' मे जिनका
ाकास तथा प्रस्तुतीकरण असाधारण प्रेरणा से युक्त मिलता है—से पैदा होता
। इस धारणा की कमजोरी यह है कि सामाजिक संस्थाए एव सस्कृति प्राकृतिक
थवा सार्वभौमिक अधिकारो व मूल्यो को प्रभावित नही कर सकती।

इसका यह अर्थ कदापि नही है कि शाति के सभी रूपो का सापेक्ष अथवा
रपेक्ष मूल्य होता है। शक्तिशाली राष्ट्रो तथा दमित राष्ट्रों, सत्ताधारी वर्गों
ा उनके अधीन वर्गों, दमनकारी राज्यो तथा उनके अधीन राज्यों के बीच
ति का उल्लेख भी नही किया जा सकता, प्रत्येक राष्ट्र को स्वतंत्रता तथा
की किसी भी तरह—अस्त्रों की शक्ति का प्रयोग करके भी—हिफाजत करने
अधिकार है। सामाजिक हिसा का त्याग अथवा उससे दूर रहना प्रत्येक
ति मे अच्छा नही होता परिणामस्वरूप प्रत्येक शांति राष्ट्रीय नीति का लक्ष्य
हो सकती।

अंतरराष्ट्रीय राजनीति की कोटि के रूप मे सार्वभौमिक शांति के लिए
वी मानवता को अन्य व्यवस्थाओ से पृथक एक सपूर्ण व्यवस्था के रूप मे देखना
श्यक है: ऐसी व्यवस्था के रूप मे जिसके स्वय के अंतर्जगत से तथा पर्यावरण
बध हैं। व्यवस्थापरक दृष्टिकोण को भी, जैसा हम बार-बार कह चुके हैं,
त्मक दृष्टि से देखा जाना चाहिए। हीगेल द्वारा प्रतिपादित तथा मार्क्स एवं
न द्वारा विकसित द्वद्वात्मक पद्धति सामाजिक जीवन को विपरीतों की एकता
सघर्ष के परिदृश्य से देखती है। इस दृष्टि से, अतरराष्ट्रीय सबधों की व्य-
ऐसा मैदान है जहां अत्यत विविध— विरोधी भी—शक्तियां सघर्ष एवं
ोग करती हैं।

समकालीन विश्व तीव्र आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं विचार-
त्मक सघर्षों से घिरा हुआ है। राजनीतिक व्यवस्थाओ का आपसी विरोध
जनसहार के आधुनिकतम अस्त्रों का विकय इससे पहले कभी भी इतना
शाली एव धमकाने वाला कभी नही रहा। विरोधों का सघर्ष—अतर-
य क्षेत्र मे सर्वाधिक तीव्र अर्तविरोध—समकालीन मानव समाज के जीवन
त्यत असाधारण लक्षण है।

तथापि विरोधी सिद्धांतों की प्रकृति को ही नहीं बल्कि मानवता की एकता
रूप को भी देखा जाना चाहिए, यह मानते हुए भी कि विरोधी शक्तियां
ाश मामलो मे एक दूसरे का विरोध करती है, उनकी सहयोग-सभावनाओ

का भी विश्लेपण किया जाना चाहिए। युद्धोत्तर काल मे, अंतरराष्ट्रीय संबंधों में आये उत्थान-पतन के बावजूद अर्थशास्त्र, विज्ञान, प्रौद्योगिकी एवं संस्कृति के क्षेत्रों में सहयोग स्पष्टतया व्यापक तथा गहरा हो रहा है। आर्थिक हित—तीव्र आर्थिक स्पर्द्धा का सार तथा सामाजिक संबंधों के क्षेत्र में श्रेष्ठता प्रदर्शित करने की आकांक्षा—आर्थिक, वैज्ञानिक एव प्रौद्योगिक तथा सांस्कृतिक संपर्कों को प्रेरित करने वाला कारक है।

राजनीतिक सबधों के क्षेत्र में स्थिति और भी जटिल है: यहां अब तक सहयोग के तत्त्वों पर सघर्ष के तत्त्व हावी रहे हैं। इस तथ्य के बावजूद कि सभी देशों की जनता के लिए व्यापार तथा वैज्ञानिक एव प्रौद्योगिक लाभों की तुलना में युद्ध को रोक पाना निस्संदेह अधिक मूल्यवान है, मानवता के इस साझे हित को विशिष्ट राजनीतिक शक्तियों तथा सामाजिक समूहों (सैन्य-औद्योगिक समूहों) द्वारा तथा राजनीतिक भ्रमों, पूर्वग्रहों तथा अशुद्ध गणनाओं (विरोधी पक्ष की गतिविधियों के बारे मे अपर्याप्त सूचना पर आधारित) द्वारा विकृत एवं विरूपित कर दिया गया है।

सार्वभौमिक शांति की समस्या की प्रकृति विशिष्ट प्रकार की है। यदि विश्व युद्ध छिड़ जाता है तो इसका असर समूची दुनिया के लोगों पर पड़ेगा; उनकी सामाजिक संरचना तथा संघर्ष मे भाग लेने अथवा न लेने का उक्त असर पर कोई प्रभाव नही पड़ेगा।

अंतरिक्ष के अध्ययन एव अनुसंधान के परिणामस्वरूप नई समस्याएं उत्पन्न हो सकती हैं, क्योंकि ब्रह्मांड मे मनुष्य के विचरण से उत्पन्न होने वाली अप्रत्याशित स्थितियों का पूर्वानुमान असभव है। उन चुनौतियों का पूर्वानुमान भी असंभव है जिनका समूची मानवता द्वारा प्रतिरोध व प्रतिक्षेप अवश्यक हो सकता है। ये उदाहरण सिद्ध करते हैं कि राजनीति के अध्येताओं के लिए कार्ल मार्क्स, एंगेल्स व लेनिन द्वारा विकसित विरोधों की एकता व सघर्ष के सिद्धांत को सही ढंग से लागू करना बेहद महत्त्वपूर्ण है।

सार्वभौमिक शांति मानवता के अनतरराष्ट्रीय सबधों की समग्र अवस्था की आधारभूत कड़ी है। इस दृष्टि को अपनाने का अर्थ है कि सत्ता संतुलन का संपोषण, नाभिकीय श्रेष्ठता अथवा यथास्थिति का संपोषण मे से कोई भी अंतरराष्ट्रीय नीति का लक्ष्य नही हो सकता। सामाजिक अतरविरोधों का उनके विकास के दौर मे, निराकरण प्रत्येक देश मे अथवा देशों की व्यवस्था मे, आंतरिक वर्गीय शक्तियों द्वारा किया जाता है तथा शांतिपूर्ण एवं उग्र तरीकों के उपयोग पर आधारित होता है। विभिन्न विचारधारात्मक भंगिमाओं वाले समाजशास्त्री यह स्वीकारते हैं कि उत्पादक शक्तियों का विकास—खास तौर पर आधुनिक विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी—उत्पादन के समाजीकरण तथा आर्थिक नियोजन को अनिवार्य बना देता है।

यह माना जा सकता है कि समस्या को इस रूप में प्रस्तुत करने से अंतरराष्ट्रीय संबंधों के अध्ययन का सामान्य अभिप्राय पूरा हो सकता है। हालांकि ऐसा कोई प्रतिष्ठित समाजशास्त्री नहीं है जो कि ऊष्मा-नाभिकीय युद्ध की वकालत करता हो, फिर भी समस्या इसलिए जटिल बन जाती है कि राज्य के कार्य-व्यापार तथा वैज्ञानिक शोध के मध्यवर्ती लक्ष्य अंतरराष्ट्रीय नीति के आधारभूत लक्ष्य तथा प्रमुख उद्देश्य को अक्सर ढक लेते हैं तथा इस तरह उसे गौण बना देते हैं। यह अनिवार्य है कि अंतरराष्ट्रीय मानवीय व्यवस्था के ढांचे में सार्वभौमिक शांति को परम मूल्य तथा सर्वोच्च दायित्व के रूप में देखा जाय।

कई पश्चिमी सिद्धांतकारों ने नकारात्मक तथा सकारात्मक शांति में विभेद किया है। नकारात्मक शांति से अभिप्राय है युद्ध की अनुपस्थिति अथवा सगठित समूहों में बल प्रयोग की अनुपस्थिति। सकारात्मक शांति का अर्थ है विभिन्न सामाजिक समूहों की आपसी समझ तथा उनके बीच शक्तियों के एकत्रीकरण पर आधारित सहयोग एवं सह-अस्तित्व के गुणों की उपस्थिति।

तथापि 'नकारात्मक शांति' शब्द का सार्वत्रिक शांति संबंधी बहस में मुश्किल से ही प्रयोग किया जा सकता है। विश्व युद्ध की रोकथाम, किन्हीं भी परिस्थितियों में, सकारात्मक घटना-क्रिया है। यही नहीं, अंतरराष्ट्रीय राजनीति में नकारात्मक शांति का अस्तित्व होता ही नहीं क्योंकि आर्थिक, वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक व राजनीतिक सहयोग तथा अंतरराष्ट्रीय संचार व्यवस्था के विभिन्न रूप वास्तविकता बन चुके हैं।

हम निम्नलिखित विभेदीकरण को प्रस्तावित करते हैं :

निष्क्रिय व्यापक शांति की अवस्था, जिसमें हालांकि सकारात्मक सहयोग के तत्त्व समाहित होते हैं, फिर भी हथियारों की दौड़ तथा अंतरराष्ट्रीय तनाव जारी रहते हैं तथा ऊष्मा-नाभिकीय युद्ध की ओर अग्रसर होने की प्रवृत्ति व्यक्त होती है;

सक्रिय व्यापक शांति की अवस्था, जो भिन्न व्यवस्थाओं एवं राज्यों के स्थायी शांतिपूर्ण सहअस्तित्व, अंतरराष्ट्रीय तनाव में कमी तथा देशों के मध्य व्यापक तथा लाभकारी सहयोग को अपरिहार्य बना देती है;

नियोजित व्यापक शांति की अवस्था के लिए ऐसी अंतरराष्ट्रीय स्थिति आवश्यक होती है जिसमें न केवल तनाव कम करने, हथियारों की दौड़ समाप्त करने, क्रमिक रूप से निरस्त्रीकरण को क्रियारूप देने से संबंधित, बल्कि अंतिम विश्लेषण में, विश्व युद्धों को समाप्त करने तथा सार्वभौमिक शांति की गारंटी

यह माना जा सकता है कि समस्या को इस रूप में प्रस्तुत करने से अंतरराष्ट्रीय संबंधों के अध्ययन का सामान्य अभिप्राय पूरा हो सकता है। हालांकि ऐसा कोई प्रतिष्ठित समाजशास्त्री नहीं है जो कि ऊष्मा-नाभिकीय युद्ध की वकालत करता हो, फिर भी समस्या इसलिए जटिल बन जाती है कि राज्य के कार्य-व्यापार तथा वैज्ञानिक शोध के मध्यवर्ती लक्ष्य अंतरराष्ट्रीय नीति के आधारभूत लक्ष्य तथा प्रमुख उद्देश्य को अक्सर ढक लेते है तथा इस तरह उसे गौण बना देते हैं। यह अनिवार्य है कि अंतरराष्ट्रीय मानवीय व्यवस्था के ढाचे में सार्वभौमिक शांति को परम मूल्य तथा सर्वोच्च दायित्व के रूप में देखा जाय।

कई पश्चिमी सिद्धांतकारों ने नकारात्मक तथा सकारात्मक शांति में विभेद किया है। नकारात्मक शांति से अभिप्राय है युद्ध की अनुपस्थिति अथवा संगठित समूहों में बल प्रयोग की अनुपस्थिति। सकारात्मक शांति का अर्थ है विभिन्न सामाजिक समूहों की आपसी समझ तथा उनके बीच शक्तियों के एकत्रीकरण पर आधारित सहयोग एवं सह-अस्तित्व के गुणों की उपस्थिति।

तथापि 'नकारात्मक शांति' शब्द का सार्वत्रिक शांति संबंधी बहस में मुश्किल से ही प्रयोग किया जा सकता है। विश्व युद्ध की रोकथाम, किन्हीं भी परिस्थितियों में, सकारात्मक घटना-क्रिया है। यही नहीं, अंतरराष्ट्रीय राजनीति में नकारात्मक शांति का अस्तित्व होता ही नहीं क्योंकि आर्थिक, वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक व राजनीतिक सहयोग तथा अंतरराष्ट्रीय संचार व्यवस्था के विभिन्न रूप वास्तविकता बन चुके हैं।

हम निम्नलिखित विभेदीकरण को प्रस्तावित करते हैं

निष्क्रिय व्यापक शांति की अवस्था, जिसमें हालांकि सकारात्मक सहयोग के तत्व समाहित होते हैं, फिर भी हथियारों की दौड तथा अंतरराष्ट्रीय तनाव जारी रहते हैं तथा ऊष्मा-नाभिकीय युद्ध की ओर अग्रसर होने की प्रवृत्ति व्यक्त होती है;

सक्रिय व्यापक शांति की अवस्था, जो भिन्न व्यवस्थाओं एवं राज्यों के स्थायी शांतिपूर्ण सहअस्तित्व, अंतरराष्ट्रीय तनाव में कमी तथा देशों के मध्य व्यापक तथा लाभकारी सहयोग को अपरिहार्य बना देती है;

नियोजित व्यापक शांति की अवस्था के लिए ऐसी अंतरराष्ट्रीय स्थिति आवश्यक होती है जिसमें न केवल तनाव कम करने, हथियारों की दौड समाप्त करने, क्रमिक रूप से निरस्त्रीकरण को क्रियारूप देने से संबंधित, बल्कि अंतिम विश्लेषण में, विश्व युद्धों को समाप्त करने तथा सार्वभौमिक शांति की गारंटी

करने से संबंधित सकारात्मक उपाय किये जा सकें।*

अंतरराष्ट्रीय नीति, जिसका उद्देश्य ऊष्मा-नाभिकीय युद्ध को रोकना है, इस तरह के युद्ध की प्रकृति के यथार्थपरक मूल्यांकन पर आधारित होती है। भविष्य के युद्धों की प्रकृति का अध्ययन सामान्यतया पिछले युद्धों के विश्लेषण पर आधारित होता है। इस स्थिति में पारंपरिक दृष्टिकोण को सार रूप में संशोधित किया जाना आवश्यक है।

तुलनात्मक पद्धति, जैसाकि कॉम्ते तथा दुर्खीम ने रेखांकित किया था, समाज विज्ञानों की आधारभूत पद्धतियों में से एक है।[5] आधुनिक समाजशास्त्र द्वारा सामाजिक संस्थाओं एवं सामाजिक जीवन की तुलना को अपने काम का महत्वपूर्ण उपकरण माना जाना तर्कसंगत है। तुलनात्मक पद्धति ऊष्मा-नाभिकीय युद्ध के अध्ययन पर भी लागू की जानी चाहिए। किंतु तुलना करने का अर्थ सदृश अथवा समान घटना-क्रियाओं को मिलाना मात्र नहीं है। इसमें भिन्न अथवा विरोधी घटना-क्रियाओं—जिनके एक से कारण तथा समान सारगत रूप हों—का सन्निधान भी समाहित है। दूसरे शब्दों में, तुलनात्मक पद्धति समानताओं तथा असमानताओं, दोनों ही, के अध्ययन को आवेष्टित करती है।

ऊष्मा-नाभिकीय विश्व युद्ध की किसी भी पिछले युद्ध से तुलना समानताओं के स्थान पर असमानताओं को अधिक उजागर करती है तथा जोर देकर यह कहने का आधार प्रस्तुत करती है कि यदि ऊष्मा-नाभिकीय विश्व युद्ध छिड़ जाता है तो विभिन्न दृष्टियों—सैन्य, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, नैतिक—से यह गुणात्मक रूप से नयी घटना-क्रिया होगी। विश्व युद्ध, अंतिम विश्लेषण में, संपूर्ण मानवता के लिए महाविपत्ति होगा।

ऐसा युद्ध भौगोलिक सीमाओं की परवाह नहीं करेगा, किसी भी राज्य को पार्श्व-पंक्तियों में नहीं छोड़ेगा। आर्थिक जीवन के केंद्रों के विनाश का परिणाम यह होगा कि उत्पादन, व्यापार एवं उपभोग की कड़ियां नष्ट हो जाएंगी तथा लाखों लोग विनाशकारी अकाल की चपेट में आ जाएंगे। ऐसा युद्ध सामाजिक जीवन के मौजूदा रूपों को आधारमूलक आघात पहुंचाएगा : पारंपरिक संस्थाएं

* लेखक ने वार्ना, बुल्गारिया में आयोजित 'समाजशास्त्र का विश्व सम्मेलन' में [illegible] (संपादक)

5 [illegible] खंड 5, [illegible] 19[illegible]

समाप्त हो जाएगी, राज्य क्रिया विधियों को पक्षाघात ग्रस लेगा, उत्पादन संबंधों तथा व्यक्तियों के बीच के सहज संबंधों का विघटन हो जाएगा।

अमरीकी प्रोफेसर, क्विंसी राइट, ने युद्धों के इतिहास के संबंध में अत्यंत महत्त्वपूर्ण अध्ययन किया है। उनकी कृति, 'ए स्टडी ऑफ वार्स' के ताजा संस्करण में 1500 पृष्ठ तथा 77 सारणियां हैं। उनकी गणना के अनुसार 2600 ईसा पूर्व तथा 1962 के कम-से-कम 14500 युद्ध हुए हैं।[6]

एक अन्य अमरीकी समाजशास्त्री, ह्वान ए. गैंटिंग ने भविष्य के युद्धों का चित्र खींचने का प्रयास किया है। उन्होंने विभिन्न ऐतिहासिक कालों में युद्धों की संख्या तथा मृत व्यक्तियों की संख्या की तुलना करते हुए सांख्यिकीय सारणी तैयार की है। आंकड़ों से उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि जनसंख्या में वृद्धि तथा सभ्यता के विकास के साथ-साथ मृतकों की संख्या में बेतहाशा बढ़ोतरी होती है। उन्होंने इसे 'मृत्यु के स्फीतिकारी सर्पिल' की संज्ञा दी है। यह वह क्षेत्र है जहां स्फीति की अग्रता है।

1820 तथा 1859 के मध्य हमारे ग्रह की जनसंख्या लगभग 1 अरब थी; इसी अवधि के दौरान 92 युद्धों में लगभग 8 लाख लोग मारे गये—जो जनसंख्या का 0·1% था। 1860 से 1899 के बीच विश्व की जनसंख्या लगभग 1 अरब 30 लाख थी तथा 106 युद्धों में लगभग 46 लाख लोग मारे गये—यह जनसंख्या का 0.4% भाग था। 1900 से 1949 तक विश्व की जनसंख्या लगभग 2 अरब थी तथा इस अवधि में हुए 117 युद्धों में 4 करोड़ 20 लाख लोग—जनसंख्या का 2.1%—मारे गये। बहिर्वेशन के आधार पर, 1950 व 1999 के मध्य विश्व जनसंख्या लगभग 4 अरब होगी तथा इस अवधि में होने वाले लगभग 120 युद्धों में 40 करोड़ 60 लाख लोग—जनसंख्या का 10.1%—मारे जाएंगे। 2000 से 2050 के बीच विश्व जनसंख्या लगभग 10 अरब होगी तथा लगभग 4.5 अरब लोग—जनसंख्या का 45%—मारे जाएंगे जिनमें से 3.6 अरब लोग तो एक ही युद्ध में मारे जाएंगे।

गैंटिंग की गणना के अनुसार युद्ध में मरने वालों की संख्या प्रत्येक पीढ़ी में साढ़े चार गुना अधिक हो जाती है।

समाजशास्त्री जनसंख्या विस्फोट को लेकर चिंतित हैं। उनकी गणना के अनुसार वर्तमान शताब्दी के अंत तक पृथ्वी की जनसंख्या दुगुनी—7 अरब—हो जाएगी। 'मृत्यु के सर्पिल' से उन्हें राहत मिलनी चाहिए: सैन्य विस्फोट जनसंख्या विस्फोट को निशाना बनाता है। अब से 80 से लेकर 130 वर्षों के मध्य (गैंटिंग की गणनाओं के आलोक में), जनसंख्या का 100% युद्ध में मारा जायेगा।[7]

6 देखें रोबिन क्लार्क, द साइंस ऑफ वार एंड पीस, न्यूयार्क, 1972, पृ॰ 220-21
7. देखें रोबिन क्लार्क, द साइंस ऑफ वार एंड पीस, न्यूयार्क, 1972, पृ॰ 4

करने से संबंधित सकारात्मक उपाय किये जा सकें।*

अंतरराष्ट्रीय नीति, जिसका उद्देश्य ऊष्मा-नाभिकीय युद्ध को रोकना है, इस तरह के युद्ध की प्रकृति के यथार्थपरक मूल्यांकन पर आधारित होती है। भविष्य के युद्धों की प्रकृति का अध्ययन सामान्यतया पिछले युद्धों के विश्लेषण पर आधारित होता है। इस स्थिति में पारंपरिक दृष्टिकोण को सार रूप में समोधित किया जाना आवश्यक है।

तुलनात्मक पद्धति, जैसाकि कॉम्ते तथा दुर्खीम ने रेखांकित किया था, समाज विज्ञानों की आधारभूत पद्धतियों में से एक है।[5] आधुनिक समाजशास्त्र द्वारा सामाजिक संस्थाओं एवं सामाजिक जीवन की तुलना को अपने काम का महत्वपूर्ण उपकरण माना जाना तर्कसंगत है। तुलनात्मक पद्धति ऊष्मा-नाभिकीय युद्ध के अध्ययन पर भी लागू की जानी चाहिए। किन्तु तुलना करने का अर्थ सदृश अथवा समान घटना-क्रियाओं को मिलाना मात्र नहीं है। इसमें भिन्न अथवा विरोधी घटना-क्रियाओं—जिनके एक से कारण तथा समान संस्थागत रूप हों—का सन्निधान भी समाहित है। दूसरे शब्दों में, तुलनात्मक पद्धति समानताओं तथा असमानताओं, दोनों ही, के अध्ययन को आवेष्टित करती है।

ऊष्मा-नाभिकीय विश्व युद्ध की किसी भी पिछले युद्ध से तुलना समानताओं के स्थान पर असमानताओं को अधिक उजागर करती है तथा जोर देकर यह कहने का आधार प्रस्तुत करती है कि यदि ऊष्मा-नाभिकीय विश्व युद्ध छिड़ जाता है तो विभिन्न दृष्टियों—सैन्य, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, नैतिक—से यह गुणात्मक रूप से नयी घटना-क्रिया होगी। विश्व युद्ध, अंतिम विश्लेषण में, समूची मानवता के लिए महाविपत्ति होगा।

ऐसा युद्ध भौगोलिक सीमाओं की परवाह नहीं करेगा, किसी भी राज्य को पार्श्व-पंक्तियों में नहीं छोड़ेगा। आर्थिक जीवन के केंद्रों के विनाश का परिणाम यह होगा कि उत्पादन, व्यापार एवं उपभोग की कड़ियां नष्ट हो जाएंगी तथा लाखों लोग विनाशकारी अकाल की चपेट में आ जाएंगे। ऐसा युद्ध सामाजिक जीवन के मौजूदा रूपों को आधारमूलक आघात पहुंचाएगा: पारंपरिक संस्थाएं

---

* लेखक ने वार्ना, बुल्गारिया में आयोजित 'समाजशास्त्र का विश्व सम्मेलन' में "विश्व शांति का नियोजन: स्वप्नदर्शिता अथवा वास्तविकता" पर प्रतिवेदन प्रस्तुत किया था। इस प्रतिवेदन पर हुए विचार विमर्श के परिणामस्वरूप अंतरराष्ट्रीय संबंधों के समाजशास्त्र से संबंधित एक अध्ययन समूह गठित किया गया। प्रोफेसर एपोलोन बर्लास्की इस समूह के अध्यक्ष चुने गये; अमरीकी विद्वान प्रोफेसर मोर्टन काप्लान को उपाध्यक्ष चुना गया तथा बुल्गारियाई विद्वान प्रोफेसर ए० बांकोव को सचिव चुना गया। प्रोफेसर बर्लास्की का प्रतिवेदन यूनेस्को द्वारा प्रकाशित किया गया। (संपादक)

5. आगस्त कॉम्ते: कोर्स द फिलोसोफी पोजीटीव, खंड 4-5, फिलोसोफी सोसिएल, पेरिस 1877, एमिल दुर्खीम, द रूल्स ऑफ सोशियोलॉजिकल मेथड, शिकागो 1938

समाप्त हो जाएगी, राज्य क्रिया विधियों को पक्षाघात ग्रस लेगा, उत्पादन संबंधों तथा व्यक्तियों के बीच के सहज संबंधों का विघटन हो जाएगा।

अमरीकी प्रोफेसर, क्विंसी राइट, ने युद्धों के इतिहास के संबंध में अत्यंत महत्त्वपूर्ण अध्ययन किया है। उनकी कृति, 'ए स्टडी ऑफ वार्स' के ताज़ा संस्करण में 1500 पृष्ठ तथा 77 सारणियां हैं। उनकी गणना के अनुसार 2600 ईसा पूर्व तथा 1962 के कम-से-कम 14500 युद्ध हुए हैं।[6]

एक अन्य अमरीकी समाजशास्त्री, इवान ए. गैटिंग ने भविष्य के युद्धों का चित्र खींचने का प्रयास किया है। उन्होंने विभिन्न ऐतिहासिक कालों में युद्धों की संख्या तथा मृत व्यक्तियों की संख्या की तुलना करते हुए सांख्यिकीय सारणी तैयार की है। आकड़ों से उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि जनसंख्या में वृद्धि तथा सभ्यता के विकास के साथ-साथ मृतकों की संख्या में बेतहाशा बढ़ोतरी होती है। उन्होंने इसे 'मृत्यु के स्फीतिकारी सर्पिल' की संज्ञा दी है। यह वह क्षेत्र है जहां स्फीति की अग्रता है।

1820 तथा 1859 के मध्य हमारे ग्रह की जनसंख्या लगभग 1 अरब थी; इसी अवधि के दौरान 92 युद्धों में लगभग 8 लाख लोग मारे गये—जो जनसंख्या का 0·1% था। 1860 से 1899 के बीच विश्व की जनसंख्या लगभग 1 अरब 30 लाख थी तथा 106 युद्धों में लगभग 46 लाख लोग मारे गये—यह जनसंख्या का 0.4% भाग था। 1900 से 1949 तक विश्व की जनसंख्या लगभग 2 अरब थी तथा इस अवधि में हुए 117 युद्धों में 4 करोड़ 20 लाख लोग—जनसंख्या का 2.1%—मारे गये। बहिर्वेशन के आधार पर, 1950 व 1999 के मध्य विश्व जनसंख्या लगभग 4 अरब होगी तथा इस अवधि में होने वाले लगभग 120 युद्धों में 40 करोड़ 60 लाख लोग—जनसंख्या का 10.1%—मारे जाएंगे। 2000 से 2050 के बीच विश्व जनसंख्या लगभग 10 अरब होगी तथा लगभग 4.5 अरब लोग—जनसंख्या का 45%—मारे जाएंगे जिनमें से 3.6 अरब लोग तो एक ही युद्ध में मारे जाएंगे।

गैटिंग की गणना के अनुसार युद्ध में मरने वालों की संख्या प्रत्येक पीढ़ी में साढ़े चार गुना अधिक हो जाती है।

समाजशास्त्री जनसंख्या विस्फोट को लेकर चिंतित हैं। उनकी गणना के अनुसार वर्तमान शताब्दी के अंत तक पृथ्वी की जनसंख्या दुगुनी—7 अरब—हो जाएगी। 'मृत्यु के सर्पिल' से उन्हें राहत मिलनी चाहिए : सैन्य विस्फोट जनसंख्या विस्फोट को निशाना बनाता है। अब से 80 से लेकर 130 वर्षों के मध्य (गैटिंग की गणनाओं के आलोक में), जनसंख्या का 100% युद्ध में मारा जायेगा।[7]

---

6 देखें रोबिन क्लार्क, द साइंस ऑफ़ वार एंड पीस, न्यूयार्क, 1972, पृ॰ 220-21

7. देखें रोबिन क्लार्क, द साइंस ऑफ़ वार एंड पीस, न्यूयार्क, 1972, पृ॰ 4

करने से संबंधित सकारात्मक उपाय किये जा सकें।*

अंतरराष्ट्रीय नीति, जिसका उद्देश्य ऊष्मा-नाभिकीय युद्ध को रोकना है, इस तरह के युद्ध की प्रकृति के यथार्थपरक मूल्यांकन पर आधारित होती है। अतीत के युद्धों की प्रकृति का अध्ययन सामान्यतया पिछले युद्धों के विश्लेषण पर आधारित होता है। इस स्थिति में पारंपरिक दृष्टिकोण को सार रूप में संशोधित किया जाना आवश्यक है।

तुलनात्मक पद्धति, जैसाकि कॉम्ते तथा दुर्खीम ने रेखांकित किया था, समाज विज्ञानों की आधारभूत पद्धतियों में से एक है।[5] आधुनिक समाजशास्त्र द्वारा सामाजिक संस्थाओं एवं सामाजिक जीवन की तुलना को अपने काम का महत्त्वपूर्ण उपकरण माना जाना तर्कसंगत है। तुलनात्मक पद्धति ऊष्मा-नाभिकीय युद्ध के अध्ययन पर भी लागू की जानी चाहिए। किंतु तुलना करने का अर्थ सदृश अथवा समान घटना-क्रियाओं को मिलाना मात्र नहीं है। इसमें भिन्न अथवा विरोधी घटना-क्रियाओं—जिनके एक से कारण तथा समान संस्थागत रूप हों—का सन्निधान भी समाहित है। दूसरे शब्दों में, तुलनात्मक पद्धति समानताओं तथा असमानताओं, दोनों ही, के अध्ययन को आवेष्टित करती है।

ऊष्मा-नाभिकीय विश्व युद्ध की किसी भी पिछले युद्ध से तुलना समानताओं के स्थान पर असमानताओं को अधिक उजागर करती है तथा जोर देकर यह कहने का आधार प्रस्तुत करती है कि यदि ऊष्मा-नाभिकीय विश्व युद्ध छिड़ जाता है तो विभिन्न दृष्टियों—सैन्य, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, नैतिक—से यह गुणात्मक रूप से नयी घटना-क्रिया होगी। विश्व युद्ध, अंतिम विश्लेषण में, समूची मानवता के लिए महाविपत्ति होगा।

ऐसा युद्ध भौगोलिक सीमाओं की परवाह नहीं करेगा, किसी भी राज्य को पार्श्व-पंक्तियों में नहीं छोड़ेगा। आर्थिक जीवन के केंद्रों के विनाश का परिणाम यह होगा कि उत्पादन, व्यापार एवं उपभोग की कड़ियां नष्ट हो जाएंगी तथा लाखों लोग विनाशकारी अकाल की चपेट में आ जाएंगे। ऐसा युद्ध सामाजिक जीवन के मौजूदा रूपों को आधारमूलक आघात पहुंचाएगा: पारंपरिक संस्थाएं

---

* लेखक ने वार्ना, बुल्गारिया में आयोजित 'समाजशास्त्र का विश्व सम्मेलन' में "विश्व शांति का नियोजन . स्वप्नदर्शिता अथवा वास्तविकता" पर प्रतिवेदन प्रस्तुत किया था। इस प्रतिवेदन पर हुए विचार विमर्श के परिणामस्वरूप अंतरराष्ट्रीय संबंधों के समाजशास्त्र से संबंधित एक अध्ययन समूह गठित किया गया। प्रोफ़ेसर फ्योदोर बर्लात्स्की इस समूह के अध्यक्ष चुने गये; अमरीकी विद्वान प्रोफ़ेसर मोर्टन काप्लान को उपाध्यक्ष चुना गया तथा बुल्गारियाई विद्वान प्रोफ़ेसर ए० यांकोव को सचिव चुना गया। प्रोफ़ेसर बर्लात्स्की का प्रतिवेदन यूनेस्को द्वारा प्रकाशित किया गया। (संपादक)

5. आगस्त काम्ते : कोर्स द फ़िलोसोफ़ी पोज़ीतीव, खंड 4-5, फ़िलोसोफ़ी सोसिएल, पेरिस 1877; एमिल दुरखीम, द रूल्स ऑफ़ सोशियालाजीकल मेथड, ग्लेंको 1958

समाप्त हो जाएगी, राज्य क्रिया विधियों को पक्षाघात ग्रस लेगा, उत्पादन सबधो तथा व्यक्तियों के बीच के सहज सबधों का विघटन हो जाएगा।

अमरीकी प्रोफ़ेसर, क्विंसी राइट, ने युद्धों के इतिहास के संबंध में अत्यंत महत्त्वपूर्ण अध्ययन किया है। उनकी कृति, 'ए स्टडी ऑफ वार्स' के ताजा सस्करण में 1500 पृष्ठ तथा 77 सारणियां हैं। उनकी गणना के अनुसार 2600 ईसा पूर्व तथा 1962 के कम-से-कम 14500 युद्ध हुए हैं।[6]

एक अन्य अमरीकी समाजशास्त्री, इवान ए. गैटिंग ने भविष्य के युद्धों का चित्र खींचने का प्रयास किया है। उन्होंने विभिन्न ऐतिहासिक कालों में युद्धों की संख्या तथा मृत व्यक्तियों की सख्या की तुलना करते हुए सांख्यिकीय सारणी तैयार की है। आंकड़ो से उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि जनसख्या में वृद्धि तथा सभ्यता के विकास के साथ-साथ मृतकों की सख्या में बेतहाशा बढ़ोतरी होती है। उन्होंने इसे 'मृत्यु के स्फीतिकारी सर्पिल' की संज्ञा दी है। यह वह क्षेत्र है जहां स्फीति की अग्रता है।

1820 तथा 1859 के मध्य हमारे ग्रह की जनसख्या लगभग 1 अरब थी, इसी अवधि के दौरान 92 युद्धों में लगभग 8 लाख लोग मारे गये—जो जनसख्या का 0·1% था। 1860 से 1899 के बीच विश्व की जनसख्या लगभग 1 अरब 30 लाख थी तथा 106 युद्धों में लगभग 46 लाख लोग मारे गये—यह जनसख्या का 0.4% भाग था। 1900 से 1949 तक विश्व की जनसख्या लगभग 2 अरब थी तथा इस अवधि में हुए 117 युद्धों में 4 करोड़ 20 लाख लोग—जनसंख्या का 2.1%—मारे गये। बहिर्वेशन के आधार पर, 1950 व 1999 के मध्य विश्व जनसख्या लगभग 4 अरब होगी तथा इस अवधि में होने वाले लगभग 120 युद्धों में 40 करोड़ 60 लाख लोग—जनसख्या का 10.1%—मारे जाएंगे। 2000 से 2050 के बीच विश्व जनसख्या लगभग 10 अरब होगी तथा लगभग 4.5 अरब लोग—जनसख्या का 45%—मारे जाएंगे जिनमें से 3.6 अरब लोग तो एक ही युद्ध में मारे जाएंगे।

गैटिंग की गणना के अनुसार युद्ध में मरने वालों की सख्या प्रत्येक पीढ़ी में साढ़े चार गुना अधिक हो जाती है।

समाजशास्त्री जनसंख्या विस्फोट को लेकर चिंतित हैं। उनकी गणना के अनुसार वर्तमान शताब्दी के अंत तक पृथ्वी की जनसख्या दुगुनी—7 अरब—हो जाएगी। 'मृत्यु के सर्पिल' से उन्हें राहत मिलनी चाहिए : सैन्य विस्फोट जनसख्या विस्फोट को निशाना बनाता है। अब से 80 से लेकर 130 वर्षों के मध्य (गैटिंग की गणनाओं के आलोक में), जनसंख्या का 100% युद्ध में मारा जायेगा।[7]

6 देखें रोबिन क्लार्क, द साइंस ऑफ़ वार एंड पीस, न्यूयार्क, 1972, पृ॰ 220-21

7. देखें रोबिन क्लार्क, द साइंस ऑफ़ वार एंड पीस, न्यूयार्क, 1972, पृ॰ 4

आंकड़ों से ऐसा लगता है कि हमारे सामने कोई विकल्प नहीं है : विनाश अवश्यम्भावी है, जैसी कि ओल्ड टेस्टामेंट में भविष्यवाणी की गयी थी। हम इसे केवल स्वीकार कर सकते हैं तथा हमारे उत्तराधिकारी—अधिक सुदूर नहीं—विपत्ति के दौरान दावनों से स्वयं को राहत पहुंचा सकते हैं, जैसाकि मध्य युग का रिवाज था।

साम्राज्यवादियों—जो स्वयं को यथार्थवादी कहते हैं तथा जिन्हें सामान्यतया 'बाजों' के रूप में जाना जाता है—ने अभी तक इस अभिधारणा को पूर्णतया त्यागा नहीं है।

युद्ध की सैन्य-तकनीकी में आये ये परिवर्तन सार्वभौमिक ऊष्मा-नाभिकीय युद्ध में लाभ की आशा को मूर्खतापूर्ण बना देते हैं। नाभिकीय युग में, युद्ध के राजनीतिक लक्ष्य समुचित सीमा तक परिवर्तित हो रहे हैं। क्लॉजविट्ज की यह उक्ति कि 'बड़े युद्ध बड़ी नीतियों के अनुकूल होते हैं' ऊष्मा-नाभिकीय युद्ध की परिस्थितियों में 'खरी नहीं उतरती', क्योंकि इस तरह के युद्ध के आयाम जितने बड़े होंगे प्रमुख नीति के हितों को यह उतना ही कम पूरा करेगा। विजेता शक्तियां परास्त शक्तियों से कोई खास बेहतर हालत में नहीं होंगी।

युद्ध का उद्देश्य सदा से ही विशिष्ट लाभ—आर्थिक, भू-संबंधी, रणनीति संबंधी, प्रतिष्ठा—अर्जित करना रहा है। पारस्परिक ऊष्मा-नाभिकीय विनाश के माध्यम से इनमें से एक भी लक्ष्य प्राप्त नहीं किया जा सकता। हर जगह आर्थिक क्षमताओं का भयानक विनाश होगा, जले हुए तथा जनसंख्याविहीन भू-क्षेत्र का कोई मूल्य नहीं रहेगा तथा विनाश लीलाओं की स्थिति में प्रतिष्ठा का वही अर्थ होगा जो पाषाण युग में सीधे-साधे खिलौने का हुआ करता था।

नैतिक—वास्तविक मानवीय—दृष्टिकोण से मानवता ने इस प्रकार के परिदृश्य तथा आसार की हिरोशिमा एवं नागासाकी की दुर्घटना के अगले दिन ही भर्त्सना कर दी थी।

युद्ध एवं शांति के क्षेत्र में समकालीन अभिप्रेरण लाक्षणिक है। पहले, प्रथम एवं द्वितीय विश्व युद्धों की शुरुआत के समय भी अभिप्रेरण कतिपय लाभ (भू-भाग संबंधी) प्राप्त करने, अन्य राज्य की सामाजिक-राजनीतिक संरचना को परिवर्तित करने, अथवा यूरोप, एशिया तथा विश्व के अन्य क्षेत्रों में अंतरराष्ट्रीय संबंधों की व्यवस्था को परिवर्तित करने की आकांक्षा से संबंधित हुआ करता था। आक्रामक युद्ध इस प्रकार की विचारणाओं का संघटक तत्त्व हुआ करता था। संभाव्य ऊष्मा-नाभिकीय युद्ध का मौजूदा सामाजिक-मनोवैज्ञानिक वातावरण तथा युद्ध के परिणामों की समग्र विश्वयुद्ध के अभिप्रेरण से लाभ के तत्त्व को बहिष्कृत कर देते हैं। छद्म-क्रांतिकारियों, जो यह मानते हैं कि ऊष्मा-नाभिकीय युद्ध—चाहे यह आधी मानवता को नष्ट ही कर दे—विश्व सभ्यता के लिए बर-

दान सिद्ध होगा, के गैरजिम्मेदाराना वक्तव्यों की सभी सम्मानित व्यक्ति भर्त्सना करते हैं।

परिणामस्वरूप, अतीत में ऊष्मा-नाभिकीय युद्ध का कोई तुल्य रूप नहीं दिखता—न तो संभावित परिणामों की दृष्टि से और न इसकी सैन्य-तकनीकी प्रकृति की दृष्टि से और न इसके सामाजिक-राजनीतिक पक्ष की दृष्टि से। यहां तुलनात्मक पद्धति समानताओं की तुलना में असमानताओं को ही अधिक उद्घाटित करती है।

युद्ध के उद्भव तथा अंतरराष्ट्रीय संबंधों की संरचना का विश्लेषण अक्सर पूर्व-नाभिकीय रणनीति के स्तर से ऊपर नहीं उठ पाता। इसके कारण स्वयं राजनीतिक यथार्थ, जहां अंतरराष्ट्रीय राजनीति की पारंपरिक, पूर्व-नाभिकीय क्रियाविधियां अभी भी प्रभावी एवं सक्रिय हैं, में ही निहित हैं। नाभिकीय अस्त्रों का उत्पादन अत्यंत खतरनाक है। इस प्रक्रिया के दो आयाम हैं : एक ओर तो नाभिकीय अस्त्रों की जखीरेबाजी व उनकी विनाशकारी शक्ति में वृद्धि जारी है तथा दूसरी ओर है इन अस्त्रों का व्यापक वितरण। इस दूसरी प्रवृत्ति में नाभिकीय अस्त्रों की बहुप्रजता पर रोक संबंधी संधि—विश्व के अधिकांश राज्यों ने जिसका पालन किया है—के कारण काफी सीमा तक कमी हुई है। तथापि खतरा बना हुआ है तथा विश्व के किसी भाग में तनाव में, वृद्धि कुछ राज्यों को देर-सबेर आणविक क्लब का सदस्य बनने को प्रेरित कर सकती है ऐसे अस्त्रों को प्राप्त करने के लिए प्रौद्योगिकी आसानी से उपलब्ध है।

विदेशी विशेषज्ञों की गणनाओं के अनुसार, निकट भविष्य में छोटे-छोटे देश, जिनकी आर्थिक क्षमता नगण्य है, सैकड़ों स्वचालित रेडियो धर्मी अस्त्रों के निर्माण में समर्थ होंगे। ब्रिटिश सरकार के सलाहकार सर सौली जकरमन लिखते हैं। "नाभिकीय रणनीति के बारे में कुछ अमरीकी लेखक जो कुछ भी कह रहे हैं (जब वे 'नाभिकीय विनियम, जिसमें एक आक्रमण में ही अकेले संयुक्त राज्य के 10 करोड़ लोग जान गंवाएंगे, किसी भी अनुभव से असंबद्ध शब्दों का प्रयोग करके यह ध्वनि देना चाहते हैं कि बचे हुए लोग एक महान तथा जीवित सभ्यता को पुनर्गठित कर पाएंगे) मेरी समझने की सामर्थ्य के पूरी तरह से परे है।"[8]

संयुक्त राष्ट्र की विशेष समिति ने संयुक्त राष्ट्र महासचिव को नाभिकीय युद्ध के परिणामों के बारे में जो प्रतिवेदन प्रस्तुत किया उसमें कहा गया कि : "····नाभिकीय अस्त्रागारों, जो पहले से ही विद्यमान हैं, में भारी मेगाटन अस्त्र—जिनकी विनाशकारी शक्ति बारूद की खोज के बाद तमाम युद्धों में काम में लिये गये विस्फोटक अस्त्रों की शक्ति से कहीं अधिक है—जमा हैं। इन अस्त्रों का

---

8 रोबिन क्लार्क : द साइंस ऑफ वार एंड पीस, न्यूयार्क, लंदन, 1972, पृ॰ 18-19

अन्य देश भी दौड़ में शामिल हो गये। इस विनाशकारी प्रक्रिया को प्रारंभ में ही अवरुद्ध कर पाने का मौका खो दिया गया।

ऊष्मा-नाभिकीय हथियारों की दौड़ प्रवर्तित करने के बाद संयुक्त राज्य अमरीका ने निवारण सिद्धांत की दुहाई देकर विश्व जनमत की दृष्टि में अपना उद्धार करने का प्रयास किया है। सीधा-सा तर्क है—बदतर ही बेहतर है—विनाशकारी अस्त्रों का ढेर जितना बढ़ेगा, उनका उपयोग न किये जाने की गारंटी भी उतनी ही पुख्ता होगी। पेन्टागन के प्रवक्ताओं ने तब से लेकर अब तक इस सामरिक सिद्धांत को संवर्धित करने में कोई क़सर नहीं छोड़ी है। 'नाभिकीय रक्षा कवच', 'नाभिकीय छतरी', 'आतंक का संतुलन', 'नाभिकीय श्रेष्ठता' जैसे कई मुहावरे गढ़े गये हैं जिनका सार तत्व एक ही है: कि हथियारों की दौड़ से डरने की क़तई जरूरत नहीं है क्योंकि यह ऊष्मा-नाभिकीय युद्ध के खिलाफ़ गारंटी है।

क्या यह विचार नया है? तो क्या यह नाभिकीय रणनीति के लिए विशिष्ट ऐसा मौलिक आविष्कार है कि जिसका अर्थ सामान्य तर्क-बुद्धि से नहीं समझा जा सकता? क़तई नहीं। जब बारूद की खोज हुई तो लोगों ने भविष्यवाणी कर दी कि इसके व्यापक प्रयोग मात्र से युद्ध समाप्त हो जायगा। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में एल्फ्रेड नोबेल ने डाइनेमाइट की खोज करने के पश्चात् यह घोषणा की: "मेरे कारखाने संभवतया आपके सम्मेलनों से पहले ही युद्ध को समाप्त कर देंगे; जिस दिन दो सेनाएं एक सैकंड के भीतर एक दूसरी का सफ़ाया कर देंगी, समस्त सभ्य राष्ट्र भय से कांप उठेंगे तथा निश्चित रूप से अपनी फ़ौजों को भंग कर देंगे।"[12] इस घोषणा के तत्काल बाद फ्रांस व प्रशिया के बीच युद्ध का प्रारंभ हुआ तथा पचास वर्ष बाद प्रथम विश्व युद्ध शुरू हो गया।

अनुभव ने यह अच्छी तरह से सिद्ध कर दिया है कि शांति को हथियारों की दौड़ का अपरिहार्य परिणाम मानना निरा भोलापन है। युद्ध की सैन्य-तकनीकी प्रकृति तथा सैन्य संघर्ष व स्वयं हथियारों की दौड़ के आर्थिक एवं सामाजिक कारणों—जिनकी जड़ें काफ़ी गहरी हैं—के संयोजन को अवश्य देखा जाना चाहिए; इजारेदार इन कारकों का चरम-लाभ कमाने के लिए दोहन करते हैं। तकनीकी अर्थ में युद्ध मूर्खतापूर्ण बेशक मान लिया जाय किंतु प्रश्न यह है कि क्या हथियारों के राजा तथा साम्राज्यवादी विजेता वास्तव में इसका ध्यान रखते हैं। साम्राज्यवाद के खिलाफ़ संघर्ष करना आवश्यक है तथा युद्ध का विरोध करने के लिए ईमानदार शक्तियों की आवश्यकता है ताकि शांति की संभावना को वास्तविकता में रूपांतरित किया जा सके। इस मामले में मार्क्सवाद के निष्कर्ष, हमारे

12. रोबिन क्लार्क: द साइंस ऑफ़ वार एंड पीस पृ० 7

समय में पूरी तरह सही साबित हुए हैं।

'नाभिकीय निरोध' के तथाकथित समर्थक सबसे बड़ा तर्क यह दे सकते हैं कि द्वितीय विश्वयुद्ध को समाप्त हुए चौथाई सदी बीत चुकी है तथा अत्यंत तीव्र अंतरराष्ट्रीय संघर्षों, स्थायी तनाव, स्थानीय युद्धों तथा अंतरराष्ट्रीय संकटों के बावजूद तृतीय विश्व युद्ध टाला जा सका है।

मौजूदा हालात की व्याख्या के लिए निम्नलिखित प्राक्कल्पनाएं प्रस्तुत की जा सकती हैं—

1. नया विश्व युद्ध इसलिए नहीं छिड़ पाया है कि पारस्परिक विनाश तथा अपूरणीय क्षति पहुंचाने की चेतावनियों व धमकियों ने ऐसे युद्ध को मूर्खतापूर्ण एवं निरर्थक बना दिया है।
2. द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात आकार ग्रहण करने वाली द्वि-ध्रुवीय व्यवस्था ने विश्व युद्ध की रोकथाम की है. इसके परिणामस्वरूप शक्ति-संतुलन कायम हुआ तथा विश्व संघर्ष में एक पक्ष की दूसरे पक्ष पर विजय संदिग्ध (अथवा असंभव) बन गयी।
3. विश्व युद्ध की रोकथाम इसलिए संभव हो पाई है कि उष्मा-नाभिकीय युद्ध छेड़ने में दिलचस्पी रखने वाली शक्तियों की तुलना में शांतिकामी शक्तियां अधिक मजबूत हैं।

ये सभी कारक महत्वपूर्ण रहे हैं, किंतु तीसरा कारक निर्णायक रहा है।

बहुत पहले एंगेल्स ने कहा था कि ऐसा समय आ सकता है जबकि सैन्य प्रौद्योगिकी की उन्नति युद्ध को निरर्थक बना दे। लेनिन ने भी इसी तरह की टिप्पणी की थी।

यदि हथियारों (नाभिकीय, तथा उसके बाद और अधिक विनाशकारी जैवीय एवं रासायनिक अस्त्रों) की दौड़ अगले 50 से 100 वर्षों तक मौजूदा गति से भी जारी रहे तो मानव जाति के लिए स्वयं को नष्ट करना तथा धरती को आग के गोले में बदलना तकनीकी दृष्टि से संभव होगा। परिणामस्वरूप जो वातावरण निर्मित होगा वह जीवन को कायम रखने में असमर्थ होगा। विशेषज्ञ आज भी यह कहते हैं कि प्रौद्योगिक सामर्थ्य की दृष्टि से 'कयामत मशीन'—ऐसा यंत्र जो पृथ्वी पर समस्त जीवन को नष्ट कर सके—का निर्माण करना संभव है। इस तरह की विचारधारा मात्र से सार्वभौमिक शांति की ओर अग्रसर नहीं हुआ जा सकता। आर्थिक एवं राजनीतिक संकट की स्थितियां—जिनकी संभावना को कोई भी गंभीर भविष्यवाणियां नकार नहीं सकतीं—कतिपय विश्व की दुस्साहसिक सरकारों द्वारा सत्ता प्राप्ति, स्थानीय संघर्षों का तीव्रीकरण तथा अंततः, अप्रत्याशित घटना—ये सभी उष्मा-नाभिकीय युद्ध को जन्म दे सकती हैं।

अंतरराष्ट्रीय संबंधों में द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात कायम द्वि-ध्रुवीय

व्यवस्था ने भी व्यापक शांति बनाये रखने में विशेष भूमिका का निर्वाह किया है। एक ओर सोवियत संघ एवं अन्य समाजवादी देशों तथा दूसरी ओर संयुक्त राज्य एवं अन्य पूंजीवादी देशों के मध्य शक्ति (सैन्य, आर्थिक, राजनीतिक) संतुलन—ऐसा संतुलन जो द्वितीय विश्व युद्ध के तत्काल बाद कायम हो गया था—ने भी एक हद तक संतुलन को बढ़ावा दिया है। हालांकि यह संतुलन इसलिए ही संभव हो पाया कि समाजवादी देशों ने विश्व युद्ध रोकने, हथियारों की दौड़ को सीमित करने व नाभिकीय अस्त्रों पर प्रतिबंध लगाने के संघर्ष में प्रमुख शक्ति के रूप में काम किया।

यही कारण है कि हम तीसरे—सार्वभौमिक एवं सर्वग्राही—कारक को, युयुत्सु शक्तियों की तुलना में शांतिकामी शक्तियों की तेजस्विता को निर्णायक महत्त्व का मानते हैं। यहां हम द्वि-ध्रुवीय व्यवस्था के भीतर सैन्य-राजनीतिक संतुलन की ओर ही नहीं बल्कि पश्चिमी संधियों के संदर्भ में सक्रिय राजनीतिक कारकों की ओर भी संकेत कर रहे हैं। श्रमिक वर्ग तथा प्रगतिशील बुद्धिजीवी वर्ग—दोनों ही ऊष्मा-नाभिकीय युद्ध का मुख्य रूप से विरोध करते हैं—का बढ़ता हुआ प्रभाव, अंतरराष्ट्रीय जनमत का प्रभाव, नाटो समूह के फ्रांस जैसे सदस्यों का रुख, संयुक्त राज्य के सत्ता केंद्रों में अतिवादियों के खिलाफ़ शांतिकामी शक्तियों का संघर्ष—इन सबने मिलकर ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी है जिसने व्यवहार में, युयुत्सु राजनीतिज्ञों द्वारा निरोधक अथवा आक्रामक नाभिकीय युद्ध संबंधी निर्णय लिये जाने को असंभव बना दिया है। व्यापक शांति के पक्ष में यह तथ्य भी रहा है कि एशिया व अफ्रीका के नये विकासशील राज्यों ने सक्रिय रहकर उपनिवेशवाद तथा आक्रमण का मुकाबला किया है। इससे विश्व स्तर पर शक्ति वितरण में अर्थवान परिवर्तन हुए हैं तथा यह साम्राज्यवादी नीतियों के प्रतिरोध का महत्त्वपूर्ण कारक बन गया है।

तो भी, युयुत्सु शक्तियों पर शांतिकामी शक्तियों का वर्चस्व, ऊष्मा-नाभिकीय युद्ध की निरर्थकता का अहसास, द्वि-ध्रुवीय व्यवस्था के भीतर संतुलन, अथवा ये सभी कारक एक साथ मिलकर हमें यह विश्वास करने की अनुमति नहीं देते कि ऊष्मा-नाभिकीय युद्ध से स्वतः ही छुटकारा मिल जायेगा। सैन्य प्रौद्योगिकी की निरंतर उन्नति सैन्य शक्ति के संतुलन में व्यतिक्रम उत्पन्न कर देती है; एशिया एवं यूरोप में तीसरी अथवा चौथी शक्ति (जिसका विशिष्ट दृष्टिकोण तथा मूल्य प्रणाली हो) स्थापित करने के प्रयासों से मौजूदा अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था कमज़ोर होती है। इसके परिणामों की कल्पना संभावित वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक तथा सामाजिक विस्फोटों व तबाहियों (आर्थिक एवं राजनीतिक संकटों, निरंकुश तानाशाहियों की स्थापना, सैन्य-औद्योगिक समूह के बढ़ते हुए प्रभाव, ...) के संदर्भ में की जा सकती है। इस सबसे अंतर्राष्ट्रीय अराजकता की ओर

उन्मुख प्रवृत्ति में वृद्धि तथा सैन्य खतरे के गहराने की सम्भावना बलवती होती है। इसीलिए इस समस्या के केंद्रीय समाधानों की खोज की आवश्यकता अनुभव की जा रही है।

सामाजिक संरचनाओं तथा अंत:संबंधों व संघर्ष की व्यवस्था के विकास द्वारा निर्धारित विश्व में राजनीति का अध्येता स्वयं को विवेक एवं सहज बुद्धि मात्र में आस्था रखने की अनुमति नहीं दे सकता।

अंतरराष्ट्रीय संबंधों में शांति की आवश्यकता है, ऐसी शांति की जो, अंतिम विश्लेषण में, अल्प अथवा दीर्घ काल में अंतरराष्ट्रीय संबंधों के चरित्र में आधार-भूत परिवर्तन ला दे। अंतरराष्ट्रीय संबंधों में संरचनात्मक परिवर्तनों के पूर्वानुमानों का उद्देश्य ऐसे परिवर्तनों को नियोजित एवं सूत्रबद्ध करना होना चाहिए।

हमारी दृष्टि में, हथियारों की दौड़ को रोकने तथा उष्मा-नाभिकीय युद्ध के खतरे को समाप्त करने की संभावनाओं के विश्लेषण के लिए निम्नलिखित घटकों का अध्ययन आवश्यक है मौजूदा स्थिति, दीर्घकालिक पूर्वानुमान शांति को नियोजित करने की पूर्वापेक्षाएं, शांति की योजना (प्रस्थान बिंदु, परिवर्तन बिंदु, अवस्थाएं, पार्टियां, अंतरराष्ट्रीय कार्रवाइयां, विकल्प, आदि)।

हथियारों की दौड़ में दोनों सामाजिक व्यवस्थाएं—पूंजीवादी एवं समाजवादी—सम्मिलित हैं। इन व्यवस्थाओं के भीतर हथियारों की दौड़ भिन्न कारकों का परिणाम है अतः इसे समाप्त करने के तरीके भी भिन्न ही हो सकते हैं।

चर्चिल के वक्तव्य के पंद्रह वर्ष बाद पश्चिमी दुनिया के एक अन्य प्रमुख व्यक्ति, संयुक्त राज्य अमरीका के राष्ट्रपति, जॉन केनेडी ने टिप्पणी की थी 'आज इस ग्रह के प्रत्येक निवासी को उस दिन का ध्यान करना चाहिए जबकि यह ग्रह निवास योग्य नहीं रह पायेगा। प्रत्येक पुरुष, महिला एवं बच्चा कच्चे धागे से लटकी डेमोक्लीज की नाभिकीय तलवार के नीचे रह रहा है तथा किसी भी क्षण दुर्घटना, अशुद्ध गणना अथवा पागलपन के कारण कट जाने में समर्थ है। इससे पहले कि युद्ध के अस्त्र हमें नष्ट करें, उन्हें नष्ट कर दिया जाना चाहिए··· अब यह लक्ष्य सपना मात्र नहीं है, यह जीवन अथवा मृत्यु का व्यावहारिक प्रश्न है। हथियारों की असीमित दौड़ में निहित जोखिमों की तुलना में निरस्त्रीकरण में निहित जोखिम नगण्य हैं।'[13]

युद्ध एवं शांति के बहुत से अध्येता इस राय के समर्थक हैं, तथा उनमें से कुछ ने तो इसे गणितीय आधार भी दिया है।

केनेडी के वक्तव्य से पहले ही, राष्ट्रपति आइज़न हावर ने सैन्य-औद्योगिक

---

13 लेट अस काय ए टू म ट्रेटर, 25 सितंबर 1981 को संयुक्त राष्ट्र में, साधारण सभा के 16वें महाधिवेशन में राष्ट्रपति केनेडी का भाषण। द डिपार्टमेंट आफ स्टेट बुलेटिन, अक्तूबर 16, 1961 पृ॰ 620

समूह के बारे में महत्त्वपूर्ण भविष्यवाणी की थी: "मुझे जिस प्रकार इस एकनी भारत उद्योग के निर्माण के लिए विवश किया गया है···इसलिए हमें इसके गंभीर निहितार्थों को समझने में चूक नहीं करनी चाहिए।···

"सरकारी परिषदों में सैन्य-औद्योगिक समूह द्वारा अर्जित प्रभाव—वांछित अथवा अवांछित—अर्जित करने के खिलाफ हमें सतर्क रहना चाहिए। अनुचित सत्ता के विनाशकारी उत्थान की सम्भावना अभी भी विद्यमान है तथा भविष्य में भी बनी रहेगी।"[12]

प्रोफेसर जॉन कैनथ गालब्रेथ ने सैन्य औद्योगिक नौकरशाही गठजोड़ के खिलाफ और भी गंभीर आरोप लगाया है: "इन तीनों शक्तियों का हमारी अर्थव्यवस्था के इतने हिस्से पर तथा हमारे लगभग सम्पूर्ण भविष्य पर कब्जा कैसे कायम हो गया? उनकी मान्यता है कि यह उन सिद्धांतों की पराजय है जिन पर अमरीकी समाज की नींव रखी गयी थी। व्यवस्था में एक भी बिंदु ऐसा नहीं है जहां मतदाता निर्णय—जो लिये जा चुके हैं—पर नियंत्रण लागू कर सकें। वास्तव में नीति एवं प्रविधि निर्धारित करने का काम निर्वाचित नेता नहीं बल्कि सरकारी व औद्योगिक नेता कर रहे हैं। यह समस्या का केन्द्र है तथा अन्य देशों को स्थिति का जायजा लेते समय इसका ध्यान रखा जाना चाहिए।"[13]

सेनेटर बैरी गोल्डवाटर ने, सम्भवतया अनचाहे ही, सैन्य-औद्योगिक समूह के सामाजिक गुण की ओर संकेत किया था। 15 अप्रैल, 1969 को उन्होंने अमरीकी सेनेट को बताया: *"सैन्य-औद्योगिक समूह की भर्त्सना करने के बजाय मैं यह कहूंगा कि हमें इसके लिए ईश्वर के प्रति कृतज्ञ होना चाहिए। यह समूह हमें रक्षा कवच प्रदान करता है। यह वह बुलबुला है जिसके नीचे हमारा राष्ट्र पनपता तथा समृद्ध होता है···यही नहीं, मेरी मान्यता है कि यह पड़ताल करना उपयुक्त* ही होगा कि इसे जो नाम दिया गया है वह व्यापक है अथवा नहीं। वैज्ञानिकों की बड़ी संख्या—जिन्होंने नाभिकीय अस्त्रों तथा वर्तमान रक्षा उद्योगों के अन्य उत्पादनों को विकसित एवं निर्मित करने के लिए आवश्यक मौलिक खोज में पूरा योगदान दिया—पर भी जरा गौर कीजिए। इस बात को ध्यान में रखकर, क्या हमें इसे वैज्ञानिक-सैन्य-औद्योगिक समूह के नाम से नहीं पुकारना चाहिए।"[16]

1936 में, स्वान जे विश्वविद्यालय में गौरव ग्रंथों के प्रोफेसर, बैंजामिन फ़ैरिंगटन, ने यूनानी विज्ञान पर महत्त्वपूर्ण पुस्तक प्रकाशित की थी। 1969 में जब वह दूसरे संस्करण को संशोधित कर रहे थे तो वह नया निष्कर्ष लिखने को

14 द डिपार्टमेंट ऑफ स्टेट बुलेटिन, फरवरी 6, 1981, पृ॰ 170

15 देखें, रोबिन क्लार्क: द साइन्स ऑफ वार एंड पीस, पृ॰ 170

16 वही, पृ॰ 173

विवश हुए जिसमे उन्होंने आधुनिक विज्ञान तथा यूनानी अभिप्रेरणाओं का अंतर चित्रित किया।

"तीन सौ वर्ष की, अथवा इससे थोड़ी अधिक, अवधि में दुनिया का चेहरा ही बदल दिया गया है। वैज्ञानिक की छवि भी बदल गयी है। शोध, जो अब लाखों गुना बढ़ गयी है, मुख्यतया युद्ध से संबंधित है, अतः गोपनीय बन गयी है। देश के भीतर उन्हें प्रकाशित करना देशद्रोह है, बाहर से उन तक पहुंचने की कोशिश जासूसी है। अधिकांश औद्योगिक शोध इसी बंधन से पीड़ित है। दरिद्रता पर विजय प्राप्त नहीं की जा सकी है। दुनिया के खाते-पीते लोगों व भूखे लोगों के बीच अंतराल बढ़ रहा है। समुद्र में पनडुब्बियों का तांता लगा हुआ है तथा हवाई जहाज हवा की ओमाई करने में लगे हुए हैं तथा ये रोयल सोसाइटी के निर्माण के समय पृथ्वी के निवासियों की संख्या से अधिक लोगों को मिनटों में नष्ट करने में समर्थ हैं। हमने जहां से यात्रा प्रारंभ की थी वापस वहीं पहुंच गये हैं।"[17]

यह कैसे हो गया? इसका एक कारण तो, निस्संदेह रूप से, बहुत से वैज्ञानिकों—जो यह मानकर चले कि तकनीकी प्रगति मानवता को युद्ध से बचायेगी—का आत्म-विश्वास है। इस मिथक ने अतीत के लगभग सभी महान आविष्कारकों को विमूढ़ बना दिया था।

संयुक्त राज्य के लिए निरस्त्रीकरण की समस्या इस तथ्य ने भी असाधारण रूप से जटिल बना दी है, जैसा गालब्रेथ ने सिद्ध किया है, कि संयुक्त राज्य की औद्योगिक संरचना ने स्वयं को हथियारों की दौड़ के साथ घनिष्ठ रूप से जोड़ लिया है। समूची माग को स्थिरता प्रदान करने के लिए अमरीकी औद्योगिक व्यवस्था को प्रमुख सार्वजनिक क्षेत्र की सत्ता की आवश्यकता है। अतः आर्थिक नियमन विशाल अस्त्र उद्योग के माध्यम से अर्जित किया जा सका है। किंतु इसके लिए विश्व स्थिति का ऐसा दर्शन उपलब्ध होना चाहिए जो कम-से-कम सैन्य व्ययों के औचित्य का आभास दे सके। गालब्रेथ ने सही ही कहा है कि 'शीत युद्ध' की धारणा का उपयोग हथियारों की दौड़ के सर्पिल को उचित ठहराने के लिए किया जाता है; इस विवेकपूर्ण तर्क को महत्वपूर्ण नहीं माना जाता कि इससे किसी समय समस्त जीवन का अंत हो सकता है। इस संबंध में गालब्रेथ इस बात को रेखांकित करते हैं कि संयुक्त राज्य में ऐसे लोग हैं जो यह मानते हैं कि सैन्य व्यय उच्च स्तर की आर्थिक क्रियाशीलता को बनाये रखते हैं तथा ऐसे व्ययों में कटौती अमरीकी आर्थिक व्यवस्था के लिए अनर्थकारी होगी।[18]

सोवियत संघ के सामने ऐसी कोई समस्या नहीं है। यहां सैन्य व्यय अर्थ-

17. देखें, रोबिन क्लार्क : द साइंस आफ वार एंड पीस, पृ० 184
18 जॉन कैनेथ गालब्रेथ : द न्यू इंडस्ट्रियल स्टेट, लंदन, 1971, पृ० 327-31

अवस्था पर बोझा है, आर्थिक उत्प्रेरक नहीं। आर्थिक नियोजन, माग एवं उत्पादन के नियोजन सहित, आर्थिक संबंधों—जो उत्पादन के उपकरणों तथा साधनों के सामाजिक स्वामित्व पर आधारित हैं—में अंगीभूत होता है। सैन्य उत्पादन असैनिक क्षेत्र के विनियोग एवं लाभ के एक हिस्से का उपभोग करके असैनिक क्षेत्रों के विकास को बाधित ही करता है।

जाहिर है, हथियारों की दौड़ की समाप्ति से समाजवादी संरचनाओं के लिए किसी भी प्रकार की आर्थिक समस्याएं खड़ी नहीं हो सकती। यह राजनीतिक समस्या है जो अंतरराष्ट्रीय क्षेत्र में संबंधों द्वारा निर्धारित होती है। यह अकारण नहीं है सोवियत संघ ने हथियारों की दौड़ को समाप्त करने तथा व्यापक शांति को सुदृढ़ करने संबंधी अभियान चलाने में पहल की है। यह नीति का ही नहीं अपितु समाजवादी देशों की समूची सामाजिक-आर्थिक संरचना का प्रकार्य है।

पूर्वानुमान का लक्ष्य भविष्य का चित्र प्राप्त करना ही नहीं बल्कि वर्तमान के निर्णयों को प्रभावित करना भी होता है। अंतरराष्ट्रीय संबंधों में पूर्वानुमान के दो प्रकार हैं: साधारण, जिसमें मौजूदा प्रवृत्तियों से बहिर्वेशन निहित होता है, तथा सश्लिष्ट, जो आधारभूत प्रौद्योगिक तथा सामाजिक-राजनीतिक परिवर्तनों का ध्यान रखता है। काह्न तथा वाइनर की पुस्तक 'द इयर 2000' की गंभीर पद्धतिमूलक कमी (जिसे स्वयं लेखक स्वीकार करते हैं) यह है कि वे साधारण पूर्वानुमान 'कोई आश्चर्य नहीं', तथा समकालीन निर्णयों के विकास के संभाव्य परिणामों पर आधारित कुछ पूर्वानुमान 'लगभग कोई आश्चर्य नहीं' ही प्रस्तुत करते हैं।

यह कमी अंतरराष्ट्रीय संबंधों की समस्याओं के संदर्भ में खासकर खटकती है। मौजूदा प्रवृत्तियों (हथियारों की दौड़, शक्ति संतुलन आदि) से बहिर्वेशन जो चित्र उपलब्ध कराता है वह एक तो अत्यंत अमूर्त होता है तथा दूसरे, अंतरराष्ट्रीय संबंधों की मौजूदा व्यवस्था के समस्त नकारात्मक लक्षणों को अतिवृद्ध रूप में भविष्य में पुनर्सृजित कर देता है।

पिछले कुछ दशक विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी तथा सामाजिक संबंधों के क्षेत्र में आकस्मिक क्रांतियों से समृद्ध रहे हैं तथा इन परिवर्तनों का अंतरराष्ट्रीय संबंधों की व्यवस्था तथा अंतरराष्ट्रीय राजनीति पर व्यापक प्रभाव पड़ा है। क्रांतियां सैन्य प्रौद्योगिकी में भी हुई हैं—एटमबम, तथा फिर हाइड्रोजन बम का निर्माण, अल्प व दीर्घ दूरी तक मार करने वाले प्रक्षेपास्त्रों, एम आई आर वी तथा ए बी एम प्रणालियों का निर्माण—सामाजिक संबंधों के क्षेत्र में भी—पूर्वी यूरोप में क्रांतियों की सफलता, अंतरराष्ट्रीय समाजवादी व्यवस्था का निर्माण, चीनी क्रांति, औपनिवेशिक साम्राज्यों का विघटन, क्यूबाई क्रांति की सफलता आदि—तथा अंतरराष्ट्रीय संबंधों के क्षेत्र में भी—नाटो का गठन, वारसा संधि की स्थापना,

वातावरण व बाह्य अतरिक्ष मे तथा पानी के नीचे नाभिकीय अस्त्रो के परीक्षण पर रोक से संबंधित संधि, नाटो सैन्य सगठन से फ्रांस का अलग होना, नाभिकीय अस्त्रों की बढोतरी पर रोक लगाने से संबधित संधि, साझा बाजार का गठन, पारस्परिक आर्थिक सहायता परिषद का गठन, आदि। इसमे कोई संदेह नही कि वैज्ञानिक, प्रौद्योगिक एव सामाजिक विकास की तीव्र गति इस शताब्दी के अंतिम बीस वर्षों मे नये आश्चर्यों को जन्म देगी।

इन पर्यवेक्षणों पर विचार करके हम निकट भविष्य की अत्यंत सामान्य रूप-रेखा की कल्पना करने का प्रयास करेंगे।

हम 'उन्नत समाज' की अवधारणा का उपयोग देशो के प्रमुख समूहो को वर्णित करने के लिए प्रारंभिक प्रतिरूप के रूप मे करेंगे। कतिपय सामान्य वैज्ञानिक एव प्रौद्योगिक प्रक्रियाओं को स्वीकृत मानकर, हम विकास के दो विरोधी रास्तों का पूर्वानुमान लगाते हैं : सरकारी—इजारेदार पूंजीवाद तथा उन्नत समाजवाद के रास्तो का। निकट भविष्य की यह अत्यंत यथार्थपरक संभावना है। अंतरराष्ट्रीय संबधो की नयी व्यवस्था के गठन तथा ऊष्मा नाभिकीय युद्ध को रोकने की संभावनाओ के विश्लेषण मे इसका उपयोग हम आधार-बिंदु के रूप मे करेंगे।

किसी भी स्वीकृत ऐतिहासिक अवस्था मे पूंजीवाद के विकास के स्तर की लाक्षणिक विशिष्टताओं को वर्णित करने की अत्यंत महत्त्वपूर्ण कसौटी औद्योगीकरण का स्तर है। स्वप्नदर्शी समाजवादियों (सेंट साइमन) राजनीतिक अर्थ-व्यवस्था के अंग्रेज़ी संप्रदाय के प्रतिनिधियों (एडम स्मिथ) द्वारा प्रवर्तित औद्योगिक विकास की धारणा को कार्ल मार्क्स ने 'पूंजी' में गहन एवं व्यापक रूप से विकसित किया। संपत्ति के निजी रूपों मे स्थान पर सामाजिक रूपो के उभरने की अनि-वार्यता के पक्ष मे आधारभूत तर्क, वस्तुतः यही है।

समाजवाद एवं साम्यवाद, मार्क्स तथा लेनिन ने जिस रूप मे इन्हें देखा था, वह समाज है जो औद्योगिक विकास तथा सामाजिक श्रम की उत्पादकता के उच्चतम स्तर को सुनिश्चित करता है। सोवियत संघ व अन्य समाजवादी देशों मे समाजवाद निर्मित करने की प्रक्रिया का प्रमुख घटक औद्योगीकरण है। औद्योगिक, वैज्ञानिक एव प्रौद्योगिक विकास का काम समाज के अधिक उन्नत स्तर मे संक्रमण के लिए नीव प्रस्तुत करना है। इसी से साम्यवाद के भौतिक तथा तकनीकी आधार की अवधारणा जुड़ी हुई है, औद्योगिक विकास की कसौटी इसके लिए भी प्रस्थान बिंदु है।

मार्क्सवादी चिंतक औद्योगिक तथा औद्योगिकोत्तर समाज के सिद्धांत की आलोचना इसलिए नहीं करते कि इसका आधारभूत मानदंड औद्योगीकरण का स्तर है। इस सिद्धांत की अन्य कारणों से आलोचना होती है। पहला कारण तो

यह [illegible] कि यह [illegible] इस तथ्य को [illegible] करता है कि [illegible] औद्योगिक [illegible] के भिन्न [illegible] की तरह दूसरे के [illegible] रूप से भिन्न होती हैं, दूसरे, यह विशुद्ध [illegible] विशेषताओं का विकास होता है क्योंकि यह विभिन्न प्रकार के समाजों के [illegible] के आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं [illegible] कारकों के बारे में [illegible] करता है। तीसरा, यह [illegible] — [illegible] के [illegible] — का विश्लेषण [illegible] के रूप में उपयोग करता है, यद्यपि [illegible] है कि न केवल समाजवादी विकास ही [illegible] है बल्कि औद्योगिक पूंजीवादी समाज के अन्य रूप (जापान, प० जर्मनी) भी उपलब्ध हैं, अथवा यह औद्योगीकरण के [illegible] को एक मात्र [illegible] के रूप में प्रस्तुत करता है तथा इस परिप्रेक्ष्य में ही समकालीन विश्व का [illegible] पर आधारित [illegible] करता है, यद्यपि यथार्थ में सामाजिक-राजनीतिक [illegible] महत्त्वपूर्ण नहीं होते (जापान में औद्योगीकरण के [illegible] तथा [illegible] — [illegible] का [illegible] था)।

यदि गालब्रेथ तथा डेनियल बेल द्वारा प्रस्तावित कई विचारों से असहमत होते हुए भी हम यह मानते हैं कि उनकी यह अभियुक्ति—कि पूंजीवादी देशों की अर्थव्यवस्था में नियोजन तथा सार्वजनिक स्वामित्व के रूपों के तत्व समाविष्ट होने चाहिए—सकारात्मक विकास को सम्मिलित करती है। 'बौद्धिक प्रौद्योगिकी' संबंधी उनका विचार—जिसका अर्थ है प्रबंध में विज्ञान की बढ़ी हुई भूमिका, राजनीतिक नेताओं के निर्णायक चयन को प्रोत्साहित करने वाले शोध निगमों व विश्वविद्यालय केन्द्रों की स्थापना—भी विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है। हालांकि उनकी यह मान्यता कि निजी सम्पत्ति का 'क्षय' हो रहा है तथा औद्योगिक समाज में व्यापारी वर्ग की सत्ता में कमी हो रही है तथा इसे विद्वान प्राप्त कर रहे हैं, न तो सही सिद्ध हुई है और न की जा सकती है। हालांकि, डेनियल बैल स्वयं मानते हैं कि 'औद्योगिकोत्तर समाज' में निर्णय करने का अधिकार, पहले की तरह ही, राजनीतिक विशिष्ट वर्ग के हाथ में ही रहेगा तथा प्रविद्वियों की कल्पना समाज के नये शासकों के रूप में करना भोलापन समझा जायगा।

यह तथ्य भी सकारात्मक है कि गालब्रेथ व बैल हथियारों की दौड़ को अमरीकी औद्योगिक संरचना की क्रियाशीलता के लिए अनिवार्यता नहीं मानते। गालब्रेथ विकल्प, जो मापक्रम तथा प्रौद्योगिक जटिलता की दृष्टि से हथियारों की दौड़ के सदृश हो—की मांग करते हैं। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के व्यापक क्षेत्रों में संघ के साथ आर्थिक स्पर्द्धा, विशेषकर शांतिपूर्ण, वैज्ञानिक उद्देश्यों के

अंतरिक्ष-प्रतिद्वंद्विता, ऐसा विकल्प हो सकती है।[19] हम सहमत हैं कि संयुक्त
में हथियारों की दौड़ का विकल्प—ऐसा विकल्प जो विस्तृत सार्वजनिक
लियो, सार्वजनिक क्षेत्र तथा माग एवं आपूर्ति के नियोजन के घटकों को अपने
कार में रखेगा—निर्मित करने का अवसर विद्यमान है।

ह भी माना जा सकता है कि संयुक्त राज्य व अन्य पश्चिमी देशों ने अभी तक
उत्पादन के साथ स्वय को इस हद तक नहीं बांधा है कि आर्थिक प्रक्रिया को
त करने के लिए अधिक प्रभावी विकल्प असभव बन गये हों। यदि
राज्य व अन्य पश्चिमी देशों की आर्थिक व्यवस्था को उत्प्रेरित करने के
विकल्प खोज लिया जाता है (जापान का उदाहरण यह सिद्ध करता है कि
र पाना सभव है), तो नियोजित व्यापक शांति प्रौद्योगिक एवं आर्थिक
के पक्ष में अत्यन अनुकूल परिस्थिति का निर्माण कर पाने में सफल होगी।
तुलन पारस्परिक विनाश के भय पर आधारित शांति को जन्म देता है।
करण की परिस्थितियों से उत्पन्न होने वाली व्यापक शांति आर्थिक तथा
क प्रौद्योगिक विकास में सहज माननीय रुचि पर आधारित होगी।

शांति एवं सहयोग के लिए नियोजन

-समाजवादी साहित्य ने सार्वभौमिक शांति स्थापित करने के संबंध में दो
सिद्धांत प्रस्तुत किये थे। पहला सिद्धांत विश्व सरकार अथवा अंतरराष्ट्रीय
—जो सार्वभौमिक शांति बनाये रखेगा—निर्मित करने के संबंध में विचार
संबंधित था; जबकि दूसरे के अंतर्गत शक्ति संतुलन विकसित करने तथा
व्यवस्था में अथवा अंतरराष्ट्रीय विधिक प्रतिमानों में उसे सस्थाबद्ध
रूपरेखा निहित थी।

त प्रकार्यों वाली विश्व सरकार की जड़ें दूर अतीत में जाती हैं: प्लेटो
नुअल काट की रचना 'टुवार्ड इटर्नल पीस' में इस विचार की स्पष्टता
किया गया है। कई स्वप्नदर्शी समाजवादियों ने इस मत का समर्थन
राष्ट्रों के बीच स्थायी एवं मैत्री संबंध स्थापित करने का एक मात्र
श्व सरकार का गठन था।

व्यवस्थाओं के बीच तीव्र समकालीन संघर्ष के संदर्भ में यह विचार
रिक एवं प्रतिक्रियावादी है। यही नहीं, हम समूची दुनिया में राज्य-
ससे भी अधिक विभेदीकरण के साक्षी हैं—दर्जनों नये राज्यों का उदय
औपनिवेशिक एवं अर्द्ध-औपनिवेशिक साम्राज्यों का विघटन। इस
स्रोत राष्ट्रीय स्वतंत्रता तथा आ [illegible] या।

द गालब्रेथ . द न्यू इडस्ट्रियल स्टेट, न [illegible]

निश्चित रूप से दृढ़ बनी रहेगी। राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिए संघर्ष 20वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध की सबसे शानदार घटना-क्रियाओं में से एक बन चुका है।

यह भी नहीं भूलना चाहिए कि विश्व सरकार की धारणा का, व्यवहार में, उपयोग विश्व शासन—तानाशाही—के झंडे के रूप में किया जा सकता है। विश्व साम्राज्य तथा संपूर्ण विश्व व्यापी हिंसा के सिद्धांतों में बहुधा विश्व सरकार की धारणा को सम्मिलित कर लिया जाता है—हिटलर के फ़ासिज़्म ने तो साफ़ तौर पर यह प्रदर्शित कर दिया था।

वर्तमान विश्व में, जहां असाधारण आर्थिक, राजनीतिक एवं सामाजिक विभेदीकरण कायम है, इसका अर्थ होगा समतलन का ऐसा रूप जिसमें 100 में से 99 बार सामाजिक जीवन के रूपों के आदेश बाहर से आयेंगे, उनके औचित्य के पीछे जो भी नेक इरादे हों। विरोधी सिद्धांतों के लिए विश्व-व्यापी संघर्ष एवं स्पर्द्धा, इसकी जाहिरा लागत बावजूद, का यह बड़ा लाभ तो है ही कि यह विभिन्न सामाजिक संरचनाओं, राष्ट्रीय व्यवस्थाओं तथा समूची मानवता के विकास को उत्प्रेरित करता है।

यह कल्पना की जा सकती है कि ऊष्मा-नाभिकीय युद्ध के परिणाम स्वरूप ही विश्व सरकार वास्तविकता बन सकती है। यदि हम यह मान लें कि कोई एक बड़ी शक्ति स्वयं को युद्ध से पृथक कर पाए, प्रधान ऊष्मा-नाभिकीय आक्रमणों से दूर रह सके तथा अन्य की तुलना में काफ़ी कम क्षतिग्रस्त हो, तो ही यह विश्व साम्राज्य निर्मित करने के कमोवेश प्रभावी प्रयास कर सकती है। इस प्रस्ताव की नितांत अवास्तविकता के बावजूद, कुछ सिद्धांतकार इसका पोषण करते हैं। मात्र यह तथ्य ही निकट भविष्य में विश्व सरकार की धारणा को प्रचारित करने के प्रयासों के ख़िलाफ़ समुचित चेतावनी माना जाना चाहिए।

संयुक्त राष्ट्र का और अधिक विकास व्यापक शांति को मजबूत बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर सकता है। संयुक्त राष्ट्र के विकास की योजनाओं व प्रस्तावों पर ध्यान दिया जाना चाहिए क्योंकि मात्र यही ऐसी अंतर-राष्ट्रीय संस्था है जो कि शांति एवं प्रगति की ओर उन्मुख संयुक्त कार्रवाइयां संचालित करने में समर्थ है।

यहां यह रेखांकित करना भी आवश्यक है कि ऊष्मा-नाभिकीय युद्ध की धमकी यह अपेक्षा रखती है कि निर्णय मिनटों अथवा सैकड़ों में लिये जाएं। इन निर्णयों में शामिल हो सकने वाले राज्यों अथवा अधिकारियों की संख्या एकदम सीमित है। इस कारण से, संयुक्त राष्ट्र निकट भविष्य में ही व्यापक शांति को नियोजित करने का महत्त्वपूर्ण उपकरण बन सकता है, यदि राज्यों—कम से कम उन राज्यों के बीच जो अधिकांश प्रक्षेपास्त्रों के स्वामी हैं—के बीच प्रारंभिक सहमति हो जाए तो।

शक्ति संतुलन पर आधारित अंतरराष्ट्रीय संबंधों के विकास के साथ ये कई स्पष्ट हैं। इनमें से एक गुट-व्यवस्था के सब तरह और अधिक विकास के पक्ष में है जब तक कि विश्व के सभी देश इसमें सम्मिलित न हो जाएं। कुछ की राय में यह संभव है कि उत्तरी अमरीका, यूरोप, लैटिन अमरीका, अफ्रीका, अरब, भारत, चीन के गुट बन जाएं। उनकी उचित कल्पना: स्वतंत्र अंतरराष्ट्रीय गुटों के बीच प्रशासन एवं व्यापक विवादों के कारण तथा अंतर्गुटीय संबंधों पर लागू होने वाली अनुशासनात्मक प्रक्रियाओं व नियमों तक को शिथिल कर देती है। यह माना जा रहा है कि इन गुटों को संतुलित मात्रा में सदस्यता तथा सदस्य राज्यों की संयुक्त सैन्य शक्ति को सामूहिक करने की सामर्थ्य प्रदान करने से इन देशों की सुरक्षा सुनिश्चित हो जाएगी तथा सब शक्ति संतुलन का अंत होगा। इस व्यवस्था के पक्षधर यह मानते हैं कि राष्ट्रीय राज्यों की व्यवस्था की तुलना में गुट व्यवस्था साम्य की स्थिति में रहेगी तथा व्यापक शांति कायम करने की अधिक ठोस गारंटी प्रस्तुत करेगी।

भविष्य का यह चित्र शक्ति संतुलन तथा हथियारों की होड़ पर आधारित अंतरराष्ट्रीय संबंधों की व्यवस्था की सभी असंगतियों को उद्घाटित करता है। वर्तमान अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था को भविष्य में तार्किक रूप से बहिर्वेशित करने पर जो प्रवृत्ति सामने आती है वह क्षेत्रीय-राजनीतिक संधियों एवं समूहों की स्थापना की ओर उन्मुख है। लेकिन इसके भी पहले ही—कार्रवाइयों की दृष्टि से समुचित स्वायत्तता से संपन्न गुटों तथा संधियों के परिप्रेक्ष्य में—ऊष्मा-नाभिकीय व अन्य प्रकार के अस्त्रों की होड़ को तीव्र कर दिया है। द्वि-ध्रुवीय व्यवस्था के स्थान पर बहु-ध्रुवीय व्यवस्था कायम करने से उन कारकों का प्रभाव बढ़ेगा ही जो कि विश्व ऊष्मा-नाभिकीय युद्ध की ओर अग्रसर हैं, पारंपरिक युद्धों—जो ऊष्मा-नाभिकीय युद्धों में परिवर्तित होने की ओर प्रवृत्त होते हैं—का प्रभावी बंधीकरण निरंकुश, अविवेकी तथा बेलगाम कारकों के प्रभाव को बढ़ाएगा ही तथा हथियारों की होड़ समाप्त करने के मार्ग में दुर्लंघ्य अवरोध उपस्थित करेगा।

शक्ति संतुलन की व्यवस्था का ऐसा रचनात्मक विकल्प—जो सार्वभौमिक शांति को आगे बढ़ा सके—क्या है? जो विकल्प हम प्रस्तावित करते हैं वह है नियोजित व्यापक शांति—ऐसी स्थिति जिसमें अंतरराष्ट्रीय शांति को मजबूत करने तथा ऊष्मा-नाभिकीय विश्वयुद्ध को रोकने की सोद्देश्य कार्रवाई की जा सके। इस तरह की अंतरराष्ट्रीय स्थिति निष्क्रिय व्यापक शांति से सक्रिय व्यापक शांति (जो नियोजित शांति में विकसित होती है) के संक्रमण से पूर्व निर्मित होनी चाहिए।

अपने अस्तित्व के प्रारंभिक दिनों से ही, सोवियत संघ यह प्रस्तावित करता रहा कि सभी राज्य न्यायपूर्ण शांति के पक्ष में निर्णय लें। सोवियत सरकार ने

निश्चित रूप से दृढ़ बनी रहेगी। राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष 20वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध की सबसे शानदार घटना-क्रियाओं में से एक बन चुका है।

यह भी नहीं भूलना चाहिए कि विश्व सरकार की धारणा का, व्यवहार में, उपयोग विश्व शासन—तानाशाही—के झंडे के रूप में किया जा सकता है। विश्व साम्राज्य तथा संपूर्ण विश्व व्यापी हिंसा के सिद्धांतों में बहुधा विश्व सरकार की धारणा को सम्मिलित कर लिया जाता है—हिटलर के फ़ासिज्म ने तो साफ़ तौर पर यह प्रदर्शित कर दिया था।

वर्तमान विश्व में, जहां असाधारण आर्थिक, राजनीतिक एवं सामाजिक विभेदीकरण क़ायम है, इसका अर्थ होगा संमतलन का ऐसा रूप जिसमें 100 में से 99 बार सामाजिक जीवन के रूपों के आदेश बाहर से आयेंगे, उनके औचित्य के पीछे जो भी नेक इरादे हों। विरोधी सिद्धांतों के लिए विश्व-व्यापी संघर्ष एवं स्पर्द्धा, इसकी ज़ाहिरा लागत बावजूद, का यह बड़ा लाभ तो है ही कि यह विभिन्न सामाजिक संरचनाओं, राष्ट्रीय व्यवस्थाओं तथा समूची मानवता के विकास को उत्प्रेरित करता है।

यह कल्पना की जा सकती है कि ऊष्मा-नाभिकीय युद्ध के परिणाम स्वरूप ही विश्व सरकार वास्तविकता बन सकती है। यदि हम यह मान लें कि कोई एक बड़ी शक्ति स्वयं को युद्ध से पृथक कर पाए, प्रधान ऊष्मा-नाभिकीय आक्रमणों से दूर रह सके तथा अन्य की तुलना में काफ़ी कम क्षतिग्रस्त हो, तो ही यह विश्व साम्राज्य निर्मित करने के कमोबेश प्रभावी प्रयास कर सकती है। इस प्रस्ताव की नितांत अवास्तविकता के बावजूद, कुछ सिद्धांतकार इसका पोषण करते हैं। मात्र यह तथ्य ही निकट भविष्य में विश्व सरकार की धारणा को प्रचारित करने के प्रयासों के ख़िलाफ़ समुचित चेतावनी माना जाना चाहिए।

संयुक्त राष्ट्र का और अधिक विकास व्यापक शांति को मज़बूत बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर सकता है। संयुक्त राष्ट्र के विकास की योजनाओं व प्रस्तावों पर ध्यान दिया जाना चाहिए क्योंकि मात्र यही ऐसी अंतर-राष्ट्रीय संस्था है जो कि शांति एवं प्रगति की ओर उन्मुख संयुक्त कार्रवाइयां संचालित करने में समर्थ है।

यहां यह रेखांकित करना भी आवश्यक है कि ऊष्मा-नाभिकीय युद्ध की धमकी यह अपेक्षा रखती है कि निर्णय मिनटों अथवा सैकड़ों में लिये जाएं। इन निर्णयों में शामिल हो सकने वाले राज्यों अथवा अधिकारियों की संख्या एकदम सीमित है। इस कारण से, संयुक्त राष्ट्र निकट भविष्य में ही व्यापक शांति को नियोजित करने का महत्वपूर्ण उपकरण बन सकता है, यदि राज्यों—कम से कम उन राज्यों के बीच जो अधिकांश प्रक्षेपास्त्रों के स्वामी हैं—के बीच प्रारंभिक सहमति हो जाए तो।

शक्ति संतुलन तथा आधुनिक अंतरराष्ट्रीय संबंधों के विकास के संबंध में कई सन्देह हैं। इसके से एक युद्ध-व्यवस्था के सब तरह और अधिक विनाश के पक्ष में है जब तक कि विश्व के सभी देश इसमें सम्मिलित न हो जाएं। कुछ भी हो यह संभव है कि इसकी अमरीका यूरोप, लैटिन अमरीका अफ्रीका, अरब, भारत, चीन के गुट बन जाएं। इनकी उपस्थित बनाएं रखना अंतरराष्ट्रीय गुटों के बीच प्रत्यक्ष एवं व्यापक विवादों के रूपों तथा अन्तः गुटीय मसलों पर साधु होते सभी अनुकूलतमक प्रवृत्तियों व विवाद तब का सिद्धित कर देती है। यह माना जा रहा है कि इन गुटों को सदृढ़ित माना में मजबूती तथा संतुलन राज्यों की संयुक्त सैन्य शक्ति को स्थापित करने की सामर्थ्य प्रदान करने से इन देशों की सुरक्षा सुनिश्चित हो जायेगी तथा नये शक्ति संतुलन का जन्म होगा। इस व्यवस्था के समर्थक यह मानते हैं कि राष्ट्रीय राज्यों की व्यवस्था की तुलना में गुट व्यवस्था शांति की स्थिति में रहेगी तथा व्यापक शांति कायम करने की अधिक ठोस गारंटी प्रस्तुत करेगी।

भविष्य का यह चित्र शक्ति संतुलन तथा हथियारों की होड़ पर आधारित अंतरराष्ट्रीय संबंधों की व्यवस्था की सभी आलोचनाओं को उद्घाटित करता है। वर्तमान अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था को भविष्य में तार्किक रूप से बहिर्वेशित करने पर जो प्रवृत्ति सामने आती है वह सैनिक-राजनीतिक शक्तियों एवं समूहों की स्थापना की ओर उन्मुख है। लेकिन इसने तो पहले ही—कार्रवाइयों की दृष्टि से समर्थित स्वाधीनता से संलग्न गुटों तथा संधियों के परिप्रेक्ष्य में—ऊष्मा-नाभिकीय व अन्य प्रकार के अस्त्रों की होड़ को तीव्र कर दिया है। द्वि-ध्रुवीय व्यवस्था के स्थान पर बहु-ध्रुवीय व्यवस्था कायम करने से उन कारकों का प्रभाव बढ़ेगा ही जो कि विश्व ऊष्मा-नाभिकीय युद्ध की ओर अग्रसर हैं; पारम्परिक युद्धों—जो ऊष्मा-नाभिकीय युद्धों में परिवर्तित होने की ओर प्रवृत्त होते हैं—का प्रभावी संघीकरण निरंकुश, अविवेकी तथा वैमनस्यीक कारकों के प्रभाव को बढ़ायेगा ही तथा हथियारों की दौड़ समाप्त करने के मार्ग में दुर्लंघ्य अवरोध उपस्थित करेगा।

शक्ति संतुलन की व्यवस्था का ऐसा रचनात्मक विकल्प—जो सार्वभौमिक शांति को आगे बढ़ा सके—क्या है? जो विकल्प हम प्रस्तावित करते हैं वह है नियोजित व्यापक शांति—ऐसी स्थिति जिसमें अंतरराष्ट्रीय शांति को मजबूत करने तथा ऊष्मा-नाभिकीय विश्वयुद्ध को रोकने की सोद्देश्य कार्रवाई की जा सके। इस तरह की अंतरराष्ट्रीय स्थिति निष्क्रिय व्यापक शांति से सक्रिय व्यापक शांति (जो नियोजित शांति में विकसित होती है) के संक्रमण से पूर्व निर्मित होनी चाहिए।

अपने अस्तित्व के प्रारंभिक दिनों से ही, सोवियत संघ यह प्रस्तावित करता रहा कि सभी राज्य न्यायपूर्ण शांति के पक्ष में निर्णय लें। सोवियत सरकार ने

अंतरराष्ट्रीय तनाव को कम करने तथा निरस्त्रीकरण की सिद्धि के लिए बार
शांतिपूर्ण योजनाएं तथा कार्यक्रम प्रस्तुत किये हैं। सोवियत संघ द्वारा उठाये
पहल के कदम सुविख्यात हैं: 1917 की शांति संबंधी आज्ञप्ति; 1922
जेनोआ सम्मेलन में सोवियत शिष्टमंडल द्वारा प्रस्तुत निरस्त्रीकरण सं
प्रस्ताव; 1932-34 के जेनेआ सम्मेलन में अस्त्रों को परिसीमित करने
संबंधित सोवियत योजना; संयुक्त राष्ट्र महासभा के समक्ष प्रस्तुत व्यापक
पूर्ण निरस्त्रीकरण विषयक घोषणा; *1960 के दशक के दौरान की गयी संधि*
एवं समझौते—वातावरण में, बाह्य अंतरिक्ष में व पानी के अंदर नाभिकीय अस
के परीक्षण पर रोक से संबंधित तथा नाभिकीय अस्त्रों व जनसंहार के अन्य अस
के—समुद्र तल, महासागर तल तथा भूमि की सतह के नीचे अवस्थान के
निषेध व नाभिकीय अस्त्रों के परिसीमन आदि से संबंधित। सोवियत कम्युनि
पार्टी के 24वें अधिवेशन में शांति तथा अंतरराष्ट्रीय सुरक्षा को मज़बूत करने
लिए सक्रिय संघर्ष के कार्यक्रम की रूपरेखा तैयार की गयी।

मानवता को हाल में ही प्रमाण मिला है कि शांति एवं अंतरराष्ट्रीय सहयो
को नियोजित करना एकदम संभव है। अंतरराष्ट्रीय क्षेत्र में परिवर्तन यूं ही नह
हो रहे हैं बल्कि योजना के तहत हो रहे हैं। अंतरराष्ट्रीय वातावरण को सामान्
बनाने का मात्र यही सुविचारित, यथार्थपरक तथा दीर्घकालिक उपाय समूह है
यह उभरती हुई स्थिति के प्रति स्वतः स्फूर्त प्रतिक्रिया मात्र नहीं है। समाजवादी
देशों की बढ़ती हुई एकता, वियतनाम में साम्राज्यवादी आक्रमण की समाप्ति,
मध्य पूर्व में राजनीतिक निपटारा हासिल करने का निश्चय, पश्चिमी जर्मनी के
साथ संबंधों में सकारात्मक मोड़, जर्मन जनवादी गणराज्य की राजनीतिक स्थिति
का सुदृढ़ होना, यूरोप में सुरक्षा बनाये रखना, सोवियत संघ तथा संयुक्त राज्य के
सुधरे हुए संबंध, जापान के साथ सहयोग का विकास, सामरिक अस्त्रों का परि-
सीमन तथा हथियारों की दौड़ की समाप्ति की बढ़ती संभावनाएं—*ये सब एक ही*
लड़ी, एक ही योजना, की कड़ियां हैं तथा शांति कार्यक्रम में प्रतिबिंबित एवं अभि-
व्यक्त हुई हैं।

जब हम नियोजन की बात कर रहे हैं हमारे मस्तिष्क में आर्थिक नियोजन—
जहां नियोजित लक्ष्य बाध्यकारी होते हैं—से अलग कोई चीज़ है। सामाजिक
प्रक्रिया को नियोजित करना, और वह भी अंतरराष्ट्रीय संबंधों के क्षेत्र में जहां
विरोधी प्रवृत्तियों के बीच शक्तियों का अन्योन्याश्रय तथा संघर्ष ही सर्वोच्च है,
आर्थिक नियोजन का पर्याय नहीं है।

ज़ाहिर है, पूर्वानुमान की चर्चा करना ही काफी नहीं है। शांति कार्यक्रम का
उद्देश्य अंतरराष्ट्रीय संबंधों की व्यवस्था को प्रभावित करना है। पूर्वानुमान पूर्व-
दृश्यमान संभावना है, तथा विज्ञान कथा-साहित्य कल्पनीय संभावनाओं को

चित्रित करता है, जबकि योजना का अर्थ है भविष्य को प्रभावित करना।

भविष्य कई विकल्पों में उपस्थित होता है। कई दृष्टियों से यह वर्तमान के हाथों में होता है। पूर्वानुमान संभावनाओं का समूह उपलब्ध कराता है तथा योजना सर्वश्रेष्ठ विकल्प का चयन करती है, संसाधनों का आकलन करती है तथा इस विकल्प को क्रियान्वित करने के लिए शक्तियों को लामबंद करती है। परिणामस्वरूप, यह वर्तमान पीढ़ी ही है जो यह निर्णय करेगी कि सामाजिक प्रवृत्तियों में से कौन सी वास्तविकता बनेगी—कि राष्ट्रों के बीच सहयोग तथा सार्वभौमिक शांति रहेगी अथवा नहीं, पृथ्वी पर मानवता जीवित बचेगी अथवा नहीं।

शांति के नियोजन का प्रमुख लक्ष्य ऊष्मा-नाभिकीय युद्ध को रोकना है। बीसवीं शताब्दी के अंतिम तिहाई में—जब तक विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी अपने वैभव तथा खतरों को पूरी तरह प्रदर्शित कर रहे हैं—यह लक्ष्य अंतरराष्ट्रीय राजनीति के अग्रभाग में बना रहेगा।

लेकिन यह ही एक मात्र लक्ष्य नहीं है। शांति के नियोजन का उद्देश्य समस्त राष्ट्रों तथा राष्ट्रों के बीच सहयोग भी होता है, जो कि व्यापक शांति वाले राज्य के लिए सहज सामान्य गुण है।

ऊष्मा-नाभिकीय युद्ध छिड़ने का अर्थ ही यह है कि सारी दुनिया के सभी लोग इससे प्रभावित होंगे, उनकी जो भी सामाजिक संरचना हो तथा चाहे वे युद्ध में सम्मिलित होना चाहते हों अथवा नहीं। अतः स्पष्ट है कि अपने शांति कार्यक्रम में ऊष्मा-नाभिकीय युद्ध रोकने को सम्मिलित करके, सोवियत संघ न केवल अपनी जनता के बल्कि समूची मानवता के हितों की रक्षा कर रहा है।

मई 1972 में मास्को में हुए सोवियत-अमरीकी समझौते व्यापक शांति को मजबूत करने की दृष्टि से बेहद महत्वपूर्ण हैं। दो बड़ी शक्तियों द्वारा हस्ताक्षरित दस्तावेज न केवल दो सम्मिलित पक्षों के लिए महत्वपूर्ण हैं बल्कि इसलिए भी महत्वपूर्ण हैं कि संपूर्ण अंतरराष्ट्रीय स्थिति के सामान्यीकरण को संभव बनाते हैं। 'सोवियत संघ व संयुक्त राज्य अमरीका के पारस्परिक संबंधों के आधारभूत सिद्धांत' में वर्णित युद्ध रोकने का प्रत्येक प्रयास करने का दोनों पक्षों का स्वीकृत दायित्व अंतरराष्ट्रीय राजनीति को अर्थवान योगदान है। प्रक्षेपास्त्रों (ए बी एम प्रणालियों) के परिसीमन से संबंधित संधि तथा सामरिक महत्व के आक्रमण अस्त्रों के परिसीमन के संबंध में अचूक उपायों के बारे में अंतरिम समझौता हथियारों की दौड़ से पलटने की शुरुआत है।

सोवियत संघ तथा संयुक्त राज्य अमरीका के बीच नाभिकीय युद्ध का निवारण संबंधी समझौता निस्संदेह रूप से इस दिशा में बड़ा कदम है क्योंकि यह अंतरराष्ट्रीय सुरक्षा के व्यावहारिक पूर्वोपायों की व्यवस्था के विकास की पीठिका तैयार करता है, जिसका चरम लक्ष्य नाभिकीय युद्ध की समाप्ति है। 'सामरिक

महत्त्व के शस्त्रों के और अधिक परिसीमन संबंधी वार्ता के आधारभूत सिद्धांत, जिन पर वाशिंगटन में हस्ताक्षर किये गये, की भूमिका भी महत्त्वपूर्ण होगी।

इतिहास के लिए विशिष्ट तथ्यों की तुलना में प्रवृत्तियां अधिक अर्थवान होती हैं। ट्रेन की गति ही नहीं, उसकी दिशा भी महत्त्वपूर्ण होती है। अंतरराष्ट्रीय घटनाओं के वास्तु पथ (विस्तार एवं दिशा) में हमारी आंखों के सामने ही बड़ा मोड़ आ रहा है। अनुकूल विकास होने पर यह, अंतिम विश्लेषण में, राज्यों के पारस्परिक संबंधों की समूची व्यवस्था में आधारभूत परिवर्तन ला सकता है।

विश्व का अपरिहार्य विचारधारात्मक तथा राजनीतिक संघर्ष व आर्थिक व्यवस्थाओं के बीच आर्थिक स्पर्द्धा अंतरराष्ट्रीय सैन्य-राजनीतिक संघर्षों में परिवर्तित नहीं होनी चाहिए, इसका समाधान गैर-सैन्य साधनों के माध्यम से किया जाना चाहिए। राजनीति के कुछ अध्येता अंतरराष्ट्रीय संघर्षों के स्तर के इस प्रकार के परिसीमन को 'कैम्यूनबद्ध' करने की संज्ञा देते हैं, जब किन्हीं खास प्रकार के संघर्ष समाप्त हो जाते हैं तथा समझौतों व प्रस्तावों को क्रियान्वित करने की संगठित नियमविधि कायम हो जाती है यही उनकी दृष्टि में 'कैम्यून' है। वे मानकर चलते हैं कि कैम्यूनबद्ध पक्ष समुदाय गठित करके तथा सारे राजनीतिक संगठन में सम्मिलित होकर कुछ हद तक अपनी आत्म-निर्भरता को गंवा देते हैं। उनकी राय में इस प्रकार का समुदाय मतैक्य के लिए आवश्यक सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियां निर्मित करता है तथा यह मतैक्य संघर्ष को सीमित करने का आधार प्रस्तुत करता है। वे, इस प्रकार, संघर्ष को संस्थाबद्ध करने तथा उसकी प्रकृति को रूपांतरित करने पर भरोसा करते हैं, जिसके राजनीतिक-सांगठनिक तथा समाजमूलक (समुदाय-निर्माण)—दोनों ही पक्ष हैं।"*

हमारे दृष्टिकोण के तहत हम निकट भविष्य (पूर्व सूचक लक्षणों के विश्लेषण के आधार पर) की चर्चा को सार्वभौमिक युद्ध को रोकने (न कि विश्व समुदाय निर्मित करने की दृष्टि से) की दृष्टि से अंतरराष्ट्रीय संघर्षों के समाधान की विधियों व रूपों को परिवर्तित करने तक ही सीमित रख सकते हैं। मौजूदा सामाजिक संरचनाओं के वस्तुगत, विरोधी, विकासमान रूपों के बने रहने पर, दूसरे लक्ष्य (विश्व समुदाय) से असली मुद्दा गड्डमड्ड ही हो सकता है। मोर्टन ए. कप्लान, न्यूनीकृत अंतरराष्ट्रीय तनाव की व्यवस्था निर्मित करने से संबंधित समस्या का विश्लेषण करते हुए लिखते हैं कि इस प्रकार की व्यवस्था "यह मानकर चलती है कि सोवियत तथा अमरीकी दोनों ही व्यवस्थाओं में परिवर्तनों के क्रम में अनुकूल प्रक्षेपण घटित हो रहे हैं। सोवियत समाज अधिक खुला हुआ तथा कम आक्रामक बन रहा है तथा संयुक्त राज्य अंतरराष्ट्रीय यथास्थिति-

---

* अमिताई एतज़ियोनी : दि एक्टिव सोसायटी, न्यूयार्क, 1968, पृ० 581

वाद की वकालत मे कमी ला रहा है''' मोटे तौर पर हम सोवियत व्यवस्था मे सुधार तथा चीनी व्यवस्था के सम्मीकरण को मानकर चलते है'''[21]

इस वक्तव्य की आलोचना दो दृष्टियो से की जा सकती है : पहला, समाजवादी तथा पूजीवादी देशो की स्थिति के संबंध मे इसके ग़ैर-वस्तुगत दृष्टिकोण के कारण, तथा दूसरा, क्योकि यह तनावो को कम करने की शर्त के रूप मे दो विरोधी अंतरराष्ट्रीय व्यवस्थाओ के ढांचों के भीतर सरचनात्मक तथा सामाजिक राजनीतिक परिवर्तनों को आवश्यक मानता है। दरअसल, अतरराष्ट्रीय तनाव कम करने तथा व्यापक शांति को मज़बूत करने के तरीकों की तलाश मौजूदा तथा पूर्वदृश्य भविष्य की संघर्षमय एव विभेदीकृत अवस्था के यथार्थ परक मूल्यांकन से उत्पन्न होनी चाहिए। विद्वानों एवं राजनेताओं द्वारा तैयार तथा, कम से कम, प्रमुख शक्तियों व अतरराष्ट्रीय सगठनो की कार्रवाइयों के आधार के रूप में प्रयुक्त व्यापक शांति की योजना वास्तविक विकल्प का रूप धारण कर सकती है। यह व्यापक शांति बनाये रखने के पक्ष मे, अंतरराष्ट्रीय संबधों की व्यवस्था मे मोड़ लाने तथा फिर आधारभूत परिवर्तन लाने के लिए प्रस्थान बिंदु प्रस्तुत कर सकती है।

सैद्धांतिक रूप से विचार करें तो इस प्रकार की योजना के क्रियान्वयन की सभावना व क्षमता समकालीन अंतरराष्ट्रीय विकास तथा वैज्ञानिक एव प्रौद्योगिक विकास की द्वंद्व प्रक्रिया में निहित है। मानव समाज, विरोधी सिद्धांतो की एकता के रूप मे देखे जाने पर, विरोध के कुछ तत्वों (विचारधारात्मक, सामाजिक-राजनीतिक) को बनाये रखकर भी अन्य मामलो मे—व्यापक शांति को मज़बूत करने के सघर्ष मे तथा आर्थिक, प्रौद्योगिक एव सामाजिक प्रगति के लिए—एकता एव सहयोग का स्थल बन सकता है। अतर्विरोध एवं संघर्ष, सैद्धांतिक रूप से, सहयोग एवं एकता के अविरुद्ध हैं; इनमे असगति नही होती। ऐतिहासिक दृष्टि से ऐसी सभावना के अच्छे आधार उपलब्ध है। फ़ासिज़्म के खिलाफ़ युद्ध मे भिन्न सामाजिक सरचनाओ के देशों के बीच सहयोग तथा सधि इसका प्रमुख उदाहरण है। यदि पारपरिक युद्ध मे इस प्रकार का सहयोग वास्तविकता बन सकता था तो यह मानने का और भी अधिक कारण है कि ऊष्मा-नाभिकीय युद्ध के खतरे के संदर्भ मे भी यह वास्तविकता बन सकता है।

इस सबध में यहां 'सोवियत सघ तथा सयुक्त राज्य अमरीका के बीच पारस्परिक संबंधों के आधारभूत सिद्धांत' मे व्यक्त वैदेशिक नीति के लक्ष्यों सबंधी वक्तव्य के असाधारण महत्त्व की ओर संकेत करना उपयुक्त ही होगा। दोनों शक्तियां युद्ध की आशंका को समाप्त करने तथा तनाव मे कमी करने व सार्व-

21. एच. ए. कप्लान : मैक्रोपालिटिक्स, पृ॰ 328-29

भौमिक सुरक्षा एवं अंतरराष्ट्रीय सहयोग को मजबूत करने के प्रयासों में कोई भी कसर न छोड़ने का संकल्प व्यक्त करती हैं। सोवियत संघ तथा संयुक्त राज्य दोनों ही इस बात विश्वास से आगे बढ़ते हैं कि नाभिकीय युग में शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व पर आधारित पारस्परिक संबंध संचालन का कोई विकल्प नहीं है। दोनों ही देश ऐसी स्थितियां—जो उनके संबंधों को खतरनाक रूप से कटु बनाने में समर्थ हैं—के विकास को रोकने को सर्वाधिक महत्त्व देते हैं। अब वे सैन्य मुठभेड़ों से बचने तथा नाभिकीय युद्ध को रोकने का हर संभव प्रयास करेंगे। वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में देखें तो, व्यापक शांति के नियोजन के लिए हथियारों की दौड़ में परिवर्तन विधि, निरस्त्रीकरण तथा इसकी अवस्थाओं, गैर-नाभिकीय शक्तियों की सुरक्षा के उपाय, निरस्त्रीकरण कार्यक्रम में सार्वभौमिक भागीदारी, हथियारों की दौड़ जारी रखने वाले देशों के खिलाफ प्रतिबंध, व्यापक शांति कायम करने में संबंधित विभिन्न शक्तियों के अंतरराष्ट्रीय उत्तरदायित्वों में विभेद, शांति योजना क्रियान्वयन के उपायों से संबंधित समझौता (द्वि-पक्षीय, बहु-पक्षीय अथवा सार्वभौमिक), शक्ति-संतुलन की धारणा के विकल्पों, तथा आखिर में, ऊष्मा-नाभिकीय युद्ध विहीन विश्व में अंतरराष्ट्रीय संबंधों की नयी व्यवस्था के स्वरूप आदि की धारणाओं का विश्लेषण अत्यंत आवश्यक है।

स्पष्ट है कि व्यापक शांतियोजना के क्रियान्वयन की प्रमुख कड़ी हथियारों की दौड़ की समाप्ति है—क्रमिक नाभिकीय निरस्त्रीकरण तथा अतः ऊष्मा-नाभिकीय अस्त्रों के उत्पादन एवं उपयोग का पूर्ण परित्याग। अनुभव ने पहले ही सिद्ध कर दिया है कि इस योजना का क्रियान्वयन गंभीर जटिलता तथा भारी उत्तरदायित्व से परिपूर्ण है। किंतु मानवता के पास कोई दूसरा विकल्प नहीं है।

राजनीति के अध्येता हथियारों की दौड़ की संभावनाओं व खतरों के संबंध में विस्तृत आंकड़े उपलब्ध कराके, संभाव्य अथवा वास्तविक विरोधियों की स्थिति का वस्तुगत सीमांकन प्रस्तुत करके तथा मार्ग में आने वाली आर्थिक, राजनीतिक तथा सामाजिक-मनोवैज्ञानिक समस्याओं के समाधान के लिए यथार्थपरक प्रस्ताव प्रस्तुत करके राजनेताओं के काम में सहायता कर सकते हैं।

किंतु व्यापक शांति के नियोजन को हथियारों की दौड़ समाप्त करने तथा ऊष्मा-नाभिकीय अस्त्रों के प्रयोग का परित्याग करने के समतुल्य मानने से उसकी व्यापकता पर आघात लगता है। इसका लक्ष्य सभी क्षेत्रों—आर्थिक, वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक तथा सांस्कृतिक—में पारस्परिक लाभकारी अंतरराष्ट्रीय सहयोग पर आधारित सक्रिय व्यापक शांति कायम करना भी होना चाहिए।

पर्यावरण, अंतरिक्ष की खोज तथा शांतिपूर्ण उद्देश्यों के लिए उसके उपयोग, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी, चिकित्सा शास्त्र एवं सार्वजनिक स्वास्थ्य के क्षेत्रों में ... से संबंधित सोवियत-अमरीकी समझौतों ने व्यापारिक एवं अन्य आर्थिक

संपर्कों के विकास की अनुकूल परिस्थितियां निर्मित की हैं। दोनों
हाल ही मे सपन्न व्यापार बढ़ाने से सबधित समझौता न केवल दो
के बल्कि संपूर्ण विश्व की जनता के लिए कल्याणकारी सहयोग वि
आधार प्रस्तुत करता है।

व्यापक शाति नियोजन के लिए नये सामाजिक-मनोवैज्ञानिक
निर्माण भी आवश्यक है। अतरराष्ट्रीय तनाव मानवता की सामाजि
तथा सामाजिक-मनोवैज्ञानिक अवस्था है। दरअसल, अंतरराष्ट्रीय न
चरम विश्लेषण मे, सामाजिक-आर्थिक तथा राजनीतिक कारको द्वार
होता है। अतरराष्ट्रीय स्तर पर, जिन रूपो तथा विधियो मे सघर्ष नि
राजनीतिक सबधों की शैली—उनका अध्ययन भी महत्वपूर्ण है।

सामाजिक-मनोवैज्ञानिक वातावरण निर्मित करने मे विद्वानो की
भूमिका है। 'न्यूक्लीयर वेपस एड फॉरिन पालिसी' मे प्रोफेसर हैनरी कि
व्यावसायिक स्तर तथा सपूर्णता का हम आदर करते हैं। हालांकि ऐसा
होता है कि यदि वह सामरिक सिद्धांत विकसित करने के बजाय व्यापक शा
समस्याओ के विश्लेषण पर अपना ध्यान केंद्रित करते तो उनके विद्वत्तापूर्ण
अधिक सार्थक हो सकते थे। किसिगर की दृष्टि मे, सामरिक सिद्धात का उ
शक्ति को नीति मे परिणत करना, तथा यह निर्धारित करना है कि सघर्ष ला
है तथा निश्चित परिणाम अर्जित करने के लिए कौन-सी शक्ति का उपयो
किया जाना चाहिए।"[2] तो भी, मूल समस्या सैन्य-राजनीतिक रणनीति के क्षेत्र
अतरराष्ट्रीय नीति के क्षेत्र मे अवस्थित है।

गालब्रेथ, जो अमरीकी अतरराष्ट्रीय समाजशास्त्रियो का आह्वान करते हैं
व्यावसायिक रूप से 'शीत युद्ध' की विचारधारा का पोषण करने के बजाय
हथियारों की दौड़ समाप्त करने तथा शाति की मजबूत करने की समस्याओं पर
प्रयासो को केंद्रित करें,[20] सहमत हुए बिना नही रहा जा सकता। विज्ञान के
प्रभाव का उपयोग मात्र शाति एव सामाजिक प्रगति को मजबूत करने
किया जा सकता है तथा किया जाना चाहिए।

हथियारों की दौड़ को परिसीमित करना तथा समाप्त करना व अतत. नाभि-
कीय अस्त्रों पर प्रतिबध लगाना, विश्व की दो सबसे बड़ी शक्तियों—सयुक्त राज्य
अमरीका तथा सोवियत सघ—पर मुख्यतया निर्भर है क्योंकि इन्ही के पास सर्वाधिक
नाभिकीय क्षमता है। कुछ राजनयिक तथा अतरराष्ट्रीय न्यायिक उप-
करण मे, बाह्य अतरिक्ष मे तथा पानी के नीचे नाभिकीय अस्त्रों के

---

2. हैनरी किसिंगर : न्यूक्लीयर वेपस एड फॉरिन पालिसी, पृ॰ 7
20. जॉन कैनेथ गालब्रेथ : द न्यू इडस्ट्रियल सोसायटी, पृ॰ ...

पनडुब्बियों को प्रतिबंधित करने व नाभिकीय अस्त्रों के उत्पादन पर रोक लगाने संबंधित संधियों तथा सामरिक महत्त्व के प्रश्नों के परिप्रेक्ष्य में सोवियत वार्ता, यह उम्मीद जगाती है कि हथियारों की दौड़ को सीमित व समाप्त करने तथा शांति को मजबूत करने के संदर्भ में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन संभव है।

व्यापक शांति एवं सहयोग को मजबूत करने में सामाजिक शक्तियों की भूमिका भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। अक्तूबर 1973 में मास्को में आयोजित शांतिकामी शक्तियों के विश्व सम्मेलन ने निश्चयात्मक रूप से यह प्रदर्शित कर दिया था। सौ से अधिक समितियों, जिनमें विश्व के लगभग सभी देशों का प्रतिनिधित्व था, ने इस सम्मेलन की तैयारी की। पश्चिम एवं पूर्व, दक्षिण एवं उत्तर, सामाजिक जनवादियों एवं कम्युनिस्टों, कैथोलिकों एवं बौद्धों के प्रतिनिधियों, राष्ट्रीय राजनेताओं, शांतिवादियों, सेनेटरों तथा मंत्रियों ने सम्मेलन के विभिन्न वर्गों में भागीदारी की। प्रतिनिधियों में दर्जनों देशों की राष्ट्रीय संसदों के 200 से अधिक सदस्य सम्मिलित थे।

सम्मेलन की विशिष्टता यह थी कि वहां संवाद, सहयोग, पारस्परिक समझ तथा सोद्देश्य कार्रवाई के प्रति असीम उत्साह एवं जोश व्यक्त हुआ। खुले अधिवेशनों तथा 14 समितियों में लगभग 1000 लोगों ने अपने विचार प्रकट किये। शांति एवं शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व के संघर्ष के रूपों, विधियों एवं लक्ष्यों के बारे में अत्यंत विविध मत—विश्व सरकार की स्थापना से लेकर शांति के लिए क्रांतिकारी संघर्ष तक—व्यक्त किये गये। दृष्टिकोणों की विविधता के बावजूद, सम्मेलन में स्वीकृत प्रस्तावों में, सामान्य मंच गठित किया गया। यह शांतिकामी शक्तियों के आंदोलन में आये गुणात्मक परिवर्तन का प्रमाण है।

यह सार्वत्रिक रूप से स्वीकार किया गया कि लियोनिद इ० ब्रेझनेव का वक्तव्य 'फ़ॉर ए जस्ट, डेमोक्रेटिक पीस, फ़ॉर द सीक्योरिटी ऑफ़ नेशंस ऐंड इंटरनेशनल को-आपरेशन' का सम्मेलन की सफलता में निर्णायक योगदान था। प्रतिनिधियों में इस बात पर सहमति थी कि ब्रेझनेव के वक्तव्य—जिसने समकालीन विश्व राजनीति के आधारभूत प्रश्नों का उत्तर प्रस्तुत करने के साथ-साथ अंतरराष्ट्रीय तनाव को कम करने के प्रति सोवियत सरकार की अविचल नीति को पुनर्पुष्ट किया—ने शांति की शक्तियों के दृढ़ीकरण के लिए मंच प्रस्तुत किया।

मनोवैज्ञानिक वातावरण—जो अंतरराष्ट्रीय संबंधों की समूची व्यवस्था में तीव्र मोड़ लाने की पूर्व शर्त है—निर्मित करने में शांति आंदोलन अपनी विशेष भूमिका का निर्वाह करते हैं। 'शीत युद्ध' तथा मुठभेड़ के मनोवैज्ञानिक वातावरण ने अविश्वास, मनमुटाव, कड़वाहट तथा भय को जन्म दिया। एक छोटी सी चिनगारी लपट जैसी दिखती थी, लपट होलिका दहन जैसी, और जाहिर है होलिका दहन सार्वभौमिक अग्निकांड से कम नहीं दिखती थी। जो मनोवैज्ञानिक वातावरण

अब निर्मित हो रहा है वह आत्मविश्वास, संवाद, पारस्परिक समझ तथा सहयोग को प्रोत्साहित करता है।

ऐसी परिस्थितियों में विचारों का संघर्ष समाप्त नहीं होता किंतु इसकी प्रकृति तथा स्वरूप अधिक जटिल बन जाते हैं। यह सूचना के व्यापक प्रसार, राज्यों तथा जनता के आपसी संपर्कों के विकास, तथा सांस्कृतिक विनिमय के विकास की अवस्थाओं में से होकर गुजरता है। शांति एवं सामाजिक प्रगति की अपनी वर्गीय विचारधारा पर निर्भर करते हुए समाजवाद 'शीत-युद्ध' तथा अन्य प्रकार के सामाजिक प्रतिक्रियावाद से और अधिक संघर्ष करने का अवसर प्राप्त करता है। जहां तक रूसों का सवाल है, विवेक शून्य शत्रुता—जिसे लेनिन राजनीति की सबसे खराब सलाहकार मानते थे—मार्क्सवादियों के स्वभाव के प्रतिकूल है। महान लक्ष्य शांति के संघर्ष के संभाव्य साथियों की—ढुलमुल व अस्थिर साथियों की भी—एकता के साधनों को निर्धारित करते हैं ताकि विश्वपूर्ण, सुविचारित, पारस्परिक रूप से स्वीकार्य समाधान प्राप्त किये जा सकें तथा संकल्प लिये जा सकें।

शांति का मार्क्सवादी दर्शन समूची मानवता के लक्ष्यों का दर्शन है। कल्पनावाद तथा उच्चाशय शांतिवाद इसके स्वभाव के प्रतिकूल है। यह गहन रूप से यथार्थपरक दर्शन है जो युद्ध एवं शांति की शक्तियों के अन्योन्याश्रय के विश्लेषण पर तथा हमारे युग में इन घटनों क्रियाओं के विकास पर आधारित है। इसका सार वर्गीय अंतर्विरोधों की अवहेलना न करना तथा अपने सिद्धांतों, राजनीतिक सहानुभूतियों तथा विरोधों का परित्याग नहीं है बल्कि, जटिल विश्व में, संभाव्य महाविपत्ति की पूर्व दृष्टि प्राप्त करके सार्वभौमिक शांति एवं सहयोग के सही मार्ग का पता लगाना है।

शांति एवं सहयोग के लिए संघर्ष के यथार्थ परक तरीकों के प्रश्न का उत्तर सहयोग है।

यूरोपीय अधिवेशन, जिसमें संयुक्त राज्य व कनाडा ने भाग लिया था—का सफलतापूर्वक समापन ऐतिहासिक उदाहरण रहा है जो यह बताता है कि यूरोप में शांति तथा सहयोग को तथा विश्व शांति को कैसे सुदृढ़ किया जाए। हथियारों की दौड़ को सीमित करने के प्रश्न पर संयुक्त राज्य तथा सोवियत संघ के बीच जारी वार्ताएं तथा विश्व निरस्त्रीकरण सम्मेलन का शीघ्र ही आयोजित किया जाना भी काफी प्रासंगिक है।

शांति कार्यक्रम के प्रभावी क्रियान्वयन के मार्ग में अवरोधों की महत्ता कम नहीं है। तथापि, अन्तरराष्ट्रीय राजनीति की आधारभूत प्रवृत्तियों के विश्लेषण के आधार पर हम अन्तरराष्ट्रीय वातावरण में अधिक सामान्यीकरण, शांति के लिए वर्तमान शक्तियों के सुदृढ़ीकरण की भविष्यवाणी कर सकते हैं। सोवियत

कम्युनिस्ट पार्टी तथा सोवियत राज्य की दृढ़ निश्चयी, सक्रिय, सुगत एवं रचनात्मक वैदेशिक नीति, समाजवादी देशों, विश्व कम्युनिस्ट एवं श्रमिक आंदोलन तथा विश्व युद्ध को रोकने व शांति कायम करने के संघर्ष में बचाव की शक्तियों की बढ़ती हुई एकता इस आशावाद की धरोहर है।

राजनीति में क्रियाशीलता तथा संघर्ष का जो महत्त्व है वह अन्यत्र नहीं है। शांति के पक्ष में काम करने वाली शक्तियां जितना बढ़ेंगी, उतना ही यह आश्वासन भी कि ऊष्मा नाभिकीय युद्ध टाला जा सकता है, उतनी ही यह आशा बढ़ेगी कि नियोजित शांति वास्तविकता बन सकेगी।

विश्व राजनीति की समस्याओं में से ये कुछ हैं जो राजनीति के भौतिकवादी सिद्धांत के आलोक में समाजशास्त्रीय विश्लेषण की अपेक्षा रखती हैं। हम देख ही चुके हैं कि राजनीति का समाजशास्त्र, राजनीति व्यवस्था का सिद्धांत, प्रबंध सिद्धांत तथा अंतरराष्ट्रीय संबंधों का समाजशास्त्र ये सभी राजनीतिक विज्ञानों का अनिवार्य समूह हैं।

निष्कर्ष

यहां राजनीति, राजनीतिक व्यवस्थाओं तथा संगठन व प्रशासन के अध्ययन की विधियों व सिद्धांत के विषय में कुछ आधारभूत विचारों को रेखांकित किया जाना चाहिए।

राजनीति का भौतिकवादी सिद्धांत इनमें सर्व प्रमुख है।

राजनीति के भौतिकवादी सिद्धांत के रचनात्मक विकास के लिए विश्लेषण के विभिन्न स्तरों पर राजनीतिक जीवन के अध्ययन की विधियों तथा राजनीतिक ज्ञान का विकास, सुधार तथा गहनता आवश्यक है। राजनीतिक विश्लेषण के विभिन्न स्तरों का अंत संबंध, अपने सामान्य रूप में, इस प्रकार है। ऐतिहासिक भौतिकवाद राजनीति के भौतिकवादी सिद्धांत के सामाजिक दार्शनिक आधारों को विकसित करता है : सामाजिक-राजनीतिक प्रक्रिया की उत्प्रेरक शक्ति के रूप में वर्ग संघर्ष का सिद्धांत, एक सामाजिक आर्थिक गठन से दूसरे गठन में संक्रमण की नियमितताओं की समस्या, आधार एवं अधिरचना, समाज एवं राज्य, राज्य एवं राजनीति, राजनीति एवं विधि, विधि एवं नैतिकता, आदि का अन्योन्याश्रय। ऐतिहासिक भौतिकवाद, इस प्रकार, उन आधारभूत पद्धतिमूलक सिद्धांतों को परिभाषित करता है जिन पर कोई भी राजनीतिक अध्ययन आधारित होता है।

राजनीति का सिद्धांत समाजशास्त्रीय पद्धतियों, सटीक राजनीतिक जीवन के अभिज्ञान के उपकरण के रूप में अभिधारणात्मक तंत्र, पद्धतियों व प्रविधियों, की सहायता से विकसित होता है। यह ऐतिहासिक भौतिकवाद तथा अनुभवपरक राजनीतिक अध्ययन को जोड़ने वाला सेतु है। और अंत में, अनुभववादी राजनीतिक अध्ययन—समस्त आधुनिक अन्वेषण तंत्र का उपयोग करके—राजनीतिक यथार्थ की घटनाक्रियाओं को समझने की कुंजी प्रस्तुत करते हैं तथा राजनीतिक निर्णयों को सूत्रबद्ध करने व क्रियान्वित करने के माध्यम बनते हैं। विश्लेषण के इन स्तरों में से प्रत्येक, मार्क्सवादी-लेनिनवादी दृष्टिकोण से राजनीतिक यथार्थ के विश्लेषण की आवश्यक कड़ी है।

राजनीति विज्ञान के विकास के लिए राजनीतिक व्यवस्थाओं तथा राजनीतिक संस्थाओं का विश्लेषण बेहद महत्त्वपूर्ण है। मार्क्सवादी अध्येता समाज की राज-

नीतिक तंत्र विधि के विश्लेषण में, दलों, संगठनों, दबाव गुटों तथा अन्य सार्वजनिक संगठनों के क्रियात्मक विश्लेषण में, उनकी कड़ियों के अध्ययन में—राजनीतिक प्रक्रिया पर वर्गों, औपचारिक एवं अनौपचारिक समूहों तथा व्यक्तियों का प्रभाव—संरचनात्मक तथा क्रियात्मक पद्धति के सिद्धांतों का दिनोंदिन अधिक उपयोग कर रहे हैं।

संघटन एवं प्रशासन सिद्धांत का राजनीति विज्ञान में अत्यंत प्रमुख स्थान है। प्रशासन में वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक क्रांति की उपलब्धियों का उपयोग करने, प्रशासन की कुशलता में वृद्धि करने तथा निर्णय लेने की प्रक्रिया को श्रेष्ठ बनाने की दृष्टि से यह विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है।

समस्त घटना-क्रियाओं के लेनिनवादी विश्लेषण का गहन इतिहासवाद इस सिद्धांत में स्पष्ट रूप से व्यक्त होता है कि प्रशासन के संघटनात्मक रूप तथा विधियां, राजनीतिक संस्थाओं की संरचना तथा प्रकार्य सामाजिक-आर्थिक विकास के स्तर—सटीक ऐतिहासिक परिस्थितियों—के प्रकार्य हैं। समाजवादी देशों में संघटन तथा प्रशासन की क्रिया विधि के समकालीन सुधार का आधार यही धारणा है।

उन्नत समाजवादी समाज की परिस्थितियों तथा वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक क्रांति की अपेक्षाओं के साथ तालमेल की आवश्यकता को ध्यान में रखकर इन दिनों संघटन एवं प्रशासन के सिद्धांतों को और अधिक विकसित किया जा रहा है। अनुभववादी सामाजिक-राजनीतिक अध्ययन, इस पहलू से, व्यवहार को मूल्यवान सहायता दे सकते हैं। प्रशासन तंत्र की संरचना, इसके कर्मकों, शैक्षणिक स्तर, विशेषज्ञता, प्रकार्यों का सीमांकन, निर्णय प्रक्रिया के शैक्षणिक स्तर, विशेषज्ञता, प्रकार्यों का सीमांकन, निर्णय प्रक्रिया के विश्लेषण में परिमाणात्मक एवं मात्रात्मक विधियों का उपयोग समाज के नेतृत्व एवं प्रशासन में सुधार लाने का महत्त्वपूर्ण साधन है। अनुभववादी समाजशास्त्रीय अध्ययन राजनीतिक संस्कृति, राजनीतिक चेतना तथा जनता के राजनीतिक आचरण के क्षे में व्यवहार को प्रभावी सहायता दे सकते हैं।

अंत में, अंतरराष्ट्रीय संबंधों तथा विश्व राजनीति के व्यवस्थापरक अध्ययन की ओर निश्चित ध्यान देना अनिवार्य है। सोवियत संघ में व्यापक शांति का जारी सफल सयोजन एवं नियोजन अंतरराष्ट्रीय संबंधों की व्यवस्था के विकास तथा विश्वनीति—खासकर ऐसी स्थिति में जबकि ऊष्मा-नाभिकीय युद्ध को रोकना समूची मानवता की चिंता का विषय बन चुका है—की दिशा को निर्दिष्ट करता है।

राजनीतिक व्यवस्थाओं, अंतरराष्ट्रीय क्षेत्र में नीतियों, विभिन्न शक्तियों के संघर्ष तथा अंतरराष्ट्रीय सहयोग से संबंधित अतिरिक्त ज्ञान का संचयन शांति

एवं सामाजिक प्रगति के महान लक्ष्यों को लाभ ही पहुंचाएगा।

समाजवादी तथा राष्ट्रीय मुक्ति क्रांतियों के परिणामस्वरूप 20वीं शताब्दी विविध नयी राजनीतिक व्यवस्थाओं तथा राजनीतिक शासनों के उदय एवं विकास की साक्षी रही है। इस प्रक्रिया ने मानवता के बड़े हिस्से को आवेष्टित किया है।

संपूर्ण विश्व में राजनीतिक संरचनाओं का यह प्रपाती विखंडन, भौंगे अधिक देशों की जनता के नये राजनीतिक चिंतन का निर्माण, नये सामाजिक संबंधों तथा मूलभूत सामाजिक परिवर्तनों का उदय—यह सब मौजूदा अभूतपूर्व राजनीतिक प्रक्रिया के सर्वाधिक क्रियाशील लक्षणों में से एक है।

अतीत में, 18वीं व 19वीं शताब्दियों की बूर्ज्वा क्रांतियों के परिणामस्वरूप इतिहास का सर्वाधिक सक्रिय राजनीतिक पुनर्निर्माण घटित हुआ था। किंतु यह मुख्यतया यूरोप तथा संयुक्त राज्य तक सीमित था। बूर्ज्वा राज्य संस्थाओं तथा बूर्ज्वा संसदीय जनतंत्र को उत्पन्न करके, बूर्ज्वा क्रांतियों ने उन रूपों की नींव रखी जो उन्नत पूंजीवादी देशों में, अपने संशोधित रूप में आज भी विद्यमान हैं। संसदवाद के व्यापक ऐतिहासिक महत्त्व के बावजूद बूर्ज्वा क्रांतियों के काल के अभिनव राजनीतिक परिवर्तनों की तुलना हमारे समय की समाजवादी तथा राष्ट्रीय मुक्ति क्रांतियों द्वारा सृजित रूपों—विशाल आकार, गहनता तथा विविधता को देखते हुए—से नहीं की जा सकती। व्यापक राजनीतिक क्रियाशीलता के इस प्रवाह की तुलना मौजूदा वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक प्रगति के साथ ही की जा सकती है। जब भी वर्तमान को गतिशील के रूप में वर्णित किया जाता है, इस विशेषण का काफ़ी हद तक श्रेय अलग-अलग देशों तथा संपूर्ण विश्व की तूफ़ानी राजनीतिक क्रियाशीलता को ही जाता है।

समाजवादी राज्यों की विश्व व्यवस्था का उदय एवं विकास 20वीं शताब्दी का मुख्य स्वर बन गया है। अपने विशिष्ट रूपों, राजनीतिक शासनों, गतिशीलता, संस्कृति एवं परंपराओं की तमाम विविधता के बावजूद समाजवादी देशों की राजनीतिक व्यवस्थाएं श्रमिक वर्ग तथा समस्त कामगार जनता द्वारा सत्ता-संचालन की प्रतिरूप हैं। कम्युनिस्ट एवं श्रमिक दलों के नेतृत्व में ये देश राजनीतिक संगठनों को निर्मित करने तथा सरकार में जनता को सम्मिलित करने के विविध जनवादी माध्यमों—जैसे सोवियतें, श्रमिक संघ, सहकारी समितियां, युवा कम्युनिस्ट लीग आदि—में सर्वाधिक मूल्यवान अनुभव का संचय कर रहे हैं।

समाजवादी देशों का अनुभव समाजवादी देशों में राजनीतिक रूपों की एकता तथा विविधता के बारे में लेनिन की भविष्यवाणी की विशिष्टता को रेखांकित करता है। इसने असमान रूप से विकासशील विश्व में विश्व समाजवाद के विकास को अवरुद्ध करने वाली संभावित कठिनाइयों के लेनिन के सटीक विश्लेषण को भी

अंतरराष्ट्रीय रंगभूमि में विरोधी शक्तियों के तीव्र संघर्ष के परिप्रेक्ष्य में,
किया है।

अन्य मार्क्सवादी-लेनिनवादी पार्टियों की भांति सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी
आज के अनुभव के अनुरूप नये राजनीतिक विचारों को सूत्रबद्ध करने में लै
की गहरी पूर्व दृष्टि तथा मार्क्सवाद-लेनिनवाद के सामान्य सिद्धांतों से प्रेरणा प
करती है। यह राजनीतिक सिद्धांत की इन समस्याओं—समस्त जनता का रा
लोक जनवाद, समाजवाद में संक्रमण के रूप, सामाजिक एवं ऐतिहासिक प
स्थितियों पर आश्रित श्रमिक वर्ग की राजनीतिक सत्ता के रूप तथा विभि
लक्षण, भिन्न सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्थाओं वाले राज्यों के शांतिपूर्ण स
अस्तित्व का सिद्धांत, समाजवादी राज्यों के आपसी संबंधों के आधार के रूप
अंतरराष्ट्रीयतावाद का सिद्धांत, आदि पर भी लागू होता है।

समाजवादी देशों का संचित अनुभव समस्त राजनीतिक संबंधों पर बढ़
हुआ प्रभाव डाल रहा है। पूंजीवादी देशों में सामाजिक प्रगति तथा वास्तवि
जनवादीकरण के लिए संघर्षरत् नेतृत्वशील श्रमिकों तथा राजनीतिक रूप से सज
कामगर जनता के लिए यह उदाहरण बन चुका है। बहुत से उन देशों में जहां औप
निवेशिक तथा अर्द्ध औपनिवेशिक दासता से हाल ही में मुक्ति मिली है इस अनुभ
का व्यापक उपयोग किया जा रहा है। समाजवादी राज्यों की घरेलू तथा वैदेशि
नीति का विश्व राजनीति पर, आर्थिक एकीकरण व अंतरराष्ट्रीयतावाद पर गहर
प्रभाव पड़ रहा है। नाभिकीय विश्वयुद्ध को रोकने तथा विश्व शांति को मजबू
करने, व वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक क्रांति का समस्त जनता के हित में उपयोग करने
मानवता को दरिद्रता, भुखमरी एवं रोगों से मुक्ति दिलाने से संबंधित, और
पर्यावरण की सुरक्षा तथा इन जैसे ही अन्य प्रश्न—जो समस्त मानवता से संबंध
रखते हैं—भी उक्त नीति से प्रभावित हो रहे हैं।

राज्य निर्माण के नये क्रांतिकारी अनुभव के साथ कदम मिलाकर उन्नत
पश्चिमी पूंजीवादी देशों की पारंपरिक राजनीतिक व्यवस्थाओं में भी कुछ संशोधन
किये गये हैं। इसे वर्ग संघर्ष तथा राजकीय-इजारेदार पूंजीवाद के विशिष्ट रूपों
जैसे आतंरिक कारकों में खोजा जा सकता है। समाजवादी दुनिया तथा, कुछ हद
तक, विकासशील देशों द्वारा व्यापक जनता के राजनीतिक चिंतन तथा विचार-
धारा को भी प्रभावित किया जाता है।

समूची बुर्ज्वा व्यवस्था की भांति, बुर्ज्वा संसद स्थायी संकट में फंसी हुई है।
यह तथ्य क्लासिकी पूंजीवाद के दौरान उत्पन्न राज्य-संस्थाओं को आज के युग
की सामाजिक क्रांतियों, विज्ञान, प्रौद्योगिकी व युद्ध कला की पद्धतियों के क्षेत्र में
हुई आधारभूत प्रगति तथा समूची विश्व-संबंध में व्यवस्था में हुए परिवर्तनों की
अपेक्षाओं के अनुकूल ढालने के प्रयासों को प्रेरित करता है। ऐसा करने में, बुर्ज्वा

राज्य बूर्ज्वा सत्ता के सार तत्त्व तथा बूर्ज्वा संसदवाद के आधारभूत सिद्धांतों के प्रतिकूल साधनों का उपयोग करने को भी विवश होते हैं। अर्थव्यवस्था तथा श्रम-पूंजी संबंधों को संचालित करने की राज्य-इजारेदार विधियों—जिसका परिणाम होता है अनाप-शनाप आर्थिक तथा सामाजिक क़ानूनों का निर्माण—तथा जनता को युक्तिपूर्वक चालित करने के लिए काम में ली जाने वाली नई राजनीतिक एवं विचारधारात्मक विधियों—जिसके परिणामस्वरूप विभिन्न बूर्ज्वा एवं पैटी-बूर्ज्वा पार्टियां गठित होती हैं—पर भी लागू होता है।

बूर्ज्वा राज्यों का अंतरराष्ट्रीय संबंधों की नई व्यवस्था से अनुकूलन विशेष रूप से कष्टदायक है। ये नये संबंध विश्व समाजवादी समुदाय तथा भूतपूर्व उप-निवेशों व अर्द्ध औपनिवेशिक देशों के गहरे प्रभाव में रूपायित हो रहे हैं। ये शक्तियां अविभाजित पूंजीवाद एवं साम्राज्यवाद के ज़माने की पुरानी व्यवस्था की आधारभूत पुनर्संरचना के लिए तथा शांति, शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व, राज्यों की पूर्ण समानता व पारस्परिक लाभदायक सहयोग कायम करने के लिए संयुक्त प्रयास कर रही है।

कुल मिलाकर, मानवता के सामाजिक विकास की भांति ही मौजूदा राज-नीतिक व्यवस्थाओं का विकास मार्क्सवादी-लेनिनवादी दलों की इस मान्यता को पुष्ट करता है कि यह पूंजीवाद से समाजवाद में संक्रमण का युग है।

भिन्न राजनीतिक व्यवस्थाओं—समाजवादी तथा पूंजीवादी—के विकास की प्रवृत्तियों का विश्लेषण राजनीतिक संबंधों की विश्व-व्यवस्था की शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व के सिद्धांतों के आधार पर आगे पुनर्संरचना किये जाने की आवश्यकता की ओर संकेत करता है। विश्व स्तर पर अपरिहार्य विचारधारात्मक एवं राज-नीतिक संघर्ष तथा विरोधी व्यवस्थाओं के बीच आर्थिक स्पर्द्धा अंतरराष्ट्रीय सैन्य-राजनीतिक संघर्षों में परिवर्तित एवं विकसित नहीं होनी चाहिए। झगड़ों एवं विरोधों का समाधान शांतिपूर्ण तरीकों से किया जाना चाहिए। मानवता के सामने शांति, सुरक्षा एवं अंतरराष्ट्रीय सहयोग के अनुरूप अंतरराष्ट्रीय संबंध-व्यवस्था को रूपांतरित करने की नई ऐतिहासिक जिम्मेदारी है। इसे सुनिश्चित करने के तरीकों की खोज आज विज्ञान का प्रमुख लक्ष्य बन चुका है।